

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DATE	SIGNATURE

संस्कृत में एकांकी रूपक



शिक्षा तथा समाज कल्याण मन्त्रालय भारत सरकार की विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजना
के अन्तर्गत मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित ।

संस्कृत में एकांकी रूपक

डॉ० वीरवाला शर्मा



मध्यप्रदेश हिन्दू ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल

प्रकाशक

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ भण्डारमी

भोपाल

। © मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ भण्डारमी

। प्रथम संस्करण • १९७२

मूल्य

पुस्तकालय सन्स्करण • १४=००

भाषाकरण सन्स्करण १२=४०

मुद्रक

मनुष्य मुद्रण

गोविन्दपुरा,

भोपाल—२३

प्रस्तावना

नाट्य कृतियों की दृष्टि से संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध रहा है। नाट्य और नृत्य के बीच बँदिक साहित्यागो में भी मिलते हैं। ईसा पूर्व ५०० के लगभग तो रगमच पर नाट्य कृतियों का प्रयोग होने लगा था और उसी समय के लगभग नाट्य सूत्रों का निर्माण होने का भी पता चलता है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में रगमच और अभिनय सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक ग्रन्थ मिलते हैं। नाट्य शास्त्र के निर्माण के बाद तो इस विषय की समग्र शास्त्र का रूप ही प्राप्त हो गया जिससे आगे चलकर काव्यशास्त्र का भी विकास हुआ।

यह बात सहज में समझ में आ सकती है कि नाट्य-ग्रन्थों के निर्माण के पूर्व ग्रामों और नगरों में भी अभिनय और रगमच का विकास हो चुका होगा। प्रारम्भ में रगमच पर नृत्य प्रदर्शन होता रहा होगा जो मानवीय संवेदनाओं के प्रकाशन के साथ जुड़कर नृत्य में परिणत हो गया होगा। बाद में बात-चीत या संवादों के योग से नृत्य का रूप बदल कर अभिनय में परिवर्तित हो गया होगा। यदि विकास के इस क्रम को ठीक माना जाये तो कहा जा सकता है कि नाट्य कृतियों में सबसे पहले एकांकियों का प्रणयन हुआ होगा। प्रारम्भ में किसी विशेष घटना या तथ्य के प्रदर्शन या निरूपण के लिए अभिनय का सहारा लिया गया होगा और बाद में कई घटनाओं को जोड़कर समूचे नाटक को प्रस्तुत किया गया होगा। नाट्य शास्त्रकारों ने रूपक के दस भेदों का परिगणन करते समय नाटक का जो सर्वप्रथम उल्लेख किया है, वह उस समय की चरम उपलब्धि थी। यह तथ्य इस बात से भी स्पष्ट है कि संस्कृत में प्राप्त होने वाले प्राचीन उत्तम रूपक कलेवर की दृष्टि से छोटे हैं। और भास के नाटकों में तो बहुत से एकांकी ही हैं। किन्तु जिस प्रकार भास के पश्चात् एक लम्बे काल तक नाटकों का पता नहीं चलता उसी प्रकार एकांकियों की भी कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। इस क्षेत्र में प्रथम महत्वपूर्ण कृतियाँ चतुर्भांगी ही हैं। चतुर्भांगी के पश्चात् संस्कृत में जो एकांकियों की परम्परा चली वह आज तक अबाध रूप से चली जा रही है। इसलिए आधुनिक

समीक्षकों का यह कहना कि भारत में एकादिक्यों का प्रचलन यूरोप के प्रभाव से हुआ, केवल उनके अज्ञान का चोख है।

डा० वीरबाना शर्मा ने इस कृति में भारतीय एकाकी परम्परा का समीक्षात्मक एवं विघटन अध्ययन प्रस्तुत किया है। इससे न केवल सृष्टि एकादिक्यों की दीर्घकालीन परम्परा और दिव्य समस्या का ही पता चलता है, बल्कि उनकी विविधता एवं बहुरूपता का भी परिज्ञान होता है। समीक्षण के मध्य डा० शर्मा ने समुचित उद्धरणों के द्वारा कथन की प्रामाणिकता एवं सरमता में भी वृद्धि की है। उन्होंने सस्कृत के धातुनिक एकादिक्यों के साथ धातुनिक भारतीय भाषाओं के एकादिक्यों की भी संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की है।

मेरा विश्वास है कि साहित्य के विद्यादियों के लिए यह पुस्तक ज्ञान-पथ और रचिवर सिद्ध होगी।

प्रभु दयालु अग्निहोत्री

(डा० प्रभुदयालु अग्निहोत्री)

सचासक

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

भूमिका

किसी भी राष्ट्र के महत्व का ज्ञान उसकी साहित्यसम्पदा द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। 'वाल्मेखु नाटक रम्यम्', 'नाटके नटवर्धन्य रमास्वाद पदे पदे'... इत्यादि वाक्यों द्वारा भालोचको ने नाट्यसाहित्य की रमणीयता और उपयोगिता का परिचय दिया है। आज के कार्यसन्तुल युग में भी इसकी महत्ता को देखकर लोकरक्षण और लोकरक्षण के लिए एकांकियों के प्रणयन को प्रोत्साहन दिया जाने लगा है। नाट्यसाहित्य की इस विद्या की भालोचना व भण्डार को भी पुष्ट बनाने का यत्न साहित्यजगत में हो रहा है। परिणामस्वरूप दशमान युग में प्राच्य तथा पाश्चात्य साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उनका सूचांक करने की परम्परा चमक पड़ी है, जिसका प्रचार द्रुतगति में हो रहा है। यद्यपि आज विभिन्न साहित्यिक क्षेत्रों में समालोचनात्मक ग्रन्थों का प्रभाव नहीं है तथापि नाट्यविभाग की स्थिति अब भी दयनीय-सी ही है। अधुनातन उपलब्ध नाट्यविषयक ग्रन्थों में भी नाट्यशास्त्र अथवा रूपक के प्रमुख प्रकारों (नाटक, प्रकरण, सट्टक आदि) में सम्बद्ध रचनाओं की संख्या अधिक है। उनमें भी अधिराज मस्कून के विद्वान कवियों के सुपरिचित नाटकों (शाकुन्तल, उत्तर-रामचरित, कर्पूरमञ्जरी आदि) के यत्पिच्छित टीका टिप्पणी-महिन विभिन्न भाषाओं में रूपांतर मात्र है। संस्कृत की अतिप्राचीनकाल में प्रवाहित होने वाली एकाकी रूपको की अमृतमयी सरिता का अवगाहन तो हम वाच्य सिको ने ही किया है। नाट्य के निधानक ग्रन्थों में एकाकी रूपको तथा उपरूपको के सोदाहरण विस्तृत विवेचनों, संस्कृत साहित्य के इतिहासों एवं हम्नलिखित पोथियों की पुष्पिकाओं में अस्ति एकांकियों की विशद नामावली को देखने से और उनके परिशीलन से यह रहस्य चुल जाता है कि मस्कून के एकाकी भोक्ता को आनन्दमग्न कर देने के साथ-साथ अमृतमय शिक्षा देने में भी सक्षम हैं।

प्रायः सब पाठुनिन समालोचक मस्कून में एकांकियों की सत्ता तथा उनकी प्राचीनता को ही स्वीकार करते हैं परन्तु वे अनेक कारणों से उन्हें एकांकियों की कौट में रखने को तैयार नहीं हैं।

अधुनातन भारतीय समीक्षात्मक साहित्य पर यद्यपि यूरोपीय प्रभाव बहुत बढ़ गया है, तो भी उसे वैदिक-काल से चली आ रही भारतीय मान्यताओं

में पृथक् करके समझा नहीं जा सकता। अतः भारतीय साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए साहित्य के प्रत्येक विद्यार्थी का काव्य (जिसमें नाटक और कथा साहित्य भी सम्मिलित है) की मूलभूत मान्यताओं को समझ लेना परमावश्यक है।

पश्चिम के सभ्य तथा संस्कृत और प्राकृत के बहल-भाठल की परम्परा के विच्छिन्न हो जाने के कारण आज के सामान्य विद्यार्थी की संस्कृत भाषा को हृदयगत करने की शक्ति सीधे-प्रायः ही चुकी है। लोकरुचि भी इस ओर नहीं है। विदेशविद्यालयों में अंग्रेजी अथवा इसके संपर्क में समझी जाने वाली अन्य भाषाओं के माध्यम में संस्कृत के शास्त्रीय एवं साहित्यिक विषयों का ज्ञान कराया जाता है। अतः संस्कृत-साहित्य के पाठ की समुचित रूप से ग्रहण न कर सकने के कारण कभी-कभी अर्थ का अनर्थ हो जाया करता है और अनेक भ्रम फैल जाते हैं। इसके यथेष्ट प्रमाण समानालोचक ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। जैसे— विसौ आधुनिक विचारक के अनुसार भाषा में कैशिकी कृति नहीं होती जबकि संस्कृत के साहित्यकारों उसमें उक्त कृति का स्पष्ट शब्दों में विधान करते हैं। इसी प्रकार प्राचीन रूपक-संश्लेषणकर्ताओं द्वारा निरूपित रूपक के भेदों के लक्षण एवं वर्गीकरण के अनुसार कतिपय रचनाओं का समावेश निश्चित रूप में किम वग में किया जाय इसका निर्धारण करना भी कठिन ही है। भास्कर के 'उन्मत्तराघव' को कोई अर्थ के दृष्टान्त के रूप में उद्धृत करते हैं तो कोई उसे संश्लेषण की सत्ता देते हैं। व्यायोग और उत्कृष्टिकाय का क्षेत्र भी विशादास्पद है। किसी ने लटकमेखक ग्रहसन को ईश्वरमृग कह कर साहित्यिकों के समक्ष एक नई समस्या प्रस्तुत कर दी है।

प्रारम्भ में लेखन के साधनों के अभाव में कण्ठाग्र करके साहित्य को जीवित रखने की प्रथा थी और साहित्य के ऐसे रत्नों की संख्या भी अल्प थी। विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा पुस्तकालयों के नष्ट कर दिये जाने तथा गिने-पुने महाकवियों के अतिरिक्त शेष कवियों के प्रति विद्वानों के उपेक्षा-भाव के फलस्वरूप प्रगणित एकाकियों के नाम तक नष्ट हो चुके हैं। उपलब्ध कृतिओं के भी सावधानिक पुस्तकालयों में रक्षण तक नहीं हो पाते। इन पर किसी ने टीका तर्क करने का भी प्रयास नहीं किया है। केवल चतुर्माथी (१६म-१८म शताब्दी, भूतविरोधवाद, उभयाभिसारिका और पादशास्त्र) पर कतिपय पूर्वीय एवं पश्चिमीय विचारकों ने अवश्य ध्यान दिया है, जिनसे इनके इतिहास तथा पात्रों के चरित्र पर कुछ प्रकाश पड़ता है, परन्तु इनकी साहित्यिक महत्ता और इनकी आधुनिकतम उपयोगिता का ज्ञान नहीं हो पाया।

यह ठीक है कि प्राधुनिक नाटक के तन्त्र का बहुत विकास हुआ है और पश्चिम से परिचय होने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से अनेक रङ्गमञ्चीय परिवर्तन भी हुए हैं, परन्तु परिवर्तन का अर्थ किसीकला का पतन नहीं होता है। उत्थान और पतन की क्रिया का नाम परिवर्तन है।

प्रत्येक देश के साहित्य की कुछ अग्नो विशेषताएँ होती हैं जो युगधारा के अनुसार बदलती जाती हैं। सस्कृत में दुखान्त नाटको का प्रभाव इनकी प्रमुख विशेषता है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा नहीं मरती। सत्य की शक्ति पराजय होने पर भी अन्ततोगत्वा न्याय की ही विजय होती है। इस दृष्टि से जीवन मदा आशमय है। इसी कारण शुद्ध दुःख-प्रवण नाटक सस्कृत में नहीं रहे जाते थे। परन्तु युग ने सस्कृत के आचार्यों को भी इस दिशा में धागे बढ़ने को बाध्य किया है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और अन्तर्द्वन्द्व के चित्र भी प्राचीन नाटको में कम मिलते हैं। कहा जाता है कि हास्य के क्षेत्र में भी सस्कृत और उस पर आधारित भारतीय साहित्य में उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं हुई। सस्कृत के एकांकियों के शास्त्रीय नक्षत्रों को देखने से तो ऐसा आभास होता है कि हास्य से युक्त रचना के प्रणयन के समय औचित्यानौचित्य का ध्यान रखने का विधान था, किन्तु साहित्यकारों को उसमें पूरी सफलता नहीं मिल सकी क्योंकि प्राचीन हास्यप्रधान रचनाओं में बुभुक्षित ब्राह्मण विदूषक का या निम्नकोटि के पात्रों का ही चित्रण किया गया है। हास्य कृतियों की हीन अवस्था केवल भारत में ही नहीं, पश्चिम में भी रही है। किसी कलाकृति का रूप निखरते-निखरते ही निखरता है। प्राधुनिक सम्प्रदाय के विकास के साथ इस क्षेत्र में भी पर्याप्त सुधार हुआ है।

आज हमारा देश विविध सङ्क्रमण काल से गुजर रहा है। हम अतीत के आधार पर नवीन का निर्माण करने की ओर अग्रसर हैं। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अधुनातन नाट्यसिद्धि और रमयण का विचार करते समय प्राचीन धरोहर का भी लेखा-जोखा लें। प्रस्तुत रचना का उद्देश्य एकांकियों के क्षेत्र में भारत की देन को साहित्यानुसंधानियों के सम्मुख प्रस्तुत करना है। इस रचना के अध्ययन से यह भेद भी खुलेगा कि पद्यप्रदर्शक के रूप में भास-कृत अनेक एकांकी रचनाओं के होते हुए भी सस्कृत के एकांकी नाट्य-साहित्य का शृंगार एवं हास्यमूलक पक्ष किस प्रकार एक अन्य जघन्य दिशा की ओर प्रवृत्त हुआ।

कामविज्ञान आयुर्वेद के सूक्ष्म अध्ययन की सीमा में निश्चय रसिक कविता के हाथ में पड़ कर अदसीन हाम्य का साधन बन गया। जिसके कारण सम्स्कृत की प्रतिष्ठा को बहुत आघात पहुँचा। ईसा की १२ वीं शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ऐदव्यनाली राजाघा की विलासितामय प्रवृत्ति को देखकर कविता ने आसक्तिप्रधान लोलाचों की ही विषयवस्तु के रूप में चुन कर रचनाएँ लिखीं। सांस्कृतिक दृष्टि में यह मधोगति का काल माना जाता है। इस समय के अधिकांश कवि राजाघो के आश्रय में थे। उन्हें अपने आश्रयदाताओं की विषयानुक्ति एवं अन्य दुष्पसनों के प्रति अनुगम की देखभाल होना था, किन्तु शब्द की समिवाशक्ति से उन्हें इस ओर से त्रिमुख करने में व समय को असमय पाते थे। सब वे वक्त्रोक्तियों द्वारा उन्हें सम्भाव्य पर सने के उद्देश्य से ऐसी रचनाएँ करते थे। यद्यपि इनको पढ़ते समय कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही रहा होगा, परन्तु वास्तव में लोक के हासविदास के साथ इनमें दशकों के लिए सीख भी छिपी रहती है।

लौकिक जीवन के आह्लाद विषय रीति-नीति एवं आचार व्यवहार के दर्शन नाएँ एवं प्रहसनो में किये जा सकते हैं। आचार में छोट होना के कारण पूरा नाटक ही तरह इनमें नाटक के सब तत्त्व का रहना आवश्यक नहीं होता। पक्षों भिन्न भिन्न दृष्टि के लोगों के मनोरंजन के हेतु विविध प्रकार की रचना होनी थी समय की बचत की ओर लोगों का ध्यान आज की अपेक्षा कम था।

वर्तमान मचीयलोके में हर वस्तु को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का आग्रह है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह भी दोषमुक्त दिखाई नहीं देता। प्राचीन कृतियों में शृंगारकाजोसरस वरुण का समीचीनी में प्रस्तुत किया जाता था उस आज सम्पूर्ण रूप से खोकर यथावत् दशकों के समक्ष दिखाया जाना है। फलतः जिन वस्तुओं की देख और सुन कर बहुत ही दृश्य-वस्तुओं के अनिवार्य मुख को सब ही मन अनुभव करने लोग प्रसन्न होते थे, अब उन बातों को (वैयर्थिक) साक्षात् देखकर उनसे पहले-सा रस प्राप्त नहीं कर पाते। इससे मानव की सुकुमार भावनाओं को आपात पहुँचने की आशंका है। सुकुमारभाव प्रदहन की भारतीयों की विशेष शैली रही है, जिसके दर्शन संस्कृत की कृतियों में ही किये जा सकते हैं।

संस्कृत के उपन्यास एकाकी साहित्य को देखने से विदित होता है कि युग की भाँति के अनुसार रचे गये थे एकाकी बहुत समय तक लक्षणग्रन्थों में निदिष्ट नियम-वर्धनो से जकड़े रहे। उनके अन्तरंग और बहिरंग-स्वरूप में कोई अन्तर नहीं था। इनकी काव्यमत्त शैली में भी भाषाकालिदासादि प्राचीन स्वातन्त्र्यात्मा कवियों की लेखनशैली की आलम्बित छटा प्रतिबिम्बित है। इन्हीं कवियों द्वारा प्रयुक्त परिचित छन्दों की ध्वनि भी इनमें गूँथती सुनाई देती है। मृष्टि के विकासक्रम की स्रोतक परिवर्तनशीलता ने संस्कृत की विचारधारा को धीरे-धीरे बदला। ईसा की १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में सांस्कृतिक इतिहास में पुनर्जागरण के लक्षण दिखाई देने लगते हैं, जो १८ वीं शताब्दी में पूर्ण रूप में स्पष्ट होने लगते हैं। इस समय से शास्त्रमूलक साहित्य निम्नस्तर की शायद पर उच्चस्तर की ओर प्रवृत्त होता है।

वर्तमान युग का संस्कृत एकाकी अपनी प्राचीन-नाट्य-परम्परा से भी दूर रह चुका है। आज की आवश्यकता तथा जनशक्ति की उपेक्षा नहीं कर रही है। इसके अनिश्चित भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के प्राचिन तथा पश्चात्य एकाकियों की संस्कृत के प्राचीन एकाकी साहित्य से तान्त्रिक दृष्टि में तुलना करने पर यह रहस्य किसी में छिप नहीं सकता कि इस ऐतिहासिक युग में, चिरकाल में चली आ रही असंख्य संस्कृत नाट्यधारा के साथ पश्चात्य नाट्य-धारा का गमन हो जाने के कारण भारतीय एकाकी का रूप आज बदला हुआ दिखाई देने लगा है। आधुनिक कार्यमूलक युग में सोई हुई एकाकी कला का पुनर्जागरित करने का श्रेय पश्चात्य नाट्यकारों को है, इसमें संदेह नहीं।

आधुनिक युग के प्रवाह में बहते हुए संस्कृत एकाकी भी तान्त्रिक और साहित्यिक दृष्टि में विस्तार के स्थान पर संकोच को महत्व देने लगे हैं। एकाकी भाषा को सरलतम बनाने की चेष्टा हो रही है परन्तु ये पहले की तरह निरुपम विषय में लोकप्रिय हो सकेंगे, ऐसा शक्य नहीं होगा। इनका प्रयोग शिक्षण अथवा भारतीय धर्म और संस्कृति की प्रचारक मन्त्रालयों में कतिपय संस्कृतानु-रागियों और वालकों में संस्कृत के प्रति प्रेम बढाने के लिए होगा। भारतीय संस्कृति के रक्षण और साधक इन्हें भूल नहीं सकेंगे और इनकी बख्शी बलासेट ड्रामा (बन्द कमरे में यदा-कदा खेलने योग्य) के अन्तर्गत की जा सकेंगी।

इस प्रबन्ध में कई त्रुटियाँ विचारकों को निराश कर सकती हैं। व्यष्टि रूप में कुछ एक एकाकियों के नामों और उनकी सशित बधाओं से भी विद्व-

समाज पूर्व परिचित हो सकता है, परन्तु समस्त उपलब्धानुपलब्ध एकावियों का तुलनात्मक, शास्त्रीय समीक्षण समष्टि के रूप में संभवतः अब तक नहीं आ सका है। यद्यपि पुस्तकों के अभाव में एकावियों की नाममात्र में परिगणित कृतिषां में सबकी सागोपाग समीक्षा नहीं हो सकी है, तथापि मुझे इस बात का मनोप है कि इसमें प्राचीन एवं अर्वाचीन एकाकी भेदों के सब प्रकार सम्मिलित हैं। यदि यह प्रबन्ध ससृष्ट-नाट्य-साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कर सका तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगी। ग्रन्थ के ग्रन्थनकाल में मुझे विवेच्यविषय की पाठ्य पुस्तकों की उपलब्ध करने की विकट समस्या का सामना करना पड़ा। इसके लिए मुझे ग्वालियर के विश्वविद्यालयीन तथा केन्द्रीय पुस्तकालय के अतिरिक्त बम्बई की नेशनल लाइब्रेरी एवं पटना नगर के समस्त ग्रन्थसंग्रहालयों की छान-बीन करनी पड़ी। इन स्थलों के पुस्तक संग्रहों में भी प्रबन्ध के विषय से सम्बद्ध पाठ्यपुस्तकों के अभाव की बात निराश ही होना पड़ा।

बावनकोर विश्वविद्यालय की ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी से मुझे रामपाणिवाट की चन्द्रिकावीथी की प्रतिलिपि प्राप्त हो सकी। इसके लिए मैं प्रतिलिपिकार के सरस्वती भग्मा तथा इस लाइब्रेरी के व्यवस्थापक के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

पुस्तकालोचन के अतिरिक्त भारत के ख्यातनामा विद्वानों के साथ पत्र व्यवहार एवं उनसे साक्षात् विचार-विनिमय द्वारा लाभ उठाने की अवसर भी समय-समय पर मिलते रहे हैं। उनमें से अनेक उपयोगी परामर्शों के लिए मैं निम्नांकित महानुभावों की विशेष कृतज्ञ हूँ—

श्री एम. एन. घोषाल, अध्यक्ष, वसन्त विभाग, पटना विश्वविद्यालय
 गुरुवर डॉ. बेचन झा, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, पटना विश्वविद्यालय
 हास्य सम्राट् प्रो. हरिमोहन झा, अध्यक्ष, दशन विभाग, पटना विश्वविद्यालय
 डॉ. बी. जे. सदेसरा, बडौदा विश्वविद्यालय
 डॉ. बी. राधवन, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र
 प्रो. बी. एन. मुण्डी, मराठी विभाग, महाराष्ट्र लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर
 प्रो. आर. डी. लदड़, (संस्कृत विभाग) महाराष्ट्र लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर
 डॉ. एच. आर. दिवेकर
 प्रो. एम. एन. राजन्, अध्येक्षी विभाग, महाराष्ट्र लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर

डॉ. बी. राघवन् ने संस्कृत के आधुनिक एकाकियों के सम्बन्ध में मुझे पर्याप्त सामग्री भेजी और डॉ. सदेसरा ने कतिपय दुर्लभ पुस्तकों को भेजकर जो मेरी सहायता की है उसके लिए मैं इनके प्रति थढ़ावनत हूँ। प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर अपने पिताजी अद्वैत डा. ईश्वरदत्त जी, अवकाश प्राप्त, पटना विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष तथा अपनी पूजनीया माताजी श्रीमती सुमित्रादेवी, स्नातिका, बालन्धर बन्धा महाविद्यालय का सादर साभार स्मरण मेरा पात्रन कर्त्तव्य है क्योंकि उनके आशीर्वाद और अमूल्य सहयोग के बिना कार्य का सफल होना असम्भव था।

इस रचना को पूर्ण कराने का श्रेय पूज्य आचार्य डॉ. प्रभुदयालु जी अग्निहोत्री (सचालक, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल) को है जिनके कुशल निर्देशन तथा निरीक्षण में इस कार्य का सम्पादन हो सभा है। उनसे जो प्रेरणा और सहायता मिली है उसके लिए मैं उनके प्रति केवल कृतज्ञता प्रकट-शित करके ही मुक्त नहीं हो सकती।

वीरबाला शर्मा

१५, लक्ष्मीबाई कालोनी, ग्वालियर

व्यवहृत सक्षिप्त शब्दचिह्न

मूलशब्द

सक्षिप्त चिह्न

अग्नि पुराण

अ पु

श्री वैकुण्ठेश्वर ओत्पिष्टल सीरीज

एस वी ओ सी

कर्पूरमय १

क म

काव्यमादा

का मा

गायकबाइ ओत्पिष्टल सीरीज

गा गो सी

भावप्रदान

भा प्र

सागरनन्दी

मा न

साहित्यदपण

सा द

नाट्यशास्त्र

ना शा

नाटक लक्षणरहाकोश

ना ल र

नाट्यदपण

ना द

मदनकेतु प्रहसन

मदनकेतु

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

भूमिका

व्यवहृत-संक्षिप्त चिह्न

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

१-३०

हृदय-काव्य का महत्व, रूपकों के भेद, एकाकियों के प्रकार, नाटक का आरम्भ और विकास, नाट्य का विकसित अवस्था से एकाकिया का आरम्भ, एकाकियों का उपयोग, भाणों एवं प्रहसनो का महत्व, एकाकिया के विषय में प्रचलित भ्रम, एकाकियों की तालिका ।

द्वितीय अध्याय

भाण

३१-१०५

रूपनिर्देश, भाण की व्युत्पत्ति, विभिन्न आचार्यों के मत, भाण और प्रहसन, शृंगार का शास्त्रीय विवेचन, भाणों का साहित्यिक महत्व, भाण और वेश्या, भाणों का उद्देश्य, भाण और मोनोएक्टिंग, चतुर्भाणी तथा उत्तर कालीन भाणों की समीक्षा ।

तृतीय अध्याय

प्रहसन

१०६-१७७

रूपनिर्देश, विभिन्न आचार्यों के मत, हास्य का शास्त्रीय विवेचन, हास्य पर पूर्वीय एवं पाश्चात्य आलोचकों के मत, प्रहसनो की समीक्षा - दामव प्रहसन, मत्तविलास प्रहसन, लटक-मेलव प्रहसन, हास्याणव प्रहसन, सोमवल्ली योगानन्द प्रहसन, भयवद्वज्जुबम् प्रहसन, भदनकेतु प्रहसन, धूतममा-गम प्रहसन, वीतुकसर्वस्व प्रहसन, वीतुकरत्नाकर प्रहसन, धूतनतनव प्रहसन, उन्मत्तविलास प्रहसन, डमस्क प्रहसन, नाटकाट प्रहसन इत्यादि ।

चतुर्थ अध्याय

व्यायोग

१७८-२४५

संस्कृत में व्यायोग, परिचय, विभिन्न आचार्यों के मत, व्यायोगों की समीक्षा, महाकवि नाम के व्यायोग, धनञ्जयविजय व्यायोग, पाथपराक्रम और

घनश्रवविजय की तुलना, घनश्रव विजय की टीका, व्यायोग और प्रेक्षण का तुलनात्मक विवेचन, सौमन्धिर्य हरण, नरकामुर-विजय व्यायोग, माहित्यिक समीक्षा, प्राकृतिक चित्रण, शब्द पराभव का ऐतिहासिक महत्त्व, भौमविक्रम, यमेश्वर पर माघ का प्रभाव, एकादियों में रग, वीर रस का शास्त्रीय विवेचन, व्यायोगों में मनोविज्ञान और घनद्वन्द्व ।

पंचम अध्याय

उत्पृष्टिकाक तथा वीथी

२४६-२६०

उत्पृष्टिकाक, रूप-निर्देश, विभिन्न भाषाओं के मत, अक्षरों की विवेचना-उत्पृष्टिका, कणमार, दूतघटोत्तच ।

वीथी-रूपनिर्देश, विभिन्न भाषाओं के मत, सीलावती वीथी और चन्द्रिका की समीक्षा, रामपाणिवाद का परिचय, रामपाणिवाद और भास ।

षष्ठ अध्याय

संस्कृत साहित्य में एकाकी रूपक

२६१-३२५

उपरूपक-परिचय और उपरूपको का इतिहास, एकाकी उपरूपक-गोष्ठी, नाट्यरासक, रासक, भालिका, उत्साह्य, काव्य, प्रेक्षण, प्रेक्षणक, हल्लीश, श्रीगदित इत्यादि की शास्त्रीय दृष्टि से विवेचना, उन्मत्तरागव (प्रेक्षणक) तथा मुमद्राहरण (श्रीगदित) की समीक्षा ।

सप्तम अध्याय

बीसवीं शताब्दी के संस्कृत एकाकी

३२६-३७७

उनका वर्गीकरण और समीक्षा, रेडियो रूपक, सवादमाला, अनूदित रूपक, नाट्य-शास्त्र के नियमों के आधार पर उनका विश्लेषण, संस्कृत एकाकी पर युग का प्रभाव, आधुनिक एकाकियों में प्राकृत का बहिष्कार, रगमचीय और साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्यांकन, पाश्चात्य एकाकियों की तुलनात्मक विवेचना, आधुनिक भारतीय भाषाओं (हिन्दी, बंगला, मराठी, मैथिली तथा दक्षिण भारतीय) के एकाकियों की शास्त्रीय दृष्टि से तुलना ।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:

३७८-३८३

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

संस्कृत वाङ्मय में काव्य शब्द जिस अर्थ का बोध कराता था, उसके लिए आङ्ग्ल साहित्य और नाटक इन दो शब्दों का प्रयोग जान लगा है। काव्य शास्त्र के अनुसार 'काव्य' में इसके शब्द और दृश्य इन दोनों रूपों का समावेश होता है, जबकि आज के विद्वान प्रायः समावधारणुक्त कविताओं की समष्टि को ही काव्य समझने लगे हैं। आज दृश्य काव्य के लिए एक पृथक् पद 'नाटक' का प्रयोग किया जान लगा है। इसके विपरीत भारतीय नाट्य शास्त्र के अनुसार रूपक के दम भेदों में से एक भेद-विशेष का नाम नाटक है, जिसे सम्वृत के आचार्य रूपक कहते हैं। इस स्पष्टीकरण में, जाना है, उक्त दोनों शब्दों का अर्थ समझने में पाठकों को किसी प्रकार का भ्रम नहीं होगा।

दृश्य काव्य का महत्त्व

काव्य अपने शब्द और दृश्य दोनों ही रूपों में प्रभावोत्पादक तथा आनन्ददायक होता है, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि में इन दोनों में भी दृश्य-काव्य, नेत्र तथा दण्ड इन दोनों इन्द्रियों द्वारा ग्रह्य होने के कारण

अव्य-काव्य की अपेक्षा जो केवल कर्णेंद्रिय द्वारा ही श्रोता की आराधना करता है, अधिक तीव्र प्रभाव उत्पन्न करता है।

काव्य जगत् में प्रसिद्ध ऐसी अनन्त उक्तियाँ मिलती हैं जिनमें दृश्य-काव्य की यह विशेषता प्रमाणित होती है। उदाहरणार्थ मुद्राङ्गनाम भाण्डागार नाट्यक की स्मृति में कहा है "नाट्यमन्त कर्तित्वम्" अर्थात् राज्य रचना का परमात्मक नाट्यक में पाया जाता है। उनमें कवि सहृदय जन-समुदाय के हृदय में राज्य वस्तु को दृश्य रूप प्रदान करके अभिव्यक्ति तथा भाषुक्ता का चरम सीमा तक पहुँचा देता है। अग्नि पुराण में 'निवर्गमाद्यनम् नाट्यम्' के द्वारा नाट्य कला को धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति का साधन घोषित करते हुए उसकी काव्य-सम्बन्धी महत्ता स्वीकार की गयी है। कवि-सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध "काव्येषु नाट्यक रम्यम्" तथा अग्निमय दण्ड की "अभिज्ञानशङ्करानन्दादिदमप्यधिक मतम्" जैसी उक्तियों भी उक्त तथ्य की ही पुष्टि करती हैं।

रूपकों के भेद

भारतीय नाट्य परम्परा में प्रधान और गौण रूपक के भेदों प्रभेदों का बाहुल्य दृष्टिगत होता है। भरत मुनि से लेकर साचाय निश्चयनाथ जैसे प्रकाण्ड साहित्य शास्त्रियों तक के ग्रन्थों में इस विषय का विशद विवेचन किया गया है। मुख्य रूपकों के दस तथा गौण के अधिक से अधिक बीस भेद प्राप्त हैं।^१ रूपकों की नाट्य प्रकरण, व्यायोग, श्रव, डिम, ईहामृग, प्रहसन, भाण समवकार और बीधी ये दस विधायें होती हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र, अग्निपुराण, नाट्यनक्षत्ररत्नकोष, भावप्रकाश, दशरूपक तथा साहित्य दण्ड में रूपकों के ये ही दस भेद वर्तनाये गये हैं। वेदस रामचन्द्र और हनुमान् न रूपकों की संख्या बारह मानी है।^२ नाट्य-वर्णशेखर रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र रूपकों के नाट्य, प्रकरण, नाटिका, प्रकरण, व्यायोग, समवकार भाण, प्रहसन, डिम, श्रव, ईहामृग और

१ - भा प्र (नवम अध्याय) पृष्ठ २१६

२ - नाट्य प्रकरण च नाटिकाप्रकरणम् ।

व्यायोग समवकारौ भाण प्रहसनौ च ।

श्रव ईहामृगौ बीधी च चार वृत्तयः स्मृताः । ना द

वीथी ये वारह भेद मानते हैं । हमचन्द्र ने भी पहले काव्य को प्रेक्ष्य और श्रव्य इन दो भागों में बाँट कर प्रेक्ष्य को पुनः पाठ्य एवं गेय में विभक्त किया है ।^१ इस प्रकार काव्यानुशासन में नाटक, प्रकरण, नाटिका समस्कार, ईहामृत्य, डिम, व्यायोग, वीथी, सट्टक, प्रहसन भाण और उत्सृष्टिकाक ये वारह भेद पाठ्य के तथा डोम्बिका, भाण, प्रस्थानक, शिगक, भाणिका, प्रेरण, रामाकीड, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित एवं काव्य ये भेद गेय के बतलाये हैं । यहाँ भरत मुनि के दस रूपकों में नाटिका और सट्टक को मिलाकर हमचन्द्र ने वारह रूपक गिना दिये हैं । उप-रूपकों के विषय में यद्यपि भरत मुनि स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहते तथापि उनके नाट्य-शास्त्र के सम्प्रेक्षण से नाटो नामक एक गौण रूपक का भी पता चलता है तथा अभिनवगुप्त की टीका से डोम्बिका, भाण, पिद्गक, भाणिका, प्रेरण, रामाकीड, हल्लीम एवं रासक इन नौ प्रकार के गौण रूपकों से हमारा परिचय होता है । इसके अतिरिक्त अग्निपुराण, घनध्वज की अवलोक टीका, द्वादशतन्त्र के भावप्रकाश तथा साहित्य-द्वय में इन उप-रूपकों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख मिलता है । साहित्यिकों द्वारा उपेक्षित उप-रूपकों का विमल विवेचन एवं प्राचीन आचार्यों के मुख्य और गौण रूपकों के भेदों पर तुलनात्मक दृष्टि में विचार करने पर कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता । आचार्य रामचन्द्र ने नाटिका तथा प्रकरणिका को भरतादि प्राचीन नाट्यमीमांसकों के दशरूपकों के साथ जोड़ दिया है, जबकि साहित्यदर्पणकार ने नाटिका की उप-रूपकों के साथ गणना की है । प्रकरणी को भी नाटिका के साहचर्य से गौण रूपकों का ही एक भेद माना जा सकता है ।

उपर्युक्त नाट्यलक्षणकारों के अतिरिक्त विख्यात प्रहसनकार बोधायन कवि ने भी अपने 'भगवदज्जुकम्' प्रहसन में नाटक के भेद-प्रभेदों पर प्रकाश डालते हुए, हास्यरसप्रधान प्रहसन को प्रेक्ष्य काव्य का उत्तम रूप बतलाया है ।^२

१ - काव्यानुशासन — [का. मा] अध्याय ८ पृ० ३७६

२ - भगवदज्जुकम्—पृष्ठ ३

एकाकियों के प्रकार

रूपका के इन भेदा में भाग्य, प्रहसन, व्यायोग, ग्रीकी और अर या उत्सृष्टिनाय तथा उप-रूपका में गोष्ठी, नाट्यरासक, रासक, भागिका, विलासिका, उल्लास्य श्रीगदित, हल्लीस, प्रेक्षणा, (प्रेक्षाणक, प्रेक्षणीयक) प्रेक्षण और काव्य एकाकी हैं । कनिष्ठ एव भी माहित्यार हैं जो रूपों एव उपरूपका के उपयुक्त भेदों में से कुछ अन्य भेदों को भी एक एक का प्रेक्षण बतलाते हैं जैसे—ईहामृग । इसमें आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार एक एक होता है ।^१ किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें चार एक भी हो सकते हैं । भावप्रकाश में अंकित उप रूपकों की पुष्टिका में भी कतिपय ऐसे नवीन नाम उपलब्ध होने हैं जो एकाकी की कोटि में रमे जा सकने हैं— यथा प्रस्थानक डोम्बि या डोम्बिका आदि । ऊपर गिनाने गये रूपका तथा उप रूपका के अष्टाईग भेदों में (१० रूपक + १८ उप-रूपक = २८) पन्द्रह ऐसे नाट्य प्रकार हैं जो एक ही एक के होत हैं । इस प्रकार सम्बन्ध में एकाकी रूपकों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

सम्बन्ध के एकाकी रूपक नाटक की अन्य विधाओं में रूप की दृष्टि में ही छोटे होते हैं । इनमें पात्र कम होते हैं और एक ही होता है परन्तु बड़े नाटक का कोई एक एक एकाकी नहीं कहा जा सकता क्योंकि एकाकी आकार में छोटे होते हुए भी अन्य रूपकों की तरह अपने में पूर्ण होते हैं । इनमें नाट्य रचना के समान सब तत्वों—महि, मध्यग, अयप्रवृत्ति एवं पतनादि—का विधान होता है । केवल बन्धु, नेता और रस ही इनके भेदक तत्व हैं । नान्दी-पाठ, पूवरगक्रिया, म्यापना आदि की व्यवस्था एकाकियों में भी होती है । भारतीय नाट्य शास्त्र में इसका विनाश वसुन किया गया है ।

१ - ईहामृगअकविना यथा कुमुदसेनर ।

विप्रचरकारकनि विगनानि प्रत्ययकारकानि विधागहेतवो यत ।

तेनैक एषाक । नायकास्तु द्वावश्च समवकारानिदमेन व्याख्याते सत्तामान्

म्याजानिनि । कथापनादिभि । ईहा चेष्टा गृग्येव स्वीमाताया यत

त ईहामृग ।

—अभिनवगुप्त

निम्नलिखित तालिका से भी एकाकियों का पारम्परिक अन्तर समझा जा सकता है -

एकाकी रूपक	रस	अवस्थाएँ	मधियाँ	वृत्तियाँ	विषय-वस्तु
भार्य	शृंगार, वीर हृत् हास्य	प्रारम्भ, फलागम	मुख निबंहण	भारती और कैशिकी	उत्पाद्य (कवि व्यक्ति)
प्रहसन	हास्य एवं शृंगार	प्रारम्भ फलागम	"	"	उत्पाद्य
वीथी	शृंगार (मुग्ध) अन्य रसों की छाया मात्र	प्रारम्भ फलागम	"	कैशिकी	उत्पाद्य
व्यायोग	वीर, रौद्र एवं वीभत्स	प्रारम्भ यत्न फलागम	मुख, प्रतिमुख एवं निबंहण	कैशिकी से भिन्न तीन वृत्तियाँ	प्रश्रयात
मक्	कहण	प्रारम्भ फलागम	मुख, निबंहण	वही भारती वही कैशिकी का प्रयोग	तभी प्रश्रयात तभी उत्पाद्य

नाटक का आरम्भ और विकास

नाट्य की उत्पत्ति के मूल कारणों और इसके आदि स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि नाट्य का आरम्भ एकाकिका से हुआ होगा तथा उसका अभिनय स्थल रङ्ग होगा टोले मुहल्ले का खुला स्थान। घरेलू व्यवहार में पाँच से लेकर दस में भी अधिक अको वाले शास्त्रोक्त वृक्षपादकों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता था। यहाँ तो एक घकवाला लघु नाटक ही मनोरञ्जन कार्य में सफल हो सकता था। सम्पत्ता और मानसिक विकास के इतिहास पर दृष्टिपात करने से भी यह स्पष्ट हो जायेगा कि एकाकी रूपक नाटक-साहित्य के विकास-क्रम में पहले प्रादुर्भूत हुए होंगे तथा अन-अन-उनका विकास पुरा और महा-नाटकों के रूप में हुआ होगा। ऋग्वेद के यम-यमी, पुरुषसु-उर्वशी सम्वाद तथा दशममण्डल के सोम-यज्ञ के प्रमग में इन्द्र के भार्य सूक्त (मन्त्र-११६ आदि) एवं पञ्चरत्न के महाभाष्यगत कस-वध आदि निर्देशों में एकाकियों की प्राचीनता पूर्णरूपेण पुष्ट होती है। अधिक सम्भव है कि इसका मूलपात

छाट-छाट हास्यपरक संवादों में ही हुआ होगा जिन्होंने धीमे चलकर प्रहसन का स्तर ले लिया हो। श्री मनहड़ भाग का रूप का प्राचीनतम नाट्यरूप मानते हैं परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में धीमे किये गये भाषण एवं प्रहसन साहित्य के तुलनात्मक साहित्यिक परीक्षण के आधार पर प्रहसन भाग में पूर्व की रूपक विधा प्रवीण होती है।

नाट्य का विस्तारित अवस्था से एकाकियों की ओर प्रत्यावर्तन

सम्पत्ता के विकास के साथ-साथ मनुष्य का जीवन अधिक जटिल और जटिल होना जाना है जिसके फलस्वरूप समय का भार मनुष्य को खलन लगता है परन्तु दैनिक धर्म के कारण बोधो हुई शक्ति को पुन प्राप्त करने के लिए मनोरंजन की आवश्यकता भी बनी ही रहती है। जहाँ एक ओर हम नाट्य साहित्य के विकास में महानाटक की एक विशेष अवस्था उपलब्ध होती है, वहाँ दूसरी ओर एकाकी नाट्य-साहित्य की परम्परा के प्रमाण भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। एकी वस्तुस्थिति में यह प्रश्न स्वभावतः उपस्थित होता है कि महानाटक की अवस्था प्राप्त करने के बाद फिर एकाकियों की ओर नाट्य साहित्य का प्रत्यावर्तन क्योंकर हुआ? इनके उत्तर में निम्नलिखित चार कारण युक्तिमय प्रतीत होते हैं —

- १— समय का अभाव।
- २— धर्म की वचन।
- ३— व्यञ्जना की तीव्रता।
- ४— किसी एक रस का प्राधान्य।

एक ओर के नाटक में दृष्टा और नाट्यकार दोनों के समय तथा धर्म की वचन होती है, यह स्पष्ट है। किन्तु इसके साथ साथ व्यंग्य वस्तु की व्यञ्जना भी इनमें तीव्र होती है। वृत्तान्तों की नाट्य-रचना में पञ्चमण्डप एवं पञ्चमण्डपवृत्ति आदि अंगों का विकास अनिवार्य होता है। उनमें रसा की विविधता भी रहती है जिसके कारण गम्भीरता का सा जाना भी स्वाभाविक ही है। इन दोनों प्रभावोत्पादकता शक्ति पड़ जाती है। जिस प्रकार कोई नदी जितनी अधिक चौड़ी होती है उतनी ही उसकी धारा अधिक मन्द पड़ जाती है और इनके विपरीत नदी जितनी सिकरी होती है उसकी धारा भी उतनी ही अधिक तीव्र हुमा करती है। यही नियम नाट्य कृतियों के आधार पर भी लागू होता है। इसी कारण एकाकी नाटकों की व्यंग्य वस्तु का प्रधान तीव्रतर होता है।

नाट्य-साहित्य के लिए बिन शास्त्रीय शृङ्गार आदि आठ रसों का विधान किया गया है उनमें करुण, रौद्र और भद्रमुत आदि कुछ ऐसे रस हैं जो अधिकतर गंभीर प्रकृति के लोगों की ही तृप्ति कर सकते हैं, सब-सामान्य की नहीं। इसके विपरीत शृङ्गार अथवा हास्य के लिए सर्व-सामान्य का आकर्षण स्वभाव से होता है। तदनुसार एकाकियों में व्यंग्यवस्तु हास्य-रस जैसे एक लोकप्रिय तथा ग्राह्यादिकारी रस के साथ द्रष्टा के हृदय तक पहुँचाई जाती है। अतः काव्य-कला की कल्याणकारिता (सिवेतरक्षति) अपने धरम उत्कर्ष तक पहुँच जाती है जिससे दशक अनुप्यगत वृत्तियों के चिह्नर से भी आराम के उत्थान और रसानन्द इन दोनों अपूर्व लाभों का एक सत्य भागी बनता है।

संस्कृत रूपकों में विद्रूपक

भागों एवं प्रहसनों में चिट तथा विद्रूपकों को ही मुख्य अभिनेता के रूप में हम देखते हैं। विद्रूपक^१ भारतीय हास्य का प्राचीन प्रतीक और उसकी वेश-भूषा, वातचीत आदि हास्योत्पादन करने वाली होती है। विद्रूपक पद का ही अर्थ होता है रूप को विद्रूपित करनेवाला (विद्रूपयति आत्मानमिति = बि + रुप + णिच् + ण्युल) अर्थात् जो तरह-तरह के स्वांग बनाकर अपने आपको भद्दा रूप देकर दर्शकों को हँसाता है, वह विद्रूपक कहलाता है। उसकी असंगत, असम्बद्ध तथा विपरीत शब्दावली, वाचिक और रहस्य-महन की विधि तथा हँसानेवाली शक्ति, क्रमशः आगिक एवं आहार्य की ओर इंगित करती है। उसकी रूपप्रतिष्ठा में वाचिक आगिक तथा आहार्य अभिनय की ओर संकेत है। वह जाति का आहारण होता है।^२ भरत मुनि से लेकर विश्वनाथ तक तथा अन्य आधुनिक पूर्वो एवं पश्चिमी विद्वानों ने इसके लक्षण पर पर्याप्त विचार किया है जो एक दूसरे से प्रायः मिलता जुलता है।

नाट्य-जगत् में सर्वत्र नायक (राजा) के अन्तरंग मित्र के रूप में उसके दर्शन होते हैं। वह अपने कम, रूप एवं भाषण द्वारा हास्य को अभि-व्यक्ति करना हुआ खिल हृदय राजा तथा अन्य अन्तःपुरवासियों का मनोरञ्जन

१ - ना रा रा को सो भाग १ पदम अध्याय १२४ पृ० २४२

२ - यामना दन्तुर कुब्जो द्विज्या विद्वत्तानन ।

सगति विमलसदृश सविधे यो विद्रूपकः ॥

करता दिखाइ देता है। शृंगार रस के प्रसंग में माहियगाम्वा में नायक के सहायक का विवर्जन करने समय विट विद्रूपन पीरमद नमगचित्र आदि पात्रों का वर्णन किया गया है। इन पात्रों का हीन पात्रों की मजा भी दी जाती है। गारुडानन्द व कामसचिव और वाग्भट्ट के नमगचित्र का अनुवर के अंतर्गत एक भेद स्वीकार किया है। राजा का सखा नान के कारण विद्रूपक प्रेम काय में सहायक पीरमद एवं नमगचित्र का कार्य करता हुआ भी पाया जाता है। वचनप्यानु वरहयुक्त और प्रणयमान की स्थिति में ज्योति नायिका को प्रसन्न करने वाला होता था। यह नायक में विद्रूपक का नम प्राय इसी रूप में पाया है। भाग के अविभाजक तथा राजपौर की वपस्मज्जरा में विद्रूपक का वसितापान उमरा पेटूपन और रामायण की कथा में अनभिज्ञता आदि वाक् हास्य रस द्वारा बीच बीच में नाटकों की गम्भीरता का टर कर उसे आनंदवधक रूप देने का विचार होता गया है।

अथ विद्रूपक ५। भांति वह भी भाजन भट्ट है। परन्तु पात्रमद के रूप में उसका चरित्र बहुत निम्न है। इसके अनिश्चित स्त्री पात्रों में चंदा दामोदरी आदि द्वारा हास्य की धारा प्रवाहित की जाती है।

भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के चौथे अध्याय में (१६-२० श्लोक) नायक के चार भेदों के आधार पर विद्रूपक — भा चार भेद वचनाय ६— लिङ्गी द्विज राजजीवी आर गिच्छ जाक्रमन विध्य नृप धमाय तथा प्राह्मण नायक व विद्रूपक होते हैं। गारुडानन्द में भी भरत के शास्त्रों में परिचित परिचिता के साथ चार प्रकार के नायकों के विद्रूपकों के पृथक् गुणों का उल्लेख किया है^१। स्वताप्रा का विद्रूपक मयराज्य हूत वतमान और भविष्य का पात्र व साहचर्य का विशेषण तक एवं वितर कराना तथा अथ अग्रिम में गढ़ बनवाना तथा दूरी का परिचालना का प्रियतम होता है। यह राजपौर का मन्त्रालय ही नहीं अपितु अन्तर्पुर का गालाचक भी होता है। विद्रूपक का अथ आलोचक (गणक) भी होता है। वचना के गुण ३५ अथ मयराज्य का प्रयाग नयधरार भी पतन भी विद्या है। वचना गान्धर्व या यत्र आलोचन या मन्त्रालय विद्रूपक रूप में

१. भा. ३. गारुडानन्द ५०-२०१-२०२

२. प्राचीन साहित्यशास्त्र चारों चारोंका सबविद्रूपक ।

लौकिक साहित्य में मनस्वर चित्रक के वक्ष में अवतरित हुआ है। यहाँ वह अतः पुर के द्विदावर्णन द्वारा अपने वक्ष प्राचीन वक्ष की हमें याद दिलाता है। बाह्य होकर भा वह प्राकृतभाषी होता है। भरत सागरनदी आदि आवाय भी उसे प्राकृतभाषा ही बनाने हैं।^१

चित्रक कथं आदि पाश्चात्य समानाचरा ने चित्रक जैसे हीन पात्र के ब्राह्मणत्व पर आशय प्रमत्त किया है। उनके मत से इस पात्र के राजा से सम्बद्ध होने के कारण ही मभरत ने प्राचार्यों ने चित्र जाति का होना प्राकृतिक समझा होगा। चित्र होने के कारण राजा के साथ इसके पारम्परिक गठ प्रेम को जानिगत मनितता दिये नहा कर सहेगा। इसके मूल में यही आत्मिक भावना द्विती होनी चाहिये। रत्नबाम के निम्ने ब्राह्मण जन्म मात्रक वृत्ति के व्यक्ति का रत्ना ०। अधिक उत्तरक है। नायक तथा नायिका के पारस्परिक प्रणय-कथा का प्रभावक रूप में न ब्राह्मण पञ्चर सौमनस्य की स्थापना में ब्राह्मण ही अधिक सफल हो सक्ता है। उनके मान्य में महत्ता में सम्पन्न प्रथम प्रणयकार ना रहे पा सकत है। महाप्रणयि में उल्लिखित एक ब्राह्मण चर्चि की पुत्रता भी इस परिणामीन चित्रक में की जा सकती है। चित्रक में निम्न प्रिय प्राकृतभाषी राजा का नाट्य में यान इस बात का प्रोष है कि अभिनय-कला की उत्पत्ति जा नाधारण में हुई।

वाल्मीकिमणि के काममूत्र में भा चित्रित होता है कि चित्रक राजा का पता और पनाहकार हा नहीं उनसाधारण का स्तहान भी होता था। मनोरञ्जन वाय में महावरु के म्प में चित्र पीठमद आदि पात्रों का उल्लेख काममूत्र में भी मिलता है।^२ नाट्यमन्त्र नाममूत्रादि शास्त्रीय ग्रन्थों के प्राचरिक्त चतुर्भागा में ना चित्रवक्ष्यादि के तीरन् पर पयात प्रकाश

१ शास्त्रार्थवर्णनी नम् — ना ना जयस्य १८

गौतमीय — यन्त्रा कामम् पृष्ठे ।

एना एन पञ्च अष्टिवात्र चित्रक ॥

ना ल र

२ — भास्कर धुनरिणाभासात् ।

चित्रककुटुम्बधनुदानी नायक ॥

चन्द्रिका शास्त्र चित्रकप्रयत्नात् यथा ।

चित्रकप्रयत्नात् ॥ ८ ॥

डाला गया है। तबल ग्रन्थों में विदूषक का भेद सहित विस्तृत वर्णन तथा उसका प्राकृत प्रयुक्त होना भी लक्षित किया गया है। आचार्य वात्स्यायन द्वारा विदूषकानि का नागरिक के भित्र एवं सत्ताह्वार के रूप में उल्लेख करना इस बात को प्रमाणित करता है कि विदूषक तथा निट केवल नाट्य जगत् (उममें श्री विदुषपर भारण ग्रहण एवं प्रसरण) की ही वस्तु नहीं थे परितु वे साधारण लोग के जीवित प्राणी भी थे जिनका पता ही था हास्यमय अभिनय प्रदर्शन द्वारा नागरिकों का मनोविनोद करना। संस्कृत में निट रङ्गमञ्च एवं साहित्यिक रूपों के परम्परा के बाद भी परम्परागत जन-नाट्य का क्रम प्रायः स्थित नहीं हो पाया है। हम प्रायः भी लोक में प्रचलित टेम्पू के खेल एवं गुजरात के इसी शैली के नाट्य भवाई का देखकर प्रसन्न प्राणों की अनुभूति होती है। टेम्पू धारा के मुख में प्रकृति किशोरी वर्णन करने वाली गायिका सुनकर हमारी सम्मोहिता का बॉव दूध जाना है और भवाई में रगना नामक एक हँसोड़ पात्र के नाट्य रूप देखकर संस्कृत नाटकों के विदूषक का चित्र स्वतः उत्पन्न हो जाता है मरकस का जोकर भी विदूषक का ही विद्रूप है। जनभूमि का लोकप्रिय रासवीला का मनमुत्ता भा विदूषक का ही एक रूप होता है।

अथवास्तव कामनास्त्र नाट्यशास्त्र सम्पूर्ण तथा प्राकृत और प्राचीन प्रथा में निरुद्ध लाक्षणिक एवं वात्सीयनाट्य परम्परा के विवरण के अध्ययन में यह निर्विवाद है कि नाट्य प्राचान भारतीयों के जीवन का अविनाश प्रकृत था।

जन-नाट्य एवं लोक-रङ्गमञ्च

लोक-नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों में सेलबद्ध न होता हुआ भी जन जीवन में व्याप्त रहा है और यदि तथा नाटककार इन लोक नाट्यों में अनुप्राणित होने रहे हैं। डॉ० एम एन दासगुप्ता तथा संस्कृत साहित्य के अन्य विद्वान् समीक्षकों ने बारम्बार राजाधित नाटका एवं रङ्गमञ्चों के अतिरिक्त जन-नाट्य तथा लोक रङ्गमञ्च की परम्परा की स्थिति का समर्थन किया है। लोकनाट्य परम्परा सिट्ट रङ्गमञ्च एवं निट्ट नाट्य-साहित्य की समनुतिनी होकर चलती रही है। इस धारा के नाट्यों के कुछ रूप बहुत ही प्रभावशाली और चमत्कारादायक रहे हैं। जन नाटकों के विविध रूप प्रायः दसन को मिलते हैं उनमें शृङ्गार और हास्यप्रधान एकाकी भाण तथा प्रहसन एवं दीप्तरसादिन व्यायोग रूपों

की तुलना करने में ज्ञान होगा कि एकांकी रूपक तथा उप-रूपको या इन सोन-नाटकों से निकटतम सम्बन्ध है। भाषाओं की छाया "भारत" में और अद्भुत एवं व्यायोग की भलव 'कठपुतली' के सन में देखी जा सकती है।

भारत एक कानिदास के समय में लेकर ईसावी इनकी शताब्दी तक सम्पूर्ण-साहित्य में निरन्तर उत्कृष्ट नाटकों की रचना होती रही जो प्रायः नाटक, मद्रक, मोटर प्रयत्न प्रकरण के रूप में थी। रूपक के ये भेद नाट्य-रचना के सविधान की दृष्टि में प्रायः भिन्न-भिन्न हैं।^१ इनका मुख्य उद्देश्य श्रवणताका एक राजाओं के जीवन की घटनाका का वर्णन करके उच्च वर्ग के सम्मानित व्यक्तियों का मनोरञ्जन करना था। इन नाट्य रचना के समय नाट्यकार मंचन करने थे, जिससे वे उपहार के पान में बन सके।^२ इनमें हाम्यमय अभिनय के प्रदर्शन का प्रवर्तन कम भिन्न था। प्रकरण की छात्रर दूसरे किसी पूर्ण भिन्न नाटक में इस साधारण जनता के समार व दर्शन नहीं हो पाते। इस अभाव की पूर्ति नाट्यशास्त्रकार न बार में प्रचलित नाट्यकृतियों के आधार पर नाट्य-भेदों में प्रकरण की कोटि के सुकुमार-पद्धति के भाषा, प्रहसन आदि तथा व्यायोग एवं उत्कृष्टिका नामक आज-प्रधान-शैली के सामाजिक रूपों को स्थान देकर की और नाट्यकारों से उनके लक्ष्य ग्रन्थों का प्रसारण कर इस नाट्य-रिति को आगे बढ़ाया। भारत ने 'नाट्य' नामक पञ्चम वेद का निर्माण साधारण जनता (उसमें भी शूद्र जाति) के विनोद की ध्यान में रखकर ही किया था और उनके नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट

१ - नाट्यमय प्रकरण ...

रूपकाणि दश ॥

विषय —

नाटिका श्रोतव्यं गौरी मद्रक नाट्यरामकम् ।

...

भारतः प्रादुरूपरूपकाणि मनीषिणः ।

विना विशेष मयः सः नाट्यमयम् ॥

भा. द. पत्र ६, ३-६

२ - सूत्रकार — प्रायः ! विनिरु मुनिता परिवर्द्धिम् ।

मद्रक — सुविनिर्माणोपयुक्तार्थं न विमरि पट्टिम्यम् ।

सूत्रकार — मद्रक, रूपकाणि त सूत्राणि ॥

आरितो गद्गदितुषा न साधु मन्त्र प्रयोगविज्ञानम् ।

सन्तर्पणं विज्ञानायाः प्रत्यय चेतः ॥

वि. श. १, २.

चतुष्टय" भस्म की व्यवस्था सर्वसाधारण के लिये ही होती थी। इन बातों को देखते हुए कुछ लोगों का भारतीय नाटकों को केवल राजदरबार की चर्चों का वर्णन करनेवाला नाट्य कहना न्यायमय प्रतीत नहीं होता।

संस्कृत एकाकियों का प्रारम्भ

ग्याहवी शताब्दी के अन्तिम और बारहवीं शती के प्रारम्भिक भाग में द्रविड में मुसलमानों के प्रभुत्व की स्थापना के पक्षस्वरूप संस्कृत के पठन-पाठन एवं लेखन की गति कुछ धीमी पड़ गई। शासन की ओर से समुचित प्रायश्चित्त न मिलने के निराशा के भावर में होने लगने हुए पराधीन भारतीयों का स्वाधीन पन्न होना नितांत स्वाभाविक था। यह काल भारतीय इतिहास का मध्ययुग कहलाना है। इस युग में वैदिक धर्मावलम्बियों के पन्न के साथ-साथ बौद्ध धर्म की भी अवन्ति होने लगी। भारतीय समाज हर तरह की बुराईयों से ग्रस्त हो गया। ऐश्वर्यशाली भोरी राजा पुरों के साथ-साथ बड़े बड़े विद्वान् कवि एवं दर्शनशास्त्री आदि भी अपने मुख्य धर्म पथ का त्याग कर उदयागामी होने लगे और मद्यपान के कारण नष्ट म चूर सभ्रान्त नागरिक राजाओं पर अनगण्य प्रताप करते दृष्टिगत होने लगे। इस प्रकार हमारा विवेक्य काल देश के नैतिक ह्रास का युग है।

गम्भी विषम परिस्थिति में भी भारत के कुछ भागों में स्थान-स्थान पर धनक समृद्ध नरेश छोटे छोटे राज्यों में राज्य करते रहे, जिनकी धन-धन्या में निराशा धर्मात्मा जन भजन-पूजन में लीन हो गये। इनके ही माध्य में संस्कृत के विद्वान् माहित्यकार पनपे। इन्हीं विद्याप्रेमी क्षत्रिय राजाओं ने सकटापन्न देश के माहित्य की धारा को अवरुद्ध होने से बचाया। इनके सरक्षण में रचकों की भी रचनाएँ चलती रही। परन्तु ये कृतियाँ कालिदासादि की रचनाओं की तरह उच्चकोटि की न थी। इनमें से अधिकांश नाट्य-ग्रन्थ एकाकी ही थे। इनका अभिनय धर्म-कर्म में व्यस्त तथा शासन से उन्नत जनता के मनोरञ्जनार्थ दली-देवताओं के मांगनिक पूजनोत्सव (यात्रा) के अवसर पर राजाज्ञा से हुआ करता था।^१ इन उत्सवों में दूर-दूर के निवासी भाग लेते थे। इन

१ - (क) शृङ्गारमय्य पृष्ठ २

(ख) रामदानमय्य पृष्ठ २

(ग) शृङ्गार मय्यक मय्य पृष्ठ

नाट्यों के अभिनय का उद्देश्य राजाओं का अभिनय करना था किन्तु इनमें मोक्ष-मुधार की भावना भी छिपी होती थी।^१ हास्य-रस निक्षण आदि में भी बड़ा महत्त्व होता है। शिक्षाप्रद एवं रोचक होने के कारण ही भारतीय नाट्यलक्षणकर्त्ताओं ने भी भाषा की साधकता का माना था। इनके पुष्टिकरण में इनका ही कहना साथ ही होगा कि लक्षण ग्रन्थों में एकाँक रूपका में भास का विस्तृत लक्षण प्राप्त होता है। अन्य एकांकियों का भेदमात्र बताना दिया गया है।

संस्कृत के प्रतिष्ठित नाट्यकार भास द्वारा प्रतिष्ठापित एकाँकी परम्परा को उनके उत्तरवर्ती रूपककारों ने मध्यकालीन भारत की विरासतों हुई दशा की सुधारन के लिये भास, प्रहसन, व्यायोग, अङ्क, वीर्यादि एकाँकी प्रकारों की रचना करके आगे बढ़ाया। संस्कृत में इस प्रकार का साहित्य पर्याप्त है परन्तु बिखरा हुआ है। प्राचीन काल में भारत में प्रचलित एकाँकी लक्षण-प्रणाली के अस्तित्व के प्रमाण के लिये पर्याप्त उपलब्ध होती है। यद्यपि आज सब की सब एकाँकी कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं तथापि शास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थों में विभिन्न आचार्यों द्वारा भास, प्रहसन एवं व्यायोगादि के नामों एवं उनके कृतियों के उद्धरणों को देखकर यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि किसी युग में भारत में इन संस्कृत एकांकियों की अच्छी माँग थी जिसकी पूर्ति के प्रयत्न में हमारे नाट्यकार सदैव लगे रहते थे।^२ इनके अनिरुद्ध पारिभाषिक शब्दों के उदाहरण-स्वरूप कल्याणकन्दल, इन्दुलेखा-वीर्यादि एकाँकी रूपकों के श्लोकों को उद्धृत करने से यह भी व्यञ्जित होता है कि अपने युग का प्रतिनिधित्व करनेवाले इन एकांकियों ने रस-

१ - धर्मयशस्यमापुष्य हित बुद्धिनिर्घनम् ।

साङ्गदेवजनने नाट्येनैवविध्यति ॥

नाट्यशास्त्र

२ - मधेन्द्रनाथ धीधाम् - - राजावयम् । ...

नाट्यरत्न - पृ० १४२

मयाक करणचन्द्र -

रत्नार्णवमुद्राकर (द्वितीय विभाग) पृष्ठ ११६

मयाक-दत्तनामनि प्रथमे - -

रत्नार्णवमुद्राकर (तृतीय विभाग)

पृष्ठ २७८

शास्त्रियों का भी प्रभावित किया था और वे भी इन चोटि के रूप रचा करते थे।^१

एकाकियों का उपयोग

उन एकाकी नाटकों में कहिया के संदेश भी निहित है। मध्यम-व्यायोग में विपत्ति से दीन-दुःखियों की रक्षा करना ही मनस्वियों का बर्तव्य बनताया गया है। इन-वाक्य के अनुसार अपने व्यवहार में नीचता खिलाना मानवता के अधःपतन का सूचक होता है। पराभार में दान-पुष्प द्वारा यम गरीर का सरसण ही परम बर्तव्य बतलाया गया है। उन्मत्त और दानप्रदोत्सव में बुद्ध की भीषणता का चित्रण करके मानवता को उसके विरत करने का उपदेश दिया गया है। उन्मत्तिकाक एवं व्यायोग साहित्य में यही बतलाया जाता है कि धनीति के दमन के लिए घोर बर्ष महन करना पड़ता है। तथ्यों का सामना करने के उपरान्त ही धर्मीय की सिद्धि होती है। सरहट की ये कृतियाँ प्राचीनकालीन होकर भी धार्मिक के युद्ध और उत्थानि में रत उन्मत्त राज्यों को दीन, सयम एवं सहिष्णुता की शिक्षा देने की क्षमता रखती हैं। बगह विनाश का कारण होता है। यहाँ तक कि मनुष्य के गुह्यतम मनोवेगों (वामेपणा) के प्रकाशन द्वारा जीवन की मयायना के दशन कराकर शृंगार एवं हास्य-रस की अनुभूति करानेवाली भाण तथा प्रहसन जैसी शास्त्रीय एवं आधुनिक मध्य समाज की दृष्टि में निम्न स्तर की नाट्यविधाएँ भी (जिनमें धूर्तों और वेश्याओं का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है) प्रशकों के लिए कोई न कोई सीख देती ही है। “कुट्टिनामत” अथवा ‘गम्भीरी मत’ भाव्य में दामोदर गुप्त ने स्पष्ट कहा है कि धूर्तों तथा धूर्त नारियों का वरण करनेवाले बाव्यों के अर्थ के सम्यक् अध्ययन एवं दर्शन से पाठक तथा दर्शक मनुष्य समाज में बमनेवाले इन पाखंडियों को लपेट में

१ - एवमपि मध्य यथा अस्मदुपदे निर्णयभीमनाम्निष्ठावोये धीम - - -
य गु न्यायपरा पराजयवधरास्ते पश्यतामो यः,
नीच कमरुत पराभवमृतस्तत्प्राज्ञ वर्तमाने ॥

नहीं आ सकते।^१ केवल अध्येता और द्रष्टा ही नहीं प्रत्युत विपरीत परिस्थितियाँ में पड़ जाने के कारण बाधित होकर बिट अथवा बेम्यावृत्ति ग्रस्त कर जीविकाजन करनेवाले लोग भी दयार्थता का ज्ञान हो जाने पर अपना सुधार स्वयं कर सकते हैं। मनुष्य दुर्बलताओं में ग्रस्त रहता है। राजा, पंडित, साधु, स्त्रियाँ दुर्गियों को दिखाने के लिये भले ही मत्वाचरण में अलग-अलग रस्से परगु अचेतन मन में निहित पापों के बंध भी टांगे होते हैं। अपनी इन दुर्बलताओं के प्रति शोदासीन्य-प्रदर्शन द्वारा वह स्वयं को प्रवर्धित कर सकते हैं परंतु समाज को नहीं।^२ इसके दृष्टिकोण से ऐसा भी वगैरे निम्न जीविकोपाजनाथ निरन्तर अपने घर तथा परिवार में दूर रहना पड़ता है। यथा—श्रमजीवी तथा देश-रक्षा कार्य में रत सैन्य सिविल सैनिक शत्रुवादों में निरत। ऐसे प्रवासियों के निकट मनोमुक्त मनोरंजन माधना का मदा अभाव रहता है। इस वगैरे को ध्यान में रखकर कोशिश के अग्रशान्त्र में वर्णित गणिकाध्यक्ष के प्रकरण एवं हमारी विवेच्य साहित्यिक रचनाओं में वर-वनिताओं के प्रसंगों की प्रचुरता के आधार पर आधुनिक युग में भी सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी उपमागिता-अनुपयोगिता पर विचार के लिए पर्याप्त अवकाश है।

भारों एवं प्रहसनो का महत्त्व

साहित्य शास्त्र में मनुष्य के विभिन्न मनोनिर्देशों प्रेम, हर्ष, विषाद आदि के सूक्ष्म शृङ्गार, हास्य, धीर आदि नव रस होने हैं। इनमें मानव जीवन की कमनीयता एवं सरलता प्रदान करने में शृङ्गार तथा हास्य का विशेष महत्त्व होता है। इन दोनों रसों में बहुत समानता है। कभी-कभी यह साम्य इतना अधिक होता है कि साहित्य शास्त्रियों के लिये शृङ्गार और हास्य में भेद निर्धारित करना दुष्कर सा हो जाता है। उदाहरण के लिये नाट्य-शास्त्र के टीकाकार आचार्य अभिनवभूषण की भाषा तथा प्रथम नामक कृष्ण के भेदों की टीका के उस अंश को याद किया जा सकता है, जहाँ वह भाषा और

१ - कान्तिदत्त व शृङ्गार मन्वत्वाद्यादयः प्रवेत्तव्यौ।

२ - वक्ष्यते कदाचिद्विद्वत्परापूर्वकृष्टिमीभिनि ।

प्रहसन न तादात्म्य स्थापित करने में भी मनोबल नहीं करने ।

गवाकी माहिर्य का अधिमान उन्हें दाग्मा में हुआ है । साम्प्रतीय दृष्टि में गवाकी रूपका में सम की पूर्ण आनन्दानुभूति नहीं होती है, क्योंकि इनमें प्रयुक्त गवाग्ग नहीं रगाभाव होता है । इस रगाभाव में भी कभी-कभी काव्य व मायुष का आस्वादन गिरा जा सकता है क्योंकि काव्य जगत् में ऐसा कोई शब्द नहीं पाई शब्द नहीं ऐसा कोई नाम नहीं जो वाय्वारमय माहिर्य का अंग न हो । किन्तु रसिक न बड़ा है— रस्यपुगुम्भिवमुदारमवापिनी-चमुप्रमादि गहन विवृत च वस्तु । यद्वाप्यक्तु कवि भावनाभावमान सप्रमत्ति यत्र रसभावमर्पणं नाक ॥ यदि क समाप्त में कोई वस्तु बड़ी रस्य या जुगुप्सित उदार श्रवण अनुदार नहीं, नत्र वृष्ट पवित्र म चमस्तन होकर रसभाव का प्राप्त हो जाता है । यही कारण है कि भाषा एवं प्रहसन का उत्पाद्य विषय कायुक्त्य दृष्टि में वृत्ति होने पर भी प्राचीन एकाकी प्रयोगार्थों की बाध-यन्त्र में यन्त्रय चमक रहा है । आचार्य आनन्द वचन व अनुसार प्रत्यक्ष वस्तु मानव की चित्तवृत्ति की विशेषता को प्रकट करने में समर्थ होती है ।^१ रमादि चित्तवृत्ति व ही छात्रव है । मञ्जुन के (उत्तर काटि के रूपको) नाट्यादि व पात्र ना अपनी मन स्थित दुःखनाथा या दगादर गुप्त रखने हैं जिसके कारण वह सामाजिक की हृदयस्थ बुगण्या का परिणाम नहीं कर पाते । इनके विपरीत, वैशिष्ट्य जीवन एवं धूर्त व चरित रा धरन करनवान भाए तथा प्रहसन के अभिनय अपनी चित्तवृत्ति की मुख्यतम विशेषताया को भी शक्य व सामन बयास रूप में जान कर रख दत हैं । वह शृङ्गार-वर्णनारिक्त द्वारा उनके प्रति प्रेक्षा के मन में घृणा उत्पन्न करके तत्समन्धी वमजारिया को दूर करने में सफल हो जाते हैं । अर्थात् शृङ्गार का निर्मेत रूप सहृदय सामाजिक को मुख्यकर प्रवीत होता है, यहाँ इसका अति-रक्षित नम-वर्णन उनके हृदय में रस-राज के प्रति घृणा भी उत्पन्न कर सकता है । मध्यकालीन भारतीय दृष्टिकोण व पुत्र तथा तत्कालीन गवाकी साहित्य (नाग, प्रहसन, वीर्यादि) व अध्ययन में यह महत्त्व धुन जाता है कि

१ - चित्तवृत्ति निजदा द्विरसात्प ।

न च तस्मिन् वस्तु विचित्र यथाचतवृत्तिरिष्टपुण्यवृत्तिः ॥

श.० जयेंद्र द्वारा प्रकाशित गवागाथा - (वृत्तीय उद्योग)

निबद्ध मनवाने तथा भ्रमर वृत्तिवाले कामुक नागरिकों का चग्नि विषमय होना हुआ भी दशकों को अमृतमय सदेव दे सकता है ।

व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कराने के अतिरिक्त कवियों के जीवनकाल तथा उनके आश्रयदाताओं के जीवन चरित पर भी इन एकांकियां प्रकाश डाल सकती हैं । उदाहरणार्थ ज्योतिरीश्वर के घृतसमागम ग्रंथन एवं अन्य एकांक रूपका का नाम लिया जा सकता है जिनका यथाम्मान विवेचन किया गया है । अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी इनकी उपयोगिता प्रत्यक्ष है ।

शास्त्रा में सोदाहरण निरूपित एकाकी भेदा तथा एक प्रक में निबद्ध रूपकों के प्राप्त होने से, यद्यपि संस्कृत-साहित्य में एकांकियों का विशिष्ट स्थान प्रत्यक्ष है, तथापि नाट्य-साहित्य के इस अपरिह्य मङ्ग के साथ विद्वान् प्रायः न्याय नहीं कर पाये हैं । अब तक नितना भी शोधकाय हुआ है वह या तो नाट्य-शास्त्र से सम्बद्ध है या रूपक की प्रमुख विधाया यथा—नाटक, प्रकरण और सट्टक के विषय में हैं । एकांकिया का क्षेत्र अभी तक उपेक्षित सा ही रहा है । संस्कृत में एकांकियों की परम्परा रही है और उसका प्रभाव परिवर्ती साहित्य पर भी पड़ा है । हिन्दी, बंगला, मराठी आदि आधुनिक भारतीय एवं कन्नड़, तेलगू, द्रविड आदि दक्षिण भारत^१ की भाषाओं को इनसे प्रेरणा मिलती रही है, और इन्हें उससे दायरूप में बहुत कुछ प्राप्त हुआ है । इस बात की पुष्टि में भागत की प्रमुख भाषा हिन्दी ने नाट्य साहित्य का भवशोकन प्रमात होना । बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पहिले हिन्दी ने नाट्य-साहित्य में मौखिक कृतियाँ नहीं के बराबर थी । अतः भारतेन्दु के रूपक साहित्य को ही हिन्दी की प्रथम मौखिक सम्पत्ति समझा जा सकता है जिस पर संस्कृत में प्रचलित एकाकी परम्परा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होना है । उनकी कृतियों में से ‘धनञ्जय विजय’ (व्यायोग) तथा ‘पाखण्ड विटम्बन’ (एकाकी रूपक) तो संस्कृत के अनुवाद ही हैं और ‘विषय विषमोपधम्’ नामक रूपक संस्कृत के भाषों की शैली में ही रचा गया लोकप्रिय एकाकी है । इन्होंने नाट्य शोधक

१ -- दक्षिण भारत में तो मुद्रर रूप से संस्कृत-नाटका का निषेध हुआ जाया है और वासा को इन कलाक प्रयोग की शिक्षा ही जानी रहा है । बाव भी मद्रास व विद्वान् और कलाकार कला व इन क्षेत्र में रुचि रखते हैं ।

एक छोटी सी शास्त्रीय गुप्तिका निसर्गर सस्कृत के नियमों के आधार पर हिन्दी के नाट्य-सिद्धान्त स्थिर करने का प्रयास भी किया जो एक बात को पुष्ट करता है कि हिन्दी की नाट्य-कला संस्कृत के नाट्य-सिद्धान्तों की अनुयायिनी रही है। डॉ० जयशान मिश्र के अनुसार सुधी रघुनन्दन दास का "तूनामद व्यायोग" (१६३३ ई०) मैथिली का सर्वप्रथम एकाङ्की माना जा सकता है। इससे अनिश्चित संस्कृत के भाष्य रूप में पर विचार करने हुए हम देखेंगे कि आज का मोनो ड्रामा भी एक प्रकार का 'भाषाभिनय' है।

एकाङ्कियों के विषय में प्रचलित भ्रम

परम्परागत संस्कृत की एकाङ्की कला की सत्ता एवं महत्ता का जानते हुए भी हम सम्बन्ध में साहित्यिक समाज में अनेक भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हैं। भारत के नाट्य-शास्त्र अथवा संस्कृत नाट्य साहित्य में अनभिन्न विचारकों का यह समझना तो ग्राभाविष्य है कि नवीनता, प्रथम एवं समय की कला के कारण एकाङ्की नाटक भी सिनेमा के जैसा वैज्ञानिक आधारों की भाँति बीमर्बा शताब्दी की दन है और आधुनिक साहित्य से प्राप्त हुई कोई अनोखी वस्तु है परन्तु संस्कृत के विविध विद्वानों एवं इतिहास लेखकों के ऐसे ही भ्रान्त विचारों की दखल र आश्चर्य होता है। यथा—एकाङ्कियों के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखक डॉ० कीर्ति एवं एवं वाचस्पति गौरी के निम्नलिखित उद्गार विचारणीय हैं —

(५) The Anka or One act play is represented by very few specimens

१ - कुछ भारतीयक एकाङ्की का उत्तम संस्कृत साहित्य से मिलते हैं परन्तु एकाङ्की लेखन जब बीमर्बा शताब्दी में शुरू हुआ तो स्पष्ट है कि उन पर अंग्रेजी का प्रभाव है न कि संस्कृत का।

नाटक की परम्परा, से डॉ० एम की लक्ष्मी । पृष्ठ २५३

२ - (क) संस्कृत-नाट्य - कीर्ति, पृष्ठ २६८.

(ख) संस्कृत नाटक - से डॉ० काश (डॉ० उदयमानुजह द्वारा अनुवादित)

पृष्ठ २७०

३ - संस्कृत-साहित्य का इतिहास - ल वाचस्पति गौरी

(मुद्रा सम्पन्न) पृष्ठ २१८

(स) ऐसा प्रतीत होता है कि भाग द्वारा प्रस्तुत आदर्श के होने हुए भी चापोंवा की अधिक रचना नहीं हुई।

संस्कृत-नाटकों में रस-निष्पत्ति और भावुकता के विशेष महत्व तथा साधुनिष्ठ भारतीय एकात्मियों में मनोविज्ञान एवं अन्तर्द्वन्द्व की विशेषता का देखकर ही आज के विचारक विमोहित हो रहे हैं। युग के प्रभाव में प्रभावित आज के आकाँक्षी का प्रायोगिक दृष्टि से परिवर्तित रूप भी उनके ध्यामोह का एक कारण है। संस्कृत के पुरातन एकाकी साहित्य के समीक्षण से ज्ञात होगा कि उनमें जिन विशेषताओं (मनोवैज्ञानिक विशेषण, अन्तर्द्वन्द्व आदि) का अभाव विद्वत्समाज को आज खटक रहा है, उनसे भी वह भयंकर अन्ध नहीं है। उसका चित्रण वहाँ हमारे रूप में प्राप्त जाना है।

नाट्य का मानव-जीवन में अग्रिच्छेद्य सम्बन्ध है। मनुष्य के प्रगति-पथ में जिन प्रकार उत्थान और पतन की क्रिया चलती रहती है, उसी प्रकार साहित्य के अन्य क्षेत्रों की भाँति रूपक वाङ्मय में भी यह क्रम चलता रहता है। इस तथ्य को हृदयङ्गम न कर आज के विचारक साहित्य-जगत् में प्रचारक के रूप में अवतर्गित होने लगे हैं।

वस्तुतः विनोदरस के क्षेत्र में मनोरञ्जन के मायनों के प्रभव-म्यान तथा उनके निर्माण-काल का विशेष महत्व नहीं हुआ करता। चित्तानुरञ्जक वस्तुओं का मुख्य उद्देश्य उपनोक्ता का खेद-निवारण करना होता है। भोक्ता अपनी रसिक के अनुकूल विभिन्न मार्गों द्वारा अपना विनोद करता है। विनास तथा उल्लास के रस न हुआ हुआ बुभुक्षित शान्त मनुष्य मनोरञ्जक वस्तु के रूप और गुण की परवाह नहीं करता। आह्लादमय साधनों में नाट्य सर्वोत्कृष्ट है। अन्य विनोदप्रद वस्तुओं के निर्माताओं की तरह नाट्यप्रणेतों को भी भोक्ता की रसिकता में ध्यान में रखना पड़ता है। बुभुक्षित समाज का चित्रण करने वाले संस्कृत के एकात्मियों की सर्वाधिक समस्या में उपलब्धि का भी यही रहस्य है। विश्व-साहित्य के सम्प्रेक्षण से भी यही सिद्ध होता है। अहम्मति में आकाँक्षी हृदय की संकीर्णता का त्यागकर उदारतापूर्वक विचार करने पर यह बात किसी को आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होगी कि विश्व के अन्य क्षेत्रों की भाँति भारत में भी नाट्य द्वारा लोक-रञ्जन एवं लोक-शिक्षण का कार्य होना आया है, आज भी हो रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा। हाँ, उनका स्वरूप बदल

मानता है। संस्कृत के प्राचीन एवं अर्वाचीन एकाकियों की संतुष्टिप्रता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

संस्कृत वाङ्मय में निम्नलिखित एकाकिया का उल्लेख उपलब्ध होता है। इनमें रूपक तथा उपरूपक दोनों प्रकार के एकाकी सम्मिलित हैं। इन रूपकों एवं उपरूपकों में कुछ लेखकों तथा उनके रचनानाल की निम्नदिग्गज जानकारी प्राप्त होती है किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो ग्रन्थ रूप में उपलब्ध हैं अथवा जिनका उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है परन्तु उनके रचयिताओं के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे एकाकी भी हैं जिनके नाम, लेखक आदि का पता नहीं चल सका है। इनकी विवेचना आगे प्रस्तुत की जावेगी।

एकाकी तानिका

भारण

क्रमांक ग्रन्थ का नाम

लेखक

सामान्य भारण

- | | | |
|------|-----------------------------|-------------------------------|
| (१) | पद्मप्राभृत | सूत्रक |
| (२) | धुतनिदमषाद | ईश्वरदत्त |
| (३) | उभयाभिगाग्नि | वररुचि |
| (४) | पादताडित | श्यामिनन या श्याम अथवा मोमिलक |
| (५) | कर्पूरचरित | वत्सरान |
| (६) | रत्नमदन | गुरुरान भवि |
| (७) | शृङ्गारभूषण | वामनभट्टदास |
| (८) | मदनगोपात्रविताम | गुरुराम |
| (९) | अनगनीवन | कोटवृणिभूषात्रय |
| (१०) | शृङ्गारनिनय अथवा
अपयभारण | रामभट्टदीन |
| (११) | वसन्ततिलक अथवा अम्भभाग | वग्दाचार या अम्भन याचाय |
| (१२) | शृङ्गार मुग्नर | अश्विनराय वमा |
| (१३) | शृङ्गार मयम्ब | भूतिनाथ |

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक
(१४)	मदनमञ्जरी	धनन्याय
(१५)	शृङ्गारसुखाखण्ड	गमचन्द्र
(१६)	शृङ्गारमञ्जरी	नल्लकवि
(१७)	भारतान्तिक	शकरकवि
(१८)	शृङ्गारशेखर	मुद्रमान शर्मा
(१९)	महिषमर्दन	पूवन्मू महिषमर्गत कवि
(२०)	कन्दर्पदण्ड	श्रीकठ
(२१)	अनगमजीवन	अभयवरद कवि
(२२)	अनगमवन्ध	सदानीनृमिह
(२३)	मदनमूषण	अप्पायजब्
(२४)	रमोज्ञान	श्रीनिवास वेदान्ताचार्य
(२५)	शृङ्गारकोष	कश्यपगोत्रनिलक (अभिनव कानिदास)
(२६)	शृङ्गारजीवन	अवधानसरम्बती
(२७)	शृङ्गारस्तवक	नृसिंह
(२८)	शृङ्गारमृङ्गार	विश्वनाथ
(२९)	मदनमहोत्सव	श्रीकठ
(३०)	भारतानन्द	श्रीनिवासाचार्य
(३१)	शृङ्गारराजनिवक	अविनाशीश्वर
(३२)	सप्त विद्या	श्री रघुनाथ महादेशिक
(३३)	हरिविलाम	हरिदास
(३४)	शृङ्गारदीपक	विजयीभूषणदाचार्य
(३५)	शृङ्गारपावन	वामनभट्ट बाण
(३६)	गोपाल गीतारुचि	गोविन्ददत्त कवि
(३७)	शृङ्गारमञ्जरी (अप्रकाशित)	श्रीवेदा टाचार्य
(३८)	रत्नसामुद्र	सुकरनारायण
(३९)	चानुरीचन्द्रिका	श्रीनिवास कवि
(४०)	शृङ्गार जीवन	पट्टजित् कवि
(४१)	वन्दनीयवोल्लाम	गजुदाचार्य

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक
(४२)	धम्मभूषण	वरदाय
(४३)	शृङ्गारजीवन	वरदाचाय
(४४)	शृङ्गारमहंस्व	अनन्तनारायण मूर्ति
(४५)	रमरत्नावर	जयन्त
(४६)	शृङ्गारविलास	शाम्बसिंह
(४७)	शृङ्गारमञ्जरी	रतिवर
(४८)	नरसिंहभूषण	छठवीस
(४९)	भालमगन	भालमगल
(५०)	केरलाभरण	रामचन्द्र दीक्षित
(५१)	विजयविटराज	बौधुणितम्पुरन

निरु भाण

(५२)	मुकुन्दानन्द भाण	काशीपति कविराज
(५३)	शृङ्गारराज	अज्ञात
(५४)	पञ्चबाणविलास	अज्ञात
(५५)	पञ्चायुधप्रपञ्च	अज्ञात
(५६)	प्रद्युम्नानन्द	अज्ञात
(५७)	रसविलास	अज्ञात
(५८)	रसिकरजन	अज्ञात
(५९)	पञ्चबाणविजय	रघुनाथ
(६०)	रसिकजनरसोल्लास	श्री निवासाध्वरि
(६१)	शृङ्गाररमोदय	रामकवि
(६२)	लीलामधुर	अज्ञात
(६३)	अनगतिजन	अज्ञात
(६४)	जालादर्पण	अज्ञात
(६५)	कलिकनियाना	अज्ञात
(६६)	शृङ्गारदीपिका	अज्ञात
(६७)	अम्बास	अज्ञात

क्रमानु	ग्रन्थ का नाम	लेखक
(१-)	गणेशमहा	अज्ञान
(२)	आनन्दविजय	अज्ञान
(३०)	गणेशोपासना	अज्ञान
(३१)	अज्ञानमञ्जरी	अज्ञान
(३२)	अज्ञानप्रज्ञाविज्ञान	अज्ञान
(३३)	रामविजय	अज्ञान
(३४)	पञ्च	अज्ञान
(३५)	समुद्रमण्डिताम	अज्ञान
(३६)	गणेशविष्णुनाम	अज्ञान

अज्ञान लेखक भाषा

- (३३) अज्ञानमञ्जरी
- (३६) अज्ञानमञ्जरी
- (३६) गणेश
- (३८) अज्ञानमञ्जरी

शोधकहीन चार भाषा

प्रहसन

क्रमानु	ग्रन्थ का नाम	लेखक
(१)	राम प्रहसन	भाम
(२)	मन्त्रिणाथ	महेंद्र विष्णु
(३)	पटकथेनम्	गणेश विष्णु
(४)	भगवद्गुणम्	जोषावन रवि
(५)	हाम्याणव	जगदीश्वर

ग्रन्थ का नाम

लेखक

(६)	हास्य चूडामणि	वत्सराज
(७)	कौतुक सवन्ध	गोपीनाथ चरवर्ती
(८)	पूतसमाजम्	ज्यातिदीधर
(९)	पूतननव	सामराज दीक्षित
(१०)	चण्डानुरजनम्	धनदयान
(११)	उभरन	धनदयाम
(१२)	कुमारविजय	धनदयाम
(१३)	दालापचौलव	रामनाथ शास्त्री
(१४)	मल्लिमञ्जूषा	काचनमाता (मुरेन्द्रमोहन)
(१५)	पादित्य ताण्डव	बटुकनाथ शर्मा
(१६)	पडितचरित	मधुसूदन
(१७)	नाटकाट प्रहसन	मदनन्दन
(१८)	कौतुक रत्नावर	कविदार्जिक
(१९)	बिन्दोदरम्	मुन्दरदेव वैद्य
(२०)	उन्मत्तरात्रि उत्सवप्रहसनम्	वैकटेश्वर (अप्रकाशित)
(२१)	भानुप्रबन्ध	वैकटेश्वर
(२२)	योगानन्दम्	शरणगिरिनाथ
(२३)	भुमगानन्दम्	वागुदेव
(२४)	मृष्टिप्रहसनम्	शिवज्यातिविन्द
(२५)	कुहवागेश्वरम्	बाम्भकशिर गमावर
(२६)	पापण्डविडम्भन	महेश्वर
(२७)	मदनमैत्र प्रहसन	रामणाखिवादे

अज्ञात-लेखक ग्रन्थ

- (२८) सरणिना (माधविक)
- (२९) वन्दनकीर्ति
- (३०) मागरवामुनी
- (३१) प्रतापमूर्तिविडम्भना
- (३२) कौतुक (शशिबला)

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक
(३३)	पलाण्डुमण्डनम्	
(३४)	वैकटेशप्रहसनम्	
(३५)	नटकमेतक	
(३६)	पनिश्चास	
(३७)	पद्मनरय	
(३८)	मानि दवोष	
(३९)	नम्बोदर	
(४०)	तृह्णामडक	
(४१)	देवदुर्गा	
(४२)	पूर्वैरिम्बन	
(४३)	पयोर्मग्न	
(४४)	हृदयमिन्द्र	कवि पंडित
(४५)	कामेय कुतूहल	
(४६)	कानीरास	
(४७)	उन्मत्त	
(४८)	कौतुकग्लान	कवि तार्किक
(४९)	मोमाल्ली मोगानन्द	
(५०)	गान्धकुतूहल	
(५१)	गणिक्रिष्णम प्रहसन	
(५२)	भूतचरित	

शीर्षकहीन प्रहसन

(५३) प्रहसन

व्यायोग

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक	उपजीव्य
(१)	दानावय	भाय	महाभारत
(२)	मन्थम व्यायोग	भाय	महाभारत

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक	उपजीव्य
(३)	युवचर विजय	राजचर चरित	महाभारत
(४)	धनञ्जय विजय	वनवाचाय	महाभारत
(५)	पायपगक्रम	प्रह्लादनदय	महाभारत (गोपहृणपदं)
(६)	निभयभीम	रामचन्द्र	महाभारत
(७)	भीम विक्रम	मोक्षादित्य	महाभारत
(८)	त्रिपुरविजय	पद्मनाभ	महाभारत
(९)	नरवामुखविजय	धर्ममूर्ति	महाभारत
(१०)	रन्ध्याग-मौगन्धिव	नीलकण्ठ	महाभारत
(११)	मौगन्धिव दहरण	विश्वनाथ	महाभारत
(१२)	नृमह विजय	अज्ञान	अज्ञान
(१३)	विश्रान्त राघव	कृष्ण	रामायण
(१४)	वीरराघवीय	प्रधानवक्त्रभूपति	रामायण
(१५)	प्रचण्ड भैरव	मदागिव	
(१६)	विततानन्द	गोविन्द	महाभारत
(१७)	विजयविक्रम या प्रचण्डगर्द	आयमूय	महाभारत
(१८)	जामदग्न्यजय	अज्ञान	
(१९)	किरातार्जुनीय व्यायोग	वत्सरान	महाभारत
(२०)	राक्षसराघव व्यायोग	हरिहर	
(२१)	परशुराम विजय	अज्ञान	
(२२)	वीर निरुप	अज्ञान	
(२३)	व्यायोग [अप्राप्य]	धनदयाम	

उत्सृष्टिकाक (अंक)

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक	उपजीव्य
(१)	उरुनग	भाग	महाभारत
(२)	वर्णभार	भाग	महाभारत

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक	उपजीव्य
(३)	दूतघटोत्तम	भास	महाभारत
(४)	शर्मिष्ठास्वामि		
(५)	वस्त्रावृण्डता श्रयवा वरगुणानन्दन		

वीथी

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक
(१)	माधवी	अज्ञात
(२)	प्रेमानिराम	रविपति
(३)	इन्दुलेखा	अज्ञात
(४)	बहुलवोधिका	अज्ञात
(५)	राधा	अज्ञात
(६)	लीलावती	रामपाणिवाद
(७)	चन्द्रिका	रामपाणिवाद

उपरूपक

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक
(१)	सौगन्धिकाहरण	विश्वनाथ
(२)	कृष्णाम्बुदय	मोचनाथ भट्ट
(३)	कुमारो विगमितम्	मुदर्शन
(४)	तिपुरमदनम्	शारदावनय द्वारा उल्लिखित
(५)	भैरवविलान	ब्रह्मन्त वैद्यनाथ
(६)	उन्मत्तगोधव	विद्यानाथ
(७)	उन्मत्तराघव	भास्कर
(८)	शामदहन	

प्रकार	ग्रन्थ का नाम	लेखक
गोष्ठो		
(१)	रंजितमदनिका	
(२)	सत्यभामा	
भाणिका		
(१)	वामदत्ता	
(२)	दानवेनि कौमुदी	रूपगोस्वामिन्
उल्लास्य		
(१)	दबी-महादेव	--
(२)	उदात्त कुजर	
शौगदित		
(१)	श्रीशरणातल	
(२)	मुमद्राहरण	माधवभट्ट
(३)	रामानन्द	
काव्य		
(१)	गोडविजय	
(२)	मुप्रीकवेलन	
(३)	उत्सृष्टमाधव	
(४)	माधवादय	
प्रेक्षण -- --		
(१)	वार्निवव	
नाट्यरासक		
(१)	नर्मवती	
(२)	विन्नामधनी	
रासक		
(१)	मनवाहित	

२० वीं शताब्दी के एकांकी

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक
(१)	सलब्धार्थमेषु	के. आर. नारायण
(२)	अभयमहिम्ना	श्री त्रिवेन्द्राचार्य
(३)	अन्तर्बोद्धिमन्तार	के. कमला
(४)	आपाटम्ब प्रथमद्वित्रिते	डॉ० बी. राघवन्
(५)	अवलि मुन्दरी	डॉ० बी. राघवन्
(६)	गवतीना	डॉ० बी. राघवन्
(७)	महादेवना	डॉ० बी. राघवन्
(८)	मन्त्री स्वयम्बर	डॉ० बी. राघवन्
(९)	पुनश्चमेष	डॉ० बी. राघवन्
(१०)	काप्रगुद्धि	डॉ० बी. राघवन्
(११)	विजयाङ्क	डॉ० बी. राघवन्
(१२)	विहट्टिनम्बा	डॉ० बी. राघवन्
(१३)	कामोच्चिप्रतिभा	डॉ० बी. राघवन् द्वारा रंगाना रचना का अनुवाद
(१४)	गर्लान चतुर्थी	प० क्षमाराव तथा नीलागवन्द्यान
(१५)	रत्नविधाव	प० क्षमाराव
(१६)	सर्गावविभ्रम	प० क्षमाराव तथा मीनारत्नविद्याव
(१७)	मिथ्याग्रहणम्	प० क्षमाराव तथा नीलागवन्द्यान
(१८)	कृतान्तमिन्दुवम्	प० क्षमाराव
(१९)	शिवविप्रा	प० क्षमाराव
(२०)	श्रीनैषीयम्	मीनारत्नविद्याव
(२१)	अपराधकृन्तवम्	श्री श्रीनारायण टी. पारम्भ
(२२)	अपराधकृन्तवम्	मन्द गङ्ग सोट
(२३)	हा ! हल्ल मारदे !	मन्द गङ्ग सोट
(२४)	मिथ्याग्रहणम्	श्री श्रीनारायण तीर्थ
(२५)	पुरुषकुलव मातृ	श्री श्रीनारायण तीर्थ
(२६)	कैलाशनाथविजय [व्यापार]	श्री श्रीनारायण तीर्थ

क्रमानु	अथ का नाम	लेखक
(२७)	रुद्रक्षेत्रीय	श्री जीवन्त्याय तीर्थ
(२८)	गणेश्वरान्न ग्रहमन	श्री जीवन्त्याय तीर्थ
(२९)	स्वानन्द्य गविताणम्	श्री जीवन्त्याय तीर्थ
(३०)	स्वानन्द्य यज्ञाद्वि	श्री जीवन्त्याय तीर्थ
(३१)	रुद्रभाजनम्	श्री जीवन्त्याय तीर्थ
(३२)	रिगाह विद्वान्न	श्री जीवन्त्याय तीर्थ
(३३)	मनाद्विद्वान्न	॥ शार हेवरे
(३४)	नागगान्धर्वजय	डॉ० हरिहर त्रिवेदी
(३५)	गोरगान्धर्वजय	श्री एग के रामचन्द्र
(३६)	प्रतिष्ठा	बी के चम्पी
(३७)	वनगान्धर्वजय	बी के चम्पी
(३८)	घमम्भसूत्रमायति	बी के चम्पी
(४९)	प्रनापन पादगाला	श्री मुरेन्द्रमोहन पञ्चतीर्थ
(४०)	वर्णनमुता	श्री मुरेन्द्रमोहन पञ्चतीर्थ
(४१)	उभयपत्रम्	श्री बाई महालिंग शास्त्री
(४२)	गृहगान्धर्वजय [ग्रहमन]	श्री बाई महालिंग शास्त्री
(४३)	महाद्विद्वान्न नाण	श्री बाई महालिंग शास्त्री
(४४)	रघुरज्जु	श्री मोतीलाल विमलचन्द्र
(४५)	मीतापत्रिधाग	श्री के टी पाण्डुरङ्गी
(४६)	नय पत्रम्	श्री के टी पाण्डुरङ्गी
(४७)	रिङ्गमाध्वयमीयम् [व्यायोग]	श्री नारायणराय
(४८)	मुन्यार्यवय	इलाट्टुर मुन्दर राजकवि
(४९)	वार्मान्न स्वत्र	श्री कृष्णमाधव
(५०)	वार्मिनी	श्री बोमाण्ती गमनि शास्त्री
(५१)	वीरगज	बकुलभूषण
(५२)	प्रहृति मीदय	महाव्रत
(५३)	गैर्वाणरिजय	पुनसरी जीवकण्ठ
(५४)	धरण्यरादनम्	मीतादवी
(५५)	महाध्वमन	(ध्वमन्तिना नागिना)
(५६)	सरस्वती	महाशिव दीक्षित
(५७)	निपुणिका	

द्वितीय अध्याय

भाण

रूप निर्देश

भाण एक प्रकार का एकाकी रूपक है, जिसमें एक ही पात्र होता है और वही उसका नायक होता है। यह घूर्तचरित सम्बन्धी किसी कल्पित कथावस्तु पर आधारित होता है। इसमें आकान्तभाषित के माध्यम से उक्ति-प्रत्युक्तिओं का प्रयोग किया जाता है। इसमें साथ ही मुस और निर्वहण सधियाँ—होती हैं। नाट्य के दस गण भी इसमें प्रयुक्त हो सकते हैं। भाण में कहीं-कहीं चौर और शृङ्गार की भी योजना की जाती है। कहीं-कहीं वैदिकी वृत्ति का आशय दिया जाता है किन्तु प्रायः वाग्भिनय (वाचिकाभिनय) प्रधान भारतीय नामक सम्प्रवृत्ति ही प्रयुक्त होती है। इसलिये यह रूपक भाण (कथन पर आधारित) कहलाता है। इसमें आधिक सात्त्विकादि शेष अभिनयों का अभाव ही रहता है। इसमें एक दिन का ही वृत्तांत होना चाहिये। भरत मुनि ने भाण के (१) आत्मानुभूतप्रसी और (२) परसथन वर्णन, ये दो भेद किये हैं।

भाण की व्युत्पत्ति

भाण शब्द की निष्पत्ति भण् धातु से हुई है जिसका अर्थ है कहना या बोलना। भण् धातु से आवागमक घञ् प्रत्यय लगाकर यदि इसकी व्युत्पत्ति

मानी जाय तो भाग्य का अर्थ होगा बचन या वचनव्य । चरण में धन मानने पर हमका अर्थ होगा जिसके माध्यम से बचन लिया जाय । तब यह बचन का एक माध्यम होना निम्नु यदि भाग्य मन्द की व्युत्पत्ति भण्टा पातु के लिखितरूप 'भाग्य' में मानी जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि हमके मूल में ही अनुकरणात्मक तत्त्व छिपे हुये हैं—क्योंकि तब हमका अर्थ होगा बहमबाना । इससे अतिरिक्त अधिधानतों में भाग्य पातु को ध्वनिविशेष की नवन का धोतन क्रियापद बनसाया गया है । आचार्य अभिनव गुप्त ने भी नाट्यशास्त्र की टीका में एक स्थान पर भाग्य रूपक की ध्याय्या के प्रथम में इसे भाग्य^१ पातु से निष्पन्न माना है । आगे चलकर भाग्य के अभिनेताओं का भाग्य या भाग्य नामा एक वर्ग ही बन गया जिसका पैसा हमरा हाम्य एक अभिनय के साथ मनोरञ्जन कहानियों सुनाकर धनोपार्जन करना । आज भी शादी-विवाह के अवसर पर वेद्योंओं के साथ मनोरञ्जन कार्यक्रम में सहायताार्थ शृङ्गार एक हाम्य रस से श्रोतृश्रेण " क्या कहा ? " इत्यादि वाक्य बहता हुआ एक पुरुष घोड़ा बुझाता हुआ आता है जो भाग्य के नायक बिट की याद दिलाता है तथा जिससे संस्कृत नाटक के "आवागभाषित" का स्मरण हो आता है । * जन समाज में प्रचलित स्वांग के कतिपय रूपों में " भाण्ड " नामक लोक नाटक आसीन जनता के मनोरञ्जन का प्रमुख साधन है । बहुत से प्राधुनिक विद्वान् भाण्ड को संस्कृत भाग्य का रूपांतर ही मानते हैं ।^२

* कि ब्रवीषीति यत्राद्ये विना शर्त्तं प्रमुच्यते ।

युत्स्वेवानुमप्यर्थं सत्प्रादाकायभाषितम् ॥ भा ६ १-१६०

१ - एतेनमुदैवैव भाण्डयन्ते उत्तिमन् क्रियन्ते,
अत्रागिटा अत्रि वाज विज्ञेया वयैति जाण ।

अभिनवगुप्त (अभिनव भास्ती टीका)

वा शा या ओ मी पृ० ४४६

२ - कस्यापि च मुखे चैव भाण्डं पातु प्रचलते ।

मुखरयागान्तरादुच्चार्यमाह्वयन्तीणि ॥

कथया भण धार्तान्तु अर्थावार्थदुपवापने ।

अननीन्देय भाषामित्युत्तरीय सुबुद्धिभि ॥

भरतशेखर ने उद्धृत

काव्यानुशासनकार आचार्य हेमचन्द्र न अभिनव गुप्ताचार्य की भाँति भाण का लक्षण करते हुए स्पष्ट बतलाया है कि भाण की रचना अधिकतर जनसाधारण^१ के लिए हुआ करती है । इसका समयन अभिनवगुप्ताचार्य न भी किया है ।^२ संस्कृत साहित्य के मध्ययुगीन ममन रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र न प्राचीन साहित्याचार्यों की उक्तियाँ स भत भेद प्रदर्शित करते हुए भाण का शृङ्गार वीर तथा हस्य रस भूयिष्ठ रूपका क प्रकारा म सबस अधिक 'गोवर्धन'^३ माना है । इनके मत से भाण का कथाभाग सबका बिट द्वारा कल्पित होना चाहिये तथा उसका नायक भी सदा बिट ही होना चाहिये ।^४ डा० कीच ने भी इसको जन-साधारण का चित्तानुराजन करने वाला एक नाट्य भेद स्वीकार किया है ।^५ भावप्रसाद म अपने 'बुद्ध्या कोहनादि आचार्यों के मत के साथ साथ भाण का वर्णन करते हुए आरदातनय इसे शृङ्गारमैवाधमम् कहकर भाय आचार्यों ने अपना मतभेद प्रगट करने हैं ।^६

उक्त द्वारा उल्लिखित भाण के लक्षण पर ध्यानपूर्वक विचार करने में इसके निम्नांकित दस भेद स्पष्ट होने हैं । उन्होंने इनमें से प्रत्येक प्रकार के भाण के लक्षण भी बतलाये हैं । आरदातनय का यह वर्गीकरण दस तात्पर्या

१ आत्मानुभूतगामी परलभ्य वचना प्रयत्नः ।

एकाकी अट्टवष्ट सप्त कार्यानुष्ठानात् ।

काव्यानुशासन (का भा) ~ अध्याय ८ पृष्ठ २८१

[टीका—मरुत नामात्र पुनश्चनोपयोग्यं लोकाव्यवहारो वेग्याविगति-वृत्तान्तामा निरूप्यते इति । आत्मेन पश्यन्तमत्रा-नुपयोगिपरम् ।]

मम

२ ना ना टीक या ४ सी पृष्ठ ४१०

३ भाण प्रधान शृङ्गार वीर मुख निर्वहवान् ।

एकाकी दशलाभाङ्ग शाय लोकाव्यवहारः ॥ ८१ ॥ नाट्य-पण पृष्ठ १२३

४ एको बिटो वा भूतो वा बध्नात् स्वस्य या स्थितिः ।

व्यामोक्ष्या वज्रवेदत वृत्तिमुज्या च भारती ॥ ८२ ॥ नाट्य-पण पृष्ठ १२३

५ The monologue भाण has also an obviously popular character and origin

Keith Sanskrit Drama P 348

६- भा प्र अष्टम अधिहार पृष्ठ २४५

के आधार पर किया गया प्रतीत होना है ।^१

घनअथ, भावप्रकाशकार तथा दर्पणकार आदि साहित्याचार्यों ने अपने ग्रन्थों के जिन स्थलों पर दशताम्यागो का प्राक्कनन प्रस्तुत किया है, उन पर एक तुलनात्मक दृष्टिदोष करने से विदित होया कि दारदातनय ने आचार्य विखनाथादि द्वारा प्रयुक्त "चान्यदुस्त-प्रत्युक्तमेव" इत्यादि के स्थान पर 'भाण्य मुक्त-प्रत्युक्तमेव' का प्रयोग करना उचित समझा है ।^२ भाए-रूपको में उक्ति प्रत्युक्ति के प्राचुर्य को देख कर ही समभवतः उक्त प्रसंग में भाण्य पद का प्रयोग किया गया होगा । डॉ० छपक्कू का कथन है कि भाए एव इसी कोटि के (बीष्पादि) रूपको में दस के दस तास्याय प्राप्त नहीं होने । उन्होंने अपने "भोज का शृङ्गार प्रकाश" नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में पृष्ठ ५७६ में १८६ तक, इस विषय पर विस्तृत चर्चा करते हुए भरत एव अन्य आचार्यों का स्मरण किया है । उनका यह कथन ठीक है, परन्तु यदि तत्पुरुषको में बीज, बिन्दु पनाकादि के भेदोपभेद के प्रमाण के प्रसंग में राम की पुष्टि के हेतु दर्पणकार के अनुसार इनकी अवहेलना की जा सकती है तो उमी के साहचर्य से सात्यागा के प्रयोग के समय भी रूपक रचयिताओं ने इस छद्म का लाभ उठाया हो, इसमें आश्चर्य नहीं । कोई भी रूपककार रचना करते समय, लक्षण शास्त्र अपने सामने नहीं रखने और न लक्षणाशास्त्री ही इसके विपरीत अपने पास कोई लक्ष्यग्रन्थ रखते हैं । वस्तुतः इनका प्रयोग नाट्य में भाचुर्य एव सौन्दर्य नियोगन के निमित्त ही हुआ करता था । अतः इस प्रकरण के विचारों की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती ।

- १- "दशरं स्थित दशपमासीन पुष्पवलिङ्गा ।
प्रभेदकस्तिद्वयं च सैव्यशब्द द्विगुह्यम् ॥
उत्तमोत्तमक चान्यमुक्तप्रत्युक्तमेव च ।
हास्ये दतरिष्य ह्येतदङ्ग निर्देहक्यनम् ॥

दशमपद - तुल्य प्रकाश, ११-१३

- २- उत्तमोत्तमकं भाण्यमुक्तप्रत्युक्तमेव च ।
सत्यं दशविधं ह्येतदङ्ग निर्देहक्यनम् ॥

भावप्रकाश । कष्टम वदितार - पृष्ठ २४२

मरन, धनक्षय आदि प्राचीन आचार्यों के इस एकनटाभिनयप्रधान रूपक विषयक मतों के विवेचन से भी यही स्पष्ट होता है कि भाण का सम्बन्ध निश्चित रूप से प्रहसन से रहा होगा। दशरूपक के अनुसार एकाकी में भारती-वृत्ति का विशेष प्रयोग होना है।^१ भारती भरत या नटों द्वारा अविन प्रयुक्त होने वाली रही होगी। इससे यह मान्य होता है कि प्रहसन सामाजिकों की रूचि को अभिनय की ओर आकृष्ट करने का एक सामान्य साधन था।

प्ररोचना, आमुञ्ज, प्रहसन और वीथी—भारती वृत्ति के इन चार अंगों में से पहले दोनों का सम्बन्ध नाटक की पूर्व रण क्रिया से है।^२ प्रहसन और वीथी रूपक की प्रस्तावना के अंग प्रतीत होते हैं। इन अंगों का पूर्वाचार्यों ने भी प्रलग स्पष्ट रूप से विवेचन नहीं किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रस्तावना में प्रहसन, नमवचनादि द्वारा सामाजिकों को प्रसन्नचित्त करके रूपक के प्रयोग की ओर उनकी रूचि को उन्मुख करना ही नटों का कार्य था। पीछे से प्रहसन एवं वीथी ने रूपक के एक विशेष भेद का रूप ग्रहण कर लिया होगा।

प्रहसन और भाण में समानता होने पर भी, प्रहसनो में काव्य-सुषमा भाणों की तरह नहीं निखर पाई है। यद्यपि सामाजिक कुरीतियों का पर्दाकार करने के लिये कवि के पास प्रहसन और भाण ये दोनों भेद बड़े अस्त्र थे, तथापि दोनों की प्रणाली में गहरा भेद है। प्रहसनो में भाणों की अपेक्षा अशिष्ट आत्म्य प्रयोग अधिक उपलब्ध होते हैं, जिसके फलस्वरूप प्रहसन की व्यंग्य-प्रणाली छिछली हो गई है। इसके विपरीत भाणों के माध्यम से कसा गया व्यंग अशिष्ट वृत्तनादि से परे रहता है। यद्यपि इनमें भी गाली-गलौज-मिश्रित भाषा देखने को मिलती है, परन्तु वह व्यञ्जना आदि शब्द-शक्तियों के आवरण में छिपी होने के कारण प्रकट रूप से पाठकों के सामने नहीं आती। प्रहसनो का उद्देश्य होता है येनकेनप्रकारेण प्रेक्षकों को हँसाना। जबकि भाणों में समाज के परिष्करण की भावना तीव्र होती है। इनमें प्रेक्षक

१ - भूपसा भारती वृत्तिरेकाष्टे

दशरूपक, तृतीय प्रकाश १११ ३२२

२ - भारती वस्तुतः प्रायो वाक्याप्रायो वटाध्यः ।

तथा प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनयुक्ते ।

प्रशस्तः प्ररोचना । साहित्यदर्पण, ९, पृष्ठ ३३४

को केवल हास्य-रस में दुर्वक्त्याँ लगाने का ही अवसर नहीं मिलता, प्रत्युत रसिकों को रसरसशृंगार का साक्षात् दर्शन कर एक अलौकिक आनन्द का अनुभव भी होना है । 'तटनमेतत्' तथा 'हास्याखं' ग्रहमन में किस प्रकार कवि केवल हास्य की सृष्टि हेतु विभिन्न औपधियों के द्वारा रोगों को चित्रितमा करता है यह उक्त हास्यप्रधान कृतियों में से उद्धृत वनिषय पंक्तियों में ज्ञान हो सकेगा । यथा—

चक्षुरोगे समुत्पन्न, तत्तत्रान गुद न्यमेत् ।
तदा नेत्रोद्भवया पीडा मनसापि नहि मरेत् ॥^१
अवशीर दृष्टशीर मृन्नीशीर तर्पय च ।
अभ्रत निजमात्रेण पवतोर्जि न हृष्यते ॥

नेत्र-रोग को दूर करने के लिए 'तटनमेतत्' के जन्तुवैतु वैद्य के अनुसार तपाई हुई शलाका को आँखों के बोमलाम प्रदेश में घुसा देना चाहिये और इस क्रूरकर्म के परिणामस्वरूप उत्पन्न नेत्र-पीडा का मन में ध्यान भी नहीं करना चाहिए । ठीक ही है, तब सीढ़ का शरीर से सम्पर्क होने के कारण जब प्राणान्त हो हो जायेगा तब नेत्रगत रक्त के स्मरण का प्रश्न ही नहीं उठेगा । इतना ही नहीं, आँखों का अक्षन भी बनोखा है जो " आँख फूटी और पीर गई " की कहावत को चरितार्थ करता है । थोड़े से भी भाव, थट तथा सेंदुट के दूष का आँख में लेर करने से पर्वत भी नहीं दिखाई दे सक्ता ।

इसी प्रकार 'हास्याखं' ग्रहमन में भी प्रकृतिविपरीत दण्डन द्वारा झुजती को दूर करने का एक विचित्र नुस्खा बखलाया गया है, जिसमें हास्य की ही प्रधानता है । तदनुसार देखिये—

वारिवर्णोच्चयै साकं घृष्ट्वा घृष्टिचक्रमङ्गल ।
दातव्यो वानरीरेणु मय कण्ठहरो हि म ॥ २ ॥^२

रोगी के सारे शरीर के अंगों में रीवास के समूह के साथ बिच्छू को पीस कर एव वानरीरेणु (काँटों के आकार की बारीक धूलि) का लेप कर देना चाहिये । इस चिकित्सा से खूबशी का अविलम्ब नाश हो सकेगा ।

भाण बल्यना-प्रधान रूप हाता है । बल्यना के क्षेत्र में नैपुण्य प्राप्त करना आसान काम नहीं । अमृत की अपेक्षा मृत वस्तु द्वारा साधारण लोगों का मनोरञ्जन करना सरल तथा सुलभ होता है परन्तु अमृत विनष्ट के साहाम्य से थोना और दशक का मन मोड़ लेना दुष्कर कार्य है । कुशलता प्रारम्भ में ही प्राप्त नहीं की जा सकती । सस्कृत के प्रहसनों की अपेक्षा भाणों में काव्य-सौष्टव के आधिक्य को देखने पर ' भाण ' निश्चित रूप में प्रहसन रूप के बाद का नाट्य प्रकार प्रतीत होता है ।

भृङ्गार का शास्त्रीय विवेचन

' वाम ' शब्द का अर्थ इच्छा भी होता है । भृङ्गार शब्द ' भृङ्ग ' और ' वार ' के योग से बना है । ' भृङ्ग ' बग्मोद्रेक वा तथा अण् प्रत्ययान्त ' ऋ ' धातु से निष्पन्न ' वार ' प्रार्थना का धोनक है । बलिपय बाब्यशास्त्रियों ने भृङ्गार में सतिहित भृङ्ग शब्द का धौवनकाय में उदित होने वाले भृङ्गी धनुषों के सींग से जोड़ा है और उसकी तुलना मनुष्य के जीवन के वसन्तकाल (जीवन) में उदित होने वाली उन्नत चेतना से की है । इससे भृङ्गार का क्षेत्र खुलचिन-सा हो जाता है । वस्तुतः किसी वस्तु को प्राप्त करने तथा उसमें स्नेह करने की भावना (वाम) मनुष्य के मन में जन्म में ही होती है, जिनसे अपने जीवनकाल की विभिन्न अवस्थाओं में वह निम्न-भिन्न प्रकार से प्रकट करता है । गुरु शिष्य, पिता-पुत्री, माता-पुत्र आदि अपनी इस मन स्थित वामना को क्रमशः वास्तव्य और भक्ति के मार्ग से प्रकट करने हैं । इस प्रकार मनुष्य की कर्मपणा के अनेकरूप भृङ्गार में निहित हैं । परन्तु खिन्न-रिद्ध अवस्थाओं में इसकी उद्देखपूर्ति की बजली हुई विधि के अनुगाम्य माहिस्य-शास्त्र में इनके विभिन्न नाम प्रस्तुत किये गये हैं । अधिवास रसिकों के अनुसार विरोधी लिंग के प्राणिपदों के मन में सत्कार रूप से वर्तमान रति या प्रेम रसावस्था को पहुँच कर जब आस्वादक्षमता

को ग्रहण दिया है। काव्यप्रदायकार के अनुसार कान्धाविषयक रति शृंगार का साध्य है। दपणनार प्रियजन वस्तु म मन के प्रेमपूर्ण उन्मुक्त होने की रति कहते हैं। मनोनुकूल अर्थ की सीमा निम्नदेह व्यापक होती है, यद्यपि उसमें लो-पुष्ट की पारस्परिक मानसिक अनुकूलना का भाव भी सन्निहित है। शृंगार-मुधार में रति का सङ्कुचन अर्थ वर्णित है।^१ अविनाश साहित्याचार्यों ने नायक-नायिका की मन्योन्याग्रित नैसर्गिक भासक्ति को शृंगार के लिये स्पृष्टणीय वतसादा है। मानव की मधुरतम मानसिक बुभुक्षा ' काम " को उज्जीवित तथा परितृप्त करने में समर्थ शृंगाररत को कवियों ने अपनी कृतियों में व्यावहारिकता का चोला पटना कर इसी भाव की पुष्टि की है। इसके अभाव में वे इसे रस न मानकर केवल रसाभास मानते हैं। परिणामस्वरूप अपनायक अर्थात् उपपत्ति या अन्य पुरष में अथवा अनेक पुरषों में नायिका की रति होना, नटी भादि अचेतन वस्तुओं में सम्भोग का आरोप करना, त्रियम्पति में उत्पन्न जीवों (पशु पक्षियों) के प्रेम का चित्रण, गुह्यपत्नी आदि में अनुराग, नायक-नायिका में अनुभयनिष्ठ रति, नीच व्यक्ति से प्रेमव्यवहार आदि शृंगार नहीं, शृंगार-रसाभास के रूप कहे जाते हैं। भाण प्रहमनादि एकाकियों में रसाभास ही होता है।

भाणों का साहित्यिक महत्त्व

सम्भूत के भाणों में अधिकतर वेदनाभा, उनके निवेदों तथा उनसे सम्बद्ध दूसरे दूर्त जुगारियों के वर्णन मिलते हैं। यद्यपि विभिन्न साहित्य-शास्त्रियों ने इसमें वीर, शृंगार एवं हास्य रस की प्रधानता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आदेश दिया है, तथापि संस्कृत में लिखे गये भाणों में प्रायः शृंगार की ही प्रभुत्वता है।^२ इस कोटि के रूपको में चित्रित प्राकृतिक वर्णन तक शृंगार से प्रभावित हैं। उदाहरणार्थ 'शृंगारभूषण' भाण में कवि शीपक के अनुकूल ही शृंगाररसमय प्रगातकालीन प्राकृतिक छटा का वर्णन करता है। इन पंक्तियों में वह मृग की दशा की कामियों की दशा

१ - मरकटविजयन करमसा सत्रासुको पल्लवरु रिरहा रतिः स्मृता ।

२ - शास्त्रीय दृष्टि से यह शृङ्गार रस नहीं अपितु, शृङ्गाररसाभास कहलाता है।

जैसा चित्रित करता है ।

“भाभिप्यत्यनुरागिणी बमालनी गाढानुरागं करै
रालिभ्यन् हरिषन्दनेन हरिलो बानातपच्छयना ।
मानन्द दिवसश्रियो विरचयद्वाट्टट्टरुक्तासुको,
मोलसारकमुच्चलद्भ्रमरण प्राची भुस्त धुम्बति ॥”^१

देखो तो, मूल अपने गृहरे अनुराग (लाली और प्रेम) भरे हाथ से अनुरागिणी ‘ रम्योन् और प्रेमभरी ’ कमलिनी का आलिंगन कर रहा है । पीछे बालातप के बहाने उसने दिशाघो (लीलांग) के अंग पर हरिचन्दन का लेप कर दिया है, और अब एक ओर दिवसश्री का आनन्द बढ़ा रहा है, दूसरी ओर प्राची के लाल घोंचल को लीचता हुआ उवा मुंह चूम रहा है । प्राची में भ्रमर उड़ रहे हैं और तारे छिप रहे हैं, तो ऐसा लगता है मानो उसकी झलकें लहरा रही हैं और उसने आनन्दमग्न होकर पुतलियाँ बन्द कर ली हैं । “ यहाँ कवि ने सांग रूपक या समासोक्ति का सुन्दर प्रयोग किया है । ऋग्वेद में भी उपस् का स्तुति के प्रसंग में मूल का ऐसा ही चित्रण किया गया है ।”^२

इसी भाण में इसके मूल रम के अनुकूल सुन्दर एक सरस छन्द में चन्द्रमा की स्तुति की गई है जो बामनभट्टराण (रूपकार) के अमूल्य-ज्ञान भाण्डार की परिचामक है ।^३

“ जिससे (चन्द्रमा से) मित्रता स्थापित करके कामदेव प्रेम को उद्दीप्त करने वाले रसराजशृंगार के बल से (वेग से) सत्तार रो जीत लेता है । जिसकी शीतल विरह चकार-चन्द को तृप्त करती हैं, ऐसा विश्व को आनन्दित करने वाला चन्द्रमा तुम्हें अपूर्व सुख प्राप्त कराये । ” इस प्रकार चतुर्भाषी के बाद के भाण में भी अतवार-मडिता कविता-वामिनी

१ - शृङ्गार भूषण भाण - श्लोक १२.

२ - ऋग्वेद - १-११२-२

३ - शृङ्गार भूषण - १

का मनोहर रूप देखने को मिलता है ।

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक पूर्वोक्त एवं पाश्चात्य साहित्य-जगत् में (श्रव्य तथा दृश्य कान्ठ के क्षेत्र में) आहार तथा मिहार की जो समस्या उभरी दिखाई देती है, वह भारतीयों के लिये नवीन वस्तु नहीं है । इन विषयों पर अहाँ विरकाल में रसिकगण चर्चा करते आए हैं । आहार के साथ मिहार भी मानव जीवन के दैनिक कार्यों का एक आवश्यक अंग समझा जाता था । समाज में लोगों के मनोरञ्जनार्थ वार्त्तिकों की भी व्यवस्था थी, जो किसी भी युग में ग्राह्य नहीं थी, तो त्याग्य भी नहीं थी ।

काल के स्रोत में रहता हुआ एक ऐसा भी युग आया जो भारत के इतिहास का मध्ययुग कहलाता है । उसमें साहित्य में शृंगार अथवा काम के साक्षीय एवं मगलकर स्वरूप की उपेक्षा हो गई । यह काल कला, साहित्य एवं समाज-मभी क्षेत्रों में अवनति का काल माना जाता है । इस युग में समर्पणशील प्रेम जो काम की उदात्त परिस्थिति है — का स्थान वासनाप्रधान काम ने ले लिया ।

इस समय इसका धर्म सन्तुचित होकर यौनविलासों तक सीमित रह गया । परिणामस्वरूप कुलतन्त्री पीछे पड़ गई और उसका स्थान वार-वधू ने ले लिया । मध्याह्निक भारत में ही वास्तव्यमान के वैशिष्ट्य का ही उल्लेख होकर कुट्टिनीमत, समपमानृता जैसी रचनाओं की प्रतिष्ठा हुई । भाणों तथा प्रहसनों में ऐसे ही पात्रों का चित्रण है जिनका उद्देश्य हो गया था " खाओ, पीओ, मोज उढाओ । "

भारण और वेश्या

इस देश में वेश्या वर्ग का इतिहास पुराना है । कात्यायन ने शलिकामों के समूह के चित्रे शालिक्य शब्द बनाया है — और उसके लिये य् प्रत्यय का विधान किया है । प्राचीनकाल में राजदरबारों में शलिकामों को यथेष्ट सम्मान प्राप्त था । वह ६४ वज्रामों में निपुण हुआ करती थी । इनके भरण-पोषण एवं निशा-दोषा का प्रबन्ध राज्य कोष से होता था । वैशिष्ट्य जीवन सन्धन्वी

उपलब्ध सामग्री से प्रिदित होता है कि इनके भी बहुत से प्रकार होते थे । प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत तथा उत्तम कोटि की वेश्यायें गणिका कही जाती थी । शम्भली, मापवी, अर्जुनी, बुम्भदासी, पण्डेस्वा, रणमाता, नारम्भी शुद्धा, झूला, वारवधू, भोग्या, भुजिष्वा, कामरेखा, वारविलासिनी, भाण्ड-हासिनी, आदि वेश्या के पर्याय हैं । राजाओं एवं राज प्रतिधियों का स्वागत तथा मनोरंजन करना इनका कर्त्तव्य होता था ।

पारस्परिक युद्धों के समय पराजित शासकों के राज्य की सम्पत्ति विजेता की समझी जाती थी । इस सम्पत्ति के साथ-साथ हारे हुए राजा की दास-दासियाँ, नत कियों और गणिकाएँ भी उनको सौंप दी जाती थी । इन अनुधरो में जो धार्मिक स्वामि-भक्त होते थे वे विजेता की सेवा में तत्परता प्रदर्शित न कर सकने के कारण निर्वामित किये जाते रहे होते । राज्य की ओर से समुचित सम्मान और धृति न मिलने के कारण वेश्याओं ने उदरपूर्ति के लिये नगरों से दूर अपनी वस्तियाँ बना ली होगी जहाँ यह कला बिकने लगी होगी । इस प्रकार जो वस्तु पहले सांस्कृतिक थी, वह व्यापारिक बन कर रह गई ।

वर्षा व्यमन की प्रति से उत्पन्न तत्वाधीन सामाजिक दुरवस्था के फलस्वरूप ही इस अनैतिकता के नियन्त्रण के लिए स्मृति ग्रन्थों (मनुस्मृति, मातृवर्क्य स्मृति आदि) का प्रणयन हुआ होगा, इसमें सन्देह नहीं । इस कोर्ट के शासन क्षतिग्रस्त बुद्धिशाली मनीषियों के हृदय को ही सतुष्ट कर सकते हैं । इसी से सम्भवतः स्थूल बुद्धि-प्रधान समाज को सुधारने के दीवाने रूप-कारों की भाँति जैसे शृंगारपरक रूप-रचने की प्रेरणा मिली होगी जिसका बीज ऋग्वेद के दशम मण्डलमें इन्द्र के सोमपान^१ के वाध्यमय वर्णन में निहित है । समाज से गणिकाओं के वहिष्करण के कारण ही इस बीज ने विकसित होकर साहित्यिक रूप ग्रहण किया होगा ।

भाण्डो का उद्देश्य

यहाँ यह प्रश्न खभावतः उठ सकता है कि समाज सुधार के कार्य

मे मानव जीवन के बीजतम रूप का प्रदर्शन करने वाला एकांगी रूपक भाण, कैम स्पष्ट हो सकता है ? परन्तु इसका फल उल्टा ही होता है । जहाँ कामशास्त्र के पृष्ठों के पारायण सज्जते बना बढ़ती है, वहाँ शृंगार रस में पगे भाणों के दर्शन मात्र में काम में धृष्टता उत्पन्न होती है । कामशास्त्रविदों की साम्प्रदायिक पद्धति से शृंगार के काम में श्रम और समय की बचत हो सकती है, परन्तु उसका फल स्थायी नहीं हो सकता । आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान) का सर्वसम्मत नियम है कि 'विष विष को मारता है' "अस्त्रं अस्त्रेणैव", "विष विषेणैव" अथवा "कण्टक कण्टकेनैव" इस नीति के अनुसार तरकारीन दूषित समाज पर व्यग्न करने के सर्वोत्तम साधन थे भाण एवं प्रहसन । जनमाधारण के पास जो निदान है वह वैज्ञानिकों (शास्त्रियों) के पास नहीं । जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान, विह्वलकों को निर्मूल नहीं करता, उपचारों से विकारों को दूर देता है, उसी प्रकार कोई भी शास्त्र किसी अनीप्सित वस्तु को जड़ से नष्ट नहीं कर सकता ।^१ भाण और प्रहसन जैसे सामाजिक रूकों द्वारा ही मानव-समाज के सदस्यों के हृदय स्थायी रूप से परिष्कृत हो सकते हैं ।

प्राकिया का परिचय देने समय हम कह पाए हैं कि एकांगी रूपकों में भाणों का महत्व अधिक रहा है । तद्गुणार वज्रण शरी में इसकी विस्तृत व्याख्या^२ तथा हस्तलिखित पोथिया के नामों की पुष्टिका में इसकी सर्वाधिक सख्या भाणों की सोनप्रियता को प्रमाणित करती है । भाणों की नाममाला प्रथम अध्याय में यथास्थान सतम्न है ।

१ - स्वीकृतमोक्षमार्गस्य मित्य एव प्रतिक्रिया ।

वह्निप्र वह्निमूलमवत्पामनति कर्माणि ॥ मदनवेनु प्रहसन

२ - भाण रसाद्भूतवर्तितो... ..

... . कुर्यादकाव्यमपि ।

भा २ ६, २२५-२२८ पृष्ठ २६२

भाण रसि ज्ञानात्प्राप्तविनिमित्तम् ।

मनेन्द्रियेन वृत्तम् निमित्तात्तद्विनिमित्तम् ॥

भाषा और मोनोऐक्टिक

आगत वाङ्मय के पर्यवेक्षण से भी ज्ञात होता है कि संस्कृत का भाषा कई दशकियों में पाश्चात्य पद्धति के एकाभिनय (मोनोऐक्टिक) से मिलता है। उसमें भी एक पात्रात्मक अभिनय-प्रदर्शित किया जाता है। उसमें प्रेक्षक समस्त काय व्यापार एवं चरित्रों का एक ही पात्र के अस्तिष्क द्वारा दर्शन कराता है। नाट्य-जगत में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं। स्वगत भाषण तथा एकपक्षीय संवाद भी एकपात्रीय रूपक कहा जा सकता है। पश्चिमी साहित्य में २० वीं शती में चाईवेट गिलवर्ट, रच ड्रेपर तथा बार्न लिया थ्रोडिसमिजर ने इसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। टैक्सपीयर के कुछ प्रकरण नाटक मैकबेथ में एक घरे दृश्य में लेडी मैकबेथ द्वारा एकाभिनय दिखवाया गया है।

आउनिंग के एण्ड्रिया ड्रॉल सानो नामक रचना (प्रधान काव्य को भी इस कोटि में रखता जा सकता है। इसमें एक विख्यात चित्रकार एण्ड्रिया का उसकी काल्पनिक पत्नी के साथ मार्ताण्ड्य अंकित किया गया है। चित्रकार पत्नी के बार-बार अपने मामले बैठे रहने की प्रार्थना करता है, कारण वह उसे देखकर ही चित्रावन करता है। परन्तु उसकी पत्नी यूक्रेशिया अपने दूसरे प्रेमी की ओर से सदैव पाकर बारम्बार जाना चाहती है। इस चित्रकारी के कार्य में विघ्न पड़ने के कारण चित्रकार 'अब उन्हें स्वयं में पूरा करूँगा, जहाँ कोई बाधक न होगा,' इन शब्दों के साथ चित्र को नष्ट कर देता है। इसके सिवाय जाज बेसर लिखित 'माम मार्न दु मिडनाइट,' श्रीमती एनेमन्दासगो रचित 'वीरेन ग्राउण्ड' राबर्ट आउनिंग का 'माई न्वास्ट डेविस' आदि काव्य कृतियाँ भी इसी कोटि की हैं। अल्फ्रेड टेनीसन भी अपनी 'माड' शीर्षक रचना को एकपात्रीय रूपक घोषित करता है। यद्यपि ये काव्य-रसण्ड संस्कृत-भाषा के सर्वथा समरूप नहीं माने जा सकते, किन्तु भाषा के मूलतत्त्व-एकपात्रता की दृष्टि से इनमें समानता है। अतः इनका भाषा से निस्संकोच मिलान किया जा सकता है। कुछ समय से किसी भी साहित्यिकवस्तु को पाश्चात्य जगत से प्रेरणा पाकर लिखो गई नई कर अपने को गौरवान्वित समझने का भारत में फैशन-सा हो गया है। हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती जैसे भारतीय साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में यह वाज

देखी जाती है। इसका कारण प्राचीन भारतीय साहित्य में लोगो का अपरिचय और आत्मगौरव की भावना का अभाव ही ममभना चाहिये। अतः हिन्दो सप्तर में प्रायः कहा जाता है कि प्रसिद्ध नाट्यकार सेठ गोविन्ददास जी ने नाट्य साहित्य में जो कतिपय नये प्रयोग किये हैं, उनमें से एक मोनो-ड्रामा भी है। कहा जाता है कि सेठजी ने प्रलय और सृष्टि, 'अलवेता', 'शाप और वर' तथा 'सच्चा जीवन' नामक एकपात्रीय एकांकी रचकर इस क्षेत्र में एक अभिनव प्रयास किया है। मेरे विचार से सेठजी का यह प्रयास बिल्कुल नया नहीं है। श्री सेठ गोविन्ददास कृत एकपात्रीय एकांकियों में शाप और वर, एक नायिकात्मक रूपक है तथा दोष कृतियाँ एक नायकात्मक हैं जो सस्कृत भाषा से मिलती-जुलती हैं। सस्कृत के नाट्यशास्त्रवेत्ता मालगन्दी के अनुसार भाषों में विट के न्यान पर नारी द्वारा भी अभिनय किया जा सकता है^१। सस्कृत भाषा के नायक (विट) के बदले आधुनिक फैशन में रंगे पुरुष या किसी अवेड पुरुष अथवा नायिका के एकाभिनय को दिखताने से भाषों के एकपात्रत्व के सिद्धांत का परित्याग नहीं हो जाता। इनका पालन तो समान रूप से ही होता है।

उपलब्ध भाषा

मातृवी आठवी शताब्दी से लेकर सत्रहवी-अठारहवी शती तक सैकड़ों भाषा लिखे गये। भूदव, ईश्वरदत्त, वररचि, श्यामिलक, वामनभट्टवाण (अभिनववाण) श्रेष्ठराज वर्मा आदि अनेक रूपकारों ने भाषों को एक मुन्दर साहित्यिक रूप दिया।

उपलब्ध और अनुपलब्ध भाषा की तालिका में अंकित भाषों में 'चतुर्भाषी' में आवर्तित भाषा, सबसे प्राचीन होने के कारण बड़े महत्व के

१ - आत्मानुभूतशः परमप्रथम-वर्णनादिराजः

विशिष्टाग्र्य एकहास्य (एकनायकद्वयः)

'भाणइहेकाकिन्वा नर्था हामोहेहृहारिषेति

यत्र परवचनमात्मवचने सान्तरप्रतिष्ठित वाच्य च भवेत् ।

सा न अस्तमोः से उद्धृत

हैं। सन् १६२२ में श्री रामकृष्ण कवि और एम के रामनाथ शास्त्री ने बरहचि की रचना 'उभयाभिसारिका' राजा सूदन (जो एव रूपककार भी थे) के 'पद्मप्रभृता' ईश्वरदत्त के 'धूतशिटमङ्गाद तथा श्यामिवन के 'पादनाडिक' इन चार भाणों को ढूँढकर, निवपुरी (मद्रास) से इनका संग्रह प्रकाशित करवाया। हमने अतिरिक्त शृंगारहाट अथवा चतुर्भाणों के नाम से श्री मोतीचन्द्र तथा बामुदेवशरण अग्रवाल ने भी उक्त भाणों का सुन्दर एक उपादेय सफल संस्कृत साहित्य के अनुपादियों के समग्र प्रस्तुत किया। श्री टॉमस^१ जैसे पाश्चात्य विद्वान तथा संस्कृत के भारतीय प्राधोक्कों^२ ने इन भाणों की प्रशंसा करते हुए इनके रचयिताओं को बालिदास से भी उच्च स्तर के कवि सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। बालकृष्ण के अनुसार उपलब्ध भाणपुत्र को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। १. चतुर्भाणों के भाण और २. उत्तरकालीन भाण। सर्व प्रथम हम चतुर्भाणों के भाणों की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे।

चतुर्भाणों

बरहचि की 'उभयाभिसारिका' में कुंजरदत्त द्वारा अपनी हठी हुई प्रेमिका नारायणदत्ता को मनाने की क्या कविता है। नारायणदत्ता को प्रसन्न करने के लिये जाते समय भाग में गई बट्नायो का सामना करने के उपरान्त कुंजरदत्त उसके घर पहुँचता है। वहाँ पहुँचने पर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने के पम्पस्वरूप प्रेमिया की मन स्थिति बदन जानी है और एक

१ - It will, I think, be admitted that these compositions inspite of the unedifying character of their general subject and even inspite of occasional vulgarities, have a real literary quality. They display a natural humour and a polite, intensely Indian irony which need not fear comparison with that of Ben Jonson or Moliere. The language is the veritable ambrosia of Sanskrit speech (Centary Supplement of J R A S 1924 Page 135)

२ - बरहचिपरिचरित श्यामिवनप्रसार।

एव भाणान् उभयौ वा वति बालिदासस्य।

दूसरे को ढूँढ़ने हुए वे दोनों कामातुर मिल जाते हैं। इनके लेखक का पूरा परिचय अज्ञात है।

धूर्तर के 'पद्मप्राभृतक' में धूर्तों के प्रामाणिक आचार्य मूलदेव का देवदत्ता के साथ प्रेम चित्रित है। वरुणपुत्र मूलदेव अपनी प्रिया देवदत्ता गणिका की रहित देवसेना के प्रेम में आसक्त होकर उसकी मनोदशा का पता लगाने के लिये विट को भेजता है। विट उज्जयिनी की गलियों में फिरता हुआ समदुखी पात्रों पर दयादृष्टि करता हुआ अपने काय को सकलतापूर्वक सिद्ध करके देवसेना के प्रेम का प्रतीक पद्म का फूल लेकर लौट आता है। इसलिए इस भाण का नाम रखा गया पद्मप्राभृतक। वर्षा विषय (वैशिक जीवन) तथा भाषा की समानता के आधार पर इसको मृच्छकटिक के रचयिता धूर्तर की रचना मान लिया गया है।

ईश्वरदत्त के धूर्तविटसम्वाद को संक्षेप में वेद्व्या के कार्यों का वर्णन करनेवाली पुस्तिका कहा जा सकता है। यहाँ चतुर एवं अनुमयी विट वर्षा-ऋतु को विशेष कष्टकर जानकर सुसज्जक दिन व्यतीत करने बाहर निकल पड़ता है। मनोरञ्जन के लिये जिस व्यसन का आश्रय लिया जाय, इस प्रश्न पर भी विचार करता रहता है। धूर्तनीडा और मद्यपान उसकी सामर्थ्य के बाहर की वस्तु है, कारण है उसकी निधनता का प्रमाण उसके तन पर बचा हुआ एक वस्त्र। अतः वह वेगवीथियाँ ही और ही चल देता है। अन्त में एक धूर्त विश्वात्मक के घर पहुँचकर उसकी वामशान्त्र विषयक कल्पित जटिल समस्याओं का समाधान करता हुआ दिन बिताता है। इसी से इसका नाम—
• कारण हुआ धूर्तविटसम्वाद।

राममित्र के भाण ग्रन्थ पादनाटिकर का विषय अधिन रचित्रद और अनुपम है। इसका विट ग्रन्थ विनों की मना में जाता है जहाँ प्रापञ्चित की एक समस्या पर विचारार्थ लोग एकत्र हुए हैं। राजनर्नचारी तीर्ण्डिक विष्णुनाथ ने खेल में अपने सिर जैसे पवित्र अङ्ग पर बारबधू को पादचान करने दिया था। उसके इस अपमान के प्रक्षालन के लिए विनों की सभा में भिन्न भिन्न प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं। यहाँ सुन्दर हास्य का प्रकरण छिड़ जाता है।

यह भाण-चतुष्टय देवत विटवेस्मादि की प्रणयनीला के कामपर-
चित्र ही प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि इसके सम्प्रदेश से तत्कालीन ऐतिहासिक
व्यक्तिमो से सम्बद्ध विषयों के ज्ञान के साथ भाग्य उत्त युग की सामाजिक
एवं सांस्कृतिक स्थिति से भी हमारा परिचय होता है। ज्ञान के क्षेत्र में इन
ध्यातिप्राप्त वैद्यावरणों, कामशास्त्रविद् आचार्यों एवं साहित्यकारों की साहित्यिक
कृतियों तथा कुछ एक स्मृतिकारों के नामों का पता चलता है। पद्म-
प्राभूतक में पारिणि के पूर्ववर्ती आचार्य दत्तवलय का उल्लेख है।
इनके प्रतिरिक्त एक प्रकरणग्रन्थ "कुमुदवती" तथा एक प्राकृत-भाष्य
"कामदत्त" का भी जगह मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों के नाम और इनके
रचयिताओं के नामाभर अज्ञानान्धकार में छिप चुके हैं। 'धूर्तविटसम्वाद' में
दत्तक जी शृङ्गार के आचार्य बतलाये गये हैं। बृहत्सन्नि, उत्तना आदि
स्मृतिधारकों के नाम भी देताने का मिलता है। श्यामिलक के पाश्चात्तिक
में एक बवि पारशव^१ का नाम मिलता है, जिसका उल्लेख गद्यकार बाण
भी करते हैं। दक्षिण के एक बवि चार्यक^२ का नाम भी उल्लिखित है।
बाण ने अपने मित्र श्यामल (सौमिलक)^३ का एक स्थान पर नाम दिया
है। सम्भव है, ये श्यामिलक बाण के ही मित्र हों। दोमन्त्र ने भी श्यामिलक^४
का श्लोक श्यामल के नाम में उद्धृत किया है। अतः सौमिलक या श्यामिलक
अथवा श्यामल एक ही व्यक्ति के नाम रहे होंगे। इससे प्रतिरिक्त इन
भाणों में और भी अनेक संकेत मिलते हैं, जो इनकी प्राचीनता पर प्रकाश
झालते हैं। चतुर्भाषी में संस्कृत पादताडितक^५ भाण में ईशानचन्द्र के पुत्र
हरिश्चन्द्र भिषक् का उल्लेख आया है।

१ - वा ता - पृष्ठ १६१

ह च प्रथम उच्छ्वास पृष्ठ १६

२ - पाश्चात्तिक पृष्ठ २५४

३ - ह च तृतीय उच्छ्वास, पृष्ठ ४०

४ - शमन्त्र - बोधिविचार चर्चा पृष्ठ २३

पादताडितक, पृष्ठ १०१

५ - वा ता पृष्ठ १०८

तत्पश्चात् ईसा पूर्व १५० में महामाध्यन्तार ने उनभाभिनास्त्रिका के रचयिता वररुचि को महामाध्य में प्रोक्तमाहित्य के प्रमग म दाद किया है यथा " वाररुच काव्यम् " । अभिनवगुप्त,^१ कुल्लुक तथा टेनेन्द्र आदि की कृतिया में (जो दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग की रचनाएँ हैं) इन भाषों की ओर सखेन किया गया है । म्यारट्वा शताब्दी के साहित्यशास्त्रवेत्ता हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' में भी इन भाषों की ओर सखेन है । इनके माधार पर इनका काल निर्णय सुगम हो जाता है । कई स्थलों पर पद्य-प्राप्तृक के 'कती' ईश्वरदत्त तथा एक भाभौर राजा शिवदत्त के पुत्र ईश्वरसेन को एक ही व्यक्ति बनानाया गया है । हस्तलिखित पोथी के अन्तिम श्लोक में पादनाडितक के लेखक द्यामितक औदीच्य प्रनीत होने हैं । इनकी पृष्टि काश्मीर के माहित्य निमाताओं की रचनाओं में प्राप्त उद्धरणों से हो जाती है ।

पद्यप्राप्तृक और पादनाडितक के कुछ एक पात्रों की भूलक बाणमृट की कृतियों में मिलती है । 'कादम्बरी' में विन्ध्याटवीवरान के प्रमग में पद्यप्राप्तृक में वणित करणपुत्र^२ मूलदेव की कथा की छाया प्रतिबिम्बित है । यही शय,^३ विपुल आदि पदों में चतुर्भागी के पात्रों का स्मरण हो आता है । विपुल और शय के नाम बृहत्तरया में भी आये हैं । कदाच के रत्नदुम नामक शब्द-कोष में शय को मूलदेव का भाई तथा विपुल और धमल को उसके मृत्य के रूप में अंकित किया गया है । मूलदेव की कथा में उसकी प्रधान मायिका देवदत्ता और दूसरी देवदत्ता की बहिन देवसेना थी । मूलदेव कामशास्त्र का, विमेषनः वैगिकतत्र का मुख्य पात्र समझा जाता था ।

१ - पञ्चतन्त्रादि-अभिनवगुप्त इव-अभिनवगुप्त - भा. शा (टीका)

भा. को. सी. पृष्ठ १७६

२ - कथामृतकदेव सन्निहित विपुलपत्ता, शयोरपत्ता च - विन्ध्याटवीवरान

- पृष्ठ १२ दुवला कीजिये-

सने यणाम् !... कथामृतकः विपुलपत्तादेवविपुलः । प. प्र. पृष्ठ १४. और

श्री -यने कथामृतक विपुलपत्ता कानदत्ता प्राहृतकाय- प्रतिष्ठानमूः ।

३- शय, पृष्ठ ८ विपुलपृष्ठ १२ अन्तिम... मूलदेवपत्ताः कथामृतकः प. प्र. पृष्ठ १४

प. प्र. पृष्ठ ८

होमेन्द्र ने कलाविलास में उसका उल्लेख किया है। ध्रुवसप्तति की कहानियाँ में भी वेशसम्बन्धी मामलों में पञ्च के रूप में उसका चित्रण था। पद्य-प्राभृतक में घूर्ताचाय मूलदेव का ऐसा ही चरित्रचित्रण किया गया है। इन प्रमाणों के आधार पर उक्त भाषा को बाणभट्ट (जिनका समय ६ठी या ७वीं शताब्दी माना जाता है) से पूर्व की रचना मानने में किसी को आपत्ति न होगी।

उभयाभिसारिका के चालनिर्धारण में बाह्यमादय का अभाव-का अवश्य प्रतीत होता है। परन्तु इसमें भी कतिपय प्रबल अन्त साक्ष्य प्राप्त हैं जो इसकी प्राचीनता के द्योतक हैं। यहाँ वैशिकाचन नामक विट का भाग में जिस परिव्राजिका से साक्षात्कार होता है, वह बौद्ध धर्मश्रिष्टा नहीं प्रतीत होती। वह सम्भवतः वैशेषिकन्याय का समर्थन करने वाली कोई सन्यासिनी है। अन्यथा "अवेद्वैदोपिकाचनेन" का प्रयोग व्यर्थ होता। इस प्रसंग में उभयाभिसारिका में न्याय^१ और सारय रिपयक^२ सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। यणाददशन के अनुसार (१) द्वय (२) गुण (३) कम (४) मामा-य (५) विशेष (६) समवाय-ये छ पदार्थ होते हैं। उत्तरयर्ती दार्शनिक इनके स्थान पर सात पदार्थ मानन लग थे। शिवादित्य के समय तक उक्त छ पदार्थों में अभाव नामक एक और पदार्थ जोड़ दिया गया था। इसके अतिरिक्त इसमें नृत्यतत्ता^३ एवं नृत्याणा का प्राचीनतम बहान भी किया गया है। यहाँ चार प्रकार के अस्तिपञ्चवर्तीस प्रकार के हस्त प्रचार, निरीक्षण के अट्ठारह भेद, छ स्थान दो तरह की गतियाँ, तीन नीत वादित्र आदि विभिन्न नृत्याणा का परिणाम किया गया है। इनमें से चार अभिनय तथा आठ रस तो सभी मानते हैं। भरत ने छ स्थान भी बतलाये हैं परन्तु इनके नाम्य प्राप्त न हैं।

१- कि वहीपि - "सांख्यसमाधिनामने निर्मुक्त क्षेत्रज्ञ पुरुष इति।

उभयाभिसारिका - पृष्ठ १३१-१३३

२- कि वहीपि - "अट्ठारहवहिष्टुर्नै मङ्गलमापणमन्माक मुञ्चति अनिनिउपु ।

उभयाभिसारिका, पृष्ठ १३१-१३३

३- उभयाभिसारिका, पृष्ठ १४३

प्रचार के ६४ (१३ सयुक्त २४ असयुक्त २७ नृत्तहस्त=६४), दृष्टि के ३६ तथा निरीक्षण के १८ भेद बतलाये गये हैं। इस उल्लेख से भी उभयाभि-
सारिका की प्राचीनता प्रमाणित होती है। यह रचना उस समय की होगी
जब तक भरत की कृति को प्रामाणिकता नहीं प्राप्त हो पायी होगी।

थो दरो चतुर्भाणो की रचनाओं का समय सप्रमाण ४१० और ४१५ ईस्वी के बीच निर्धारित करते हैं। डॉ टामस सातवीं शताब्दी का मध्यवर्ती काल अथवा गुप्तयुग का उत्तरकाल मानते हैं। इन भाणों के पात्रों के माध्यम से बौद्धादिकों पर जो आक्षेप किये गये हैं उनसे भी यही सूचित होता है कि चतुर्भाणों की रचना के समय भारत में बौद्ध-ब्राह्मण विरोध की भावना तीव्र थी। उस समय तक उत्तरकालीन धार्मिक सम्प्रदाय इतने नहीं पनप पाये थे कि वे ग्रहसनात्मक आलोचना के सध्य बनाये जा सकते। यही कारण है कि उत्तरकालीन भाणों और ग्रहसनों में बौद्धों के स्थान पर, हास्य के आलम्बन असंगत श्रोत्रिय, हुबल पौराणिक, शैव और ब्राह्मण हैं। इतिहास के पृष्ठ पलटने से ज्ञात होता है कि देश की ऐसी स्थिति मौय-मम्राट अशोक के बौद्धधर्मावलम्बी होने के बाद गुप्त-युग में बौद्ध धर्म के पतनोन्मुख होने के समय थी। अतः बप्प-विषय के आधार पर भी ये भाण गुप्तयुगीन प्रतीत होते हैं। इन भाणों का मूल रचना-काल जो भी रहा हो, इनके आशोधन से विदित होता है कि इन्हे बतगान स्व भरत के नाट्य-शास्त्र के बाद तथा दमवी शताब्दी के विख्यात नाट्य शास्त्र कोविद धनजय के पूर्व लिखा होगा।

"पद्मप्राभृतक" में विट द्वारा प्रस्तुत वर्णन में प्रसंगवश कात्या-यनगोत्रीय शारद्वती-पुत्र सारस्वतभद्र नामक कवि, पीठमर्द दंदरक, कात-त्रिको से सदा भगडने वाले दन्दूशक के पुत्र दलकलशि, वृद्ध अभिनेता मृदग-वमालक (जो वेश्या द्वारा अभिनीत भगवद्गुप्त नामक नाटक में विट का काम करता है) शाक्य भिक्षु सन्धिलक, वसन्तवतीतनया वनराजिका, पाचाल-दासी की पुत्री प्रियगुष्टिका, नागरिक नन्दिनी खोलुदासी, पासकसज्जिका नायिका के रूप में वर्णित माधसुन्दरी, यन्धवदत्त नामक नाट्याचार्य के शिष्य, एक अभिनेत्री के पुत्र ददुंरक, देवसेना की दासी प्रियवादनिका, देवदत्ता की भगिनी देवसेना आदि स्त्री तथा पुरुष पात्रों से हमारी भेंट होती है।

वर्णित वनताया है। परन्तु उपर्युक्तलिखित चार भागों के सुन्दर सफल के अध्ययन से यह नहीं मान्य होता कि इनकी कथाएँ कविों की कवी कल्पना पर आधारित हैं। इन्द्र के मृच्छसट्टिप, सघदास महत्तर के वसुदेवहिण्डी, बुद्धनट के वृद्धकथा-महत्तर वागुनट के हयनलि तथा कादम्बरी एवं दण्डी की दन्तुनार-वर्णित आदि प्रसिद्ध साहित्यिककृतियों में विभिन्न सत्त्वित और चतुर्मासी में अविनिमित्त देश की नाट्यिक और सामाजिक अवस्था बताने के लिये लिखी हैं। उक्त भागों में वर्णित देश की भौगोलिक स्थिति, नगर-व्यवस्था, वनस्पति, धर्म, समाज तथा लोक-जीवन-मन्त्रादी अग्रलिखित उत्तम उपलब्ध हैं, जो गुणवर्तीन भारत का जीना जामना चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं। इन भागों पर भरतमुनि के नाट्यशास्त्र तथा वात्स्यायन के कामशास्त्र का प्रभाव स्पष्ट है। इनके लेखकों ने ही उत्तरवासीन भागों के रचयिताओं के समाने रचना का एक आदर्श रखा, जिसका उत्तरदाता रूपों में उन्मुक्त अनुसरण किया गया है।

चतुर्मासी का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन विजातमय समाज पर व्यंग करना है। उसके विट भी समाज के अंग हैं। हँसने-हँसाने हुए वे कभी अशिक्षित भी बन जाते हैं, और इनकी अटपटी और चटपटी नवादर्शनों को पट कर या मुन कर ऐसा प्रतीत होता है, मानो हम आधुनिक बनारस के दलालों या भारत के सोमी पटों के बीच में पहुँच गये हों। ये विट सन्दर्भ नाटकों के अन्य रुचिगर्त विटों से सर्वथा भिन्न हैं।^१ अन्तरी पद प्रविष्टा के प्रसिद्ध आचरण करने वाले सारे व्यक्ति (चाहे वह बौद्ध भिक्षु हो या राजा, बड़ा बैयाकरण हो या दसद-शास्त्र में सदा खोना छूने वाला नीनासक) उनकी हँसी के पात्र हैं।^२ चतुर्मासी के अध्ययन से यह बात अनिपूरा सिद्ध होती है कि मन्त्र-साहित्य विद्वद्बन्धों तथा राजदरबारों की भाषा में रचित है।

१- कामगुपतः । इन्द्र । इन्द्रिय । कामगुपतः । इन्द्रिय । इन्द्रिय ।

२- विटवर्णित -- "विटवर्णित इति"

वेद्यानम् इति श्रीमद्भिक्षुदेवदत्तवर्णितः ।

न अन्तरी पदम् अन्तरी पदम् ।

उत्तरकालीन भाषों में कवियों का उद्देश्य पाठित्य-प्रदर्शन अवश्य हो गया था। इस काल में विगर्चित साहित्य की अन्य विधाएँ भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। चतुर्भाषी में सरल बोधोत्पत्ति की भाषा का प्रयोग है। यहाँ संस्कृत का प्रयोग दैनिक जीवन की घटनाओं के चित्रण तथा छिद्रान्वेषण के लिये हुआ है, पाठित्य प्रदर्शन के लिये नहीं।

दयामिलक के पादताडितक के अनुसार उस युग के कवि ^१ एक प्याना मद्य के बदले कविता सुनाते थे। वे श्रोतियों के घर जाकर भी मधु-मान के बिना कविता-पाठ नहीं करते थे। बाशी, कोसल, मार्ग, निपादनगर आदि स्थानों पर कवियों की यही दशा हो रही थी। यह उस युग के कवियों पर गहरा व्यंग्य है। इसके अनिर्दिष्ट पदमप्राभृतक में पुराने काव्यों में से पर लेकर उन्हीं से नये श्लोक रचने वाले काव्यवीर सुवक्त्र कवियों पर कटाक्ष किया गया है। इनकी सुनना फटे टुकड़ों को गाँठ कर झूठे बनाने वाले मोची (छेदप्रथनचमकार) से की गयी है। पादताडितक में भी महाकवि वररवि की काव्यप्रतिभा की अनुवृत्ति करने वाले गुप्त और महेश्वरदत्त नामक दो मित्रों का संकेत है। सम्भवतः वे वररवि की उभयपार्श्विकता का ही अनुकरण करते होंगे। ^२ प्रागुक्त भाषा के इस अंश को पढ़ते समय हिन्दी के प्राधुनिक नीमिषिये कवियों के लिये प्रायः उद्धृत की जाने वाली उक्ति "ध्रुव के कवि श्रोत-सम जहाँ सँकरे प्रकाश" की भाव आ जाती है। इसी प्रसंग में ऐसे कवि के हास्य रस ^३ से श्रोतप्रोत एक श्लोक का उदाहरण उपस्थित करते हुए झूझक ने उसमें पीठमर्द के संक्षेप घटा कर अपनी काव्य-कला का चमत्कार भी प्रदर्शित किया है।

१- विक्रीणन्ति हि काव्यं श्रोत्रियं भवनेषु भर्तृवचनेन ।

यः किञ्चिदुले प्रसूनी मर्त्यस्थाने बरायान् ॥

विक्रीणन्ति हि कवया यत्त्रयं काव्यं भर्तृवचनेन ।

राजैश्च न स्तेजैश्च न शक्तैश्च न निरुद्धैश्च न ॥

पादताडितक १३३-१३४ पृष्ठ २११

२- पादताडितक १४२, पृष्ठ २११

३- पद्यप्राभृतक ११, पृष्ठ १२

वैद्याग्रो या स्वभाव स कोमल स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने में व्याकरणसम्मत किन्तु श्रुति-कटु शब्दों का प्रयोग करने पर विट ने बंयाकरण^१ की श्रुत खिली उठायी है। यहाँ बंयाकरण को सुकुमार स्त्रियों के अनुकूल भाषा बोलने में असमर्थ देख हँसी आये बिना नहीं रहती। हास्य-रस की सृष्टि के लिये वही-वही महाभारतादि का हवाला देकर उल्टे-पुल्टे श्लोक भी उद्धृत किये गये इष्टिगोचर होते हैं। शृंगारहाट चतुर्भाषी के सग्रहकर्ता के अनुसार महाभारत के नाम से 'पादताडितक' में लिखा गया श्लोक महाभारत में नहीं मिलता।^२ वास्तव में यह श्लोक महाभारत का प्रतीत नहीं होता। जिस प्रकार 'मृच्छकटिक' का अकार और भास के 'अविमारक' का विद्रूपक रामायण से सम्बद्ध घटनाओं का विपरीत प्रयोग करके हास्योत्पत्ति करता है, उसी प्रकार यहाँ भी यह प्रयोग इसी उद्देश्य से किया गया मान्य होता है।

इसका यह अर्थ नहीं कि चतुर्भाषी सप्तक चार भाषों की भाषा सदा ही सरल और निम्न कोटि की होती है या यहाँ हाम्यांश्व में गीते लगाते समय केवल अनर्गत प्रभाव ही सुनने को मिलते हैं, वरन् इन भाषा-प्रयोगों के बवित्व की छटा भी यत्र-तत्र निखरी हुई मिलती है, जिन्हें पढ़ कर भास, कालिदास आदि संस्कृत-साहित्य के प्राचीन भाष्य कवियों का स्मरण हो आता है। शूद्रकादि भाषा-रक्षयिताओं की लेखन-शैली पर इन प्राचीन कवियों का प्रभाव स्पष्ट इष्टिगोचर होता है - यथा "एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव ध्रूयते।" अथ गदयामि-(उभयामिसारिका, पृष्ठ १६) इसकी पुनरावृत्ति पादताडितक में भी की गयी है "कोनुखलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव ध्रूयते"। यही वाक्य भास के नाटकों की प्रस्तावना में इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है— तुलना कीजिये—

१- पद्यप्राप्तक, पृ० १७-१८

पद्यप्राप्तक, पृष्ठ २०

२- .. . न त्वया महाभारते ध्रुवपुत्रं

वस्यामित्रा न बहुो वस्याग्रोऽविजने जनः ।

य समेत्य न निन्दन्ति स पापं पुत्राग्रमः । इति ॥ पादनाडितक, पृष्ठ १८६

सूत्रधार — “एवमायं मिथ्यान् विज्ञापयामि । अये विनु खलु भविरिज्ञान
व्यग्रं शब्द इव श्रूयते । अयं पदयामि ।” (दूतघटोत्पल) - इसके अतिरिक्त
कवि श्यामिलव का वासवदत्ता तथा उदयन की कथा में परिवर्तित होना भी
इनकी कृति पर शास के प्रभाव को प्रमाणित करना है ।

“वान्ता हरति करेणु । वासवदत्ताविशोदयन ॥ १”

चतुर्भाली की भाषा तो कहीं-कहीं महाकवि जालिदास से मिलती जुलती
है ही उसने उनके भाषों की भी प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है ।

मेघालोके भवति मुखिनोऽप्यन्वधाकृति चेत ।
कण्ठास्तेष-प्रहसिनि जने चि गुनदूरस्थे ॥
इत्यौत्सुक्यादपरिणामेन मुहुष्यन् यथाचे—
शामार्ताहि प्रहृतिहृषणादवेनानावेतनेषु ॥ २

तुलना कीजिये —

“भ्रान्तपक्षनेषु सम्प्रति मुखिनोऽपि वदम्बवासितक्षनेषु ।
भौतलुष्य वहति मनो जलधर-मल्लिनेषु दिवसेषु ॥ १”
“आपूर्वाभिनवाभ्युदयतिहरे नेत्रे प्रयातोऽपर
तदभ्रष्ट कठिनीगत स्तनतटां तत्राप्यसव्यास्पद ।
वायस्ते तनुरोमराबिलुसित शोकप्रसंगोन्मिक्त
नासि पूरयति प्रियायुसिमुख-प्रक्षेपलीनोचिताम् ॥ ४”

‘ध्रुतविरसवाद के इस श्लोक की तुलनाभाव के पञ्चमसर्ग में स्थित
शोभीमये श्लोक से तुलना करके देखिये —

१- फरहादिनक ११७, पृ० २४०

२- पूर्वपक्ष ४-५.

३- ध्रुतविरसम्वाद ६, पृ० ६७

४- ध्रुतविरसम्वाद २३ पृ० ८२

स्मिता कर पञ्चनु ताडितावरा पयोधरोत्तेजनिताय चुरिता ।
 वलीषु तस्या स्तब्धिता प्रेदरे बिरेर नाग्न प्रथमोदविन्दव ॥
 बिहारी की ये पक्षियां भी इनो नाव जो मनिमत्त करती हैं ।
 पलन प्राप्ति वलीनि कडि नहि वचोन ठहराव ।
 मनुष्य परि छत्रियां छितक छतवनाइ छत्रि बान ॥

कालिदास के यद्य-पद्य की छप्पा भार्या में बन्दित—

„दक्षिण वृक्षशटिकापानात्तान इव ध्रुवो ।”—अभिज्ञान शाकुन्तल
 “अये मयमिश्रानो दक्षिणैः वृक्षशटिका भूयच्छ्रवणादय मन्त्रानि - विहग
 सङ्गुल गन्ध इव ध्रुवो ।” १

चारों भासों की प्रस्तुतता में ऋतु-वर्णन के प्रथम में इन की शाल्य
 घोमा देखने ही बनती है । उमरमभितारिका तथा पद्मप्रानुनर के बमन्त
 ऋतु एव धूर्तविम्ववाद में वर्षों का चित्रण किया गया है । शूद्रक ने अपने
 भास में सूत्रधार के मुख से ऋतुरात्र बमन्त का श्रृंगार रस के मनुज्ज्वल सौन्दर्य-
 वर्णन करवाया है । इस ऋतु में प्रकृति एव मानवकी मादकता बड़ी भली लगती
 है । इन कवियों ने कहीं अनुमान और कहीं उद्भाषण द्वारा प्रकृति की
 उन्मत्तता का मनोहारोच्चित्र खींचा है, जिनकी ऋतुनहार में चित्रित वानन्तिर
 सुषमा में समानता है—

मत्सम्प्रमदरमनस्त सतिन्धुवार मकुन्दमहकार ।
 समदमदन सप्रम संप्रम-अनप्रिय काचः ॥ २

सुनना कीजिये—

आकम्पयन् कुन्तुनिना सहकारजान्ना विन्दारवन् परवृत्त्य वधानि दिशु ।
 वानुविधानि हृदयानि हरन्ताराना नीहाराननिगन्तात्सुमसो वन्द्ये ॥ ३

१- पद्मप्रानुनर - पृ० ४१

२- पद्मप्रानुनर - पृ० ३

३- शकुन्तल पद्य मय २२

उभयामिमारिवा मे वसन्त के आरम्भ मे मुम्हनाए हुए लोघ्न वृक्ष की तुलना मित्र की प्रणय-लीलाओं को देख कर घबराये हुए दोन बिट से की मरी है । कोकिला के रव से गुजित तथा आश्र, अशोक, भूला, मधुर-मधु एवं चन्द्रमा से युक्त म धुमास की शोभा बामदेव के मन को भी विचनित करने में समर्थ है—

वसन्तप्रमुखे बाले लोघ्नवृक्षो गतप्रम ।
मित्रकार्येण सम्भ्रान्तो दीनो बिट इव स्थितः ॥^१
परभूतधूताशोका शोलावारवास्फो घटाकश्च ।
मधुगुणविगुणित-शोभा मदमपि सविभ्रम कुपुः ॥^२

सबत्र भृगार का प्रकरण छिड़ जाता है । प्रकृति का भृगारमय चित्रण पश्चाद्दर्शी लेखकों के भाणों में भी उपलब्ध होता है जो दशकों को आनन्द-विभोर कर देता है ।

“मातयाचलवातपीतविषज्ज्वासन्निवादत्सरी—
व्यालीनोत्तसमानभृ गपटसी ध्याद्वारजवाचलितः ॥^३

और भी—

‘सामोदा विदधूत स एव हि विदोत्तसायते माधवः ॥’^४

हम ऊपर कह आये हैं कि भाण-साहित्य का शास्त्रीय स्रोत वात्स्यायन का कामशास्त्र ही है । कामसूत्र मे निर्दिष्ट नागरिक के रहन-सहन, उनकी दैनन्दिनचर्या तथा वेश्याओं के हाव-भाव हेला, मानभग, भृगारलीला, खेलबूद, संगीत और नृत्य मे कुशलता, कलाप्रेमी के प्रति धुम्बनादि द्वारा प्रेम

१- उभयामिमारिवा पृ० २

२- उभयामिमारिवा, पृ० ३

३- शृङ्गारमुद्राकर भाष, पृ० ४

४- शृङ्गार मुद्राकर भाष पृ० २

प्रदर्शन, कुट्टिनियो का दस्त्रि प्रेमियो को कना भिजवाना, मद्यान, गोष्ठीप्रेम कभी-कभी प्रेमी के बिरह मे व्याकुलता, दून अरवा दूही द्वारा प्रेमपुजारी को सदेश भिजवाना इत्यादि का पद्मप्राभृतकादि चार भाणों मे सुन्दर वर्णन है।^१ इन भाणों मे मध्युगीन भारत के सभी साहित्य एवं नृत्यकला आदि से समवेत नागरिक जीवन का चित्रण देखकर मेघदूत के यदा के भवन-वर्णन तथा मृच्छकटिक के चारुदत्त और वसन्त सेना के सदन के चित्रण की याद आ जाती है।

पद्मप्राभृतकादि भाणों मे हमे ६४ कलाप्रो मे निपुण वेश्याप्रो के जीवन का सागोपाग विश्लेषण मिलता है।^२ कला सीखने के लिये उनको आचार्यों के पास जाने की बात भाण-साहित्य के अवलोकन से पुष्ट होती है।^३ वेश्याएँ केवल अश्लील रति-लीला द्वारा ही अपना और दूसरों का चित्तानुरजन नहीं करती थी, कामसूत्र के बालोपक्रम प्रकरण मे वेशकन्यकाप्रो के अनेक खेलों की सूची प्राप्त होती है जिनसे उनके मनोरजन के विविध साधनों से पाठका का परिचय होता है।^४ वार-कन्याये कन्दुकक्रीडा (गेंद खेलना), पुष्पावचय (फूल चुनना), अयन (नाचा गूँघना), गृहक (घरोंदे बनाना), दुहितृकाक्रीडायोगन (गुड्डे-गुड्डी का खेल), भक्ताराककरण (भान पकाना), आकपं क्रीडा (पामे फेंकना) पट्टिका-क्रीडा (डैंगलियाँ फेंक कर चहहर लगाना), एवं मुष्टिचून (किसी वस्तु के साथ मुट्ठी बाँध कर साथ खेलने वाली व मुट्ठी में बसा है ? आदि

१- कामसूत्र - १ - ४, ३-४.

१-४, ६- २६.

२- ६४ कलाप्रो की गणिका के लिए दलिये कामसूत्र - १, ३-१५ व ८३-८४.

३- अत्रि तै भगिनी यथोचितमाचार्यगृहम् मुख्यदारेण यात्यति ।

पद्मप्राभृतक पृ० ५८.

४- तथा सह पुष्पावचय अयन गृहक दुहितृकाक्रीडायोगन
भक्ताराककरणमितिपूर्वतः ।

भानपक्रीडा पट्टिकाक्रीडा मुष्टिचूनधूलकादिभूतानि

मध्यमागुत्तिप्रहृष्ट पटपाषाणपादीनि च देश्यानि

प्रश्न करते हुए मनोरंजन करना) इन नानाविध ब्रौडामो से अपना मन बह-
माती थी। यद्यपि उनकी ब्रौडामो की उक्त सूची सामान्य-सी प्रतीत होती है
उनके लक्षण भी लोचनीय हैं तथापि चारवन्द्यामो के इन क्रियाकलापों से
प्रेक्षकों को बसस्तन्वता दिखाई देती है। परिणामस्वरूप उनके ये खेल एते
से जाने वाले लोगों का मन मोह लेते थे। इसका प्रमाण है, भाणो के नम्र
चित द्वारा किया गया इनका शार्कर्य वर्णन। जैसे—पादताडितक मे पिछोला^१
बन्दुक क्रीडा एव गुहडा-गुडिया के खेलों का उल्लेख है। पिछोला मूँह से
बजाने का एक वाद्य विशेष होता है। रामकृष्ण कवि की चतुर्भाणी मे पिछोला,
पिचोला एव पिजोला ये तीन रूप मिलते हैं। अभिधान-कोषो मे बांसुरी से
मिलते-जुलते दाजे के अर्थ मे पिछोरा शब्द भी मिलता है। पद्मपाभूतक मे
कदुकक्रीडा करनी हुई त्रिपुष्टिका का सर्जीव एव गतिमय वर्णन बाण, दश
धादि प्राचीन कवियों की याद दिलाता है यथा—

प्रवाल लोनागुलिना करैल मन शिल बन्दुकमुदबन्दी।

स्वपरलभाग्रामिहितैकपुष्पा मनोन्मत्तानीय सतेव भानि ॥^२

इन प्राचीन भाणों के बाद के रचनाकारों ने भी बन्दुकक्रीडा का
चित्ताकर्षक चित्रण किया है।

‘भालोलवजालक कलरखत्वाञ्ची क्वलत्कङ्कण,
मञ्जोरारवमञ्जुलाद्भिगुणव प्रेङ्खोलमुत्तानतम् ।
धर्मम्म कलिकाविकासि वदन निदवासनृत्पस्फुर,
वेय क्रीडति बन्दुकेन शफरप्रस्फिमुग्धेधारा ॥’^३

शृङ्गारभूषण भाण मे भी गेद खेलती हुई वेद्यवन्द्या के भग-प्रत्यर्णों

१- निवृत्तबन्दुकापठोलाद्वतकपुत्रकदुहिकाकीटकानि वेधरम्भाया।
प्रतिभवनच्छायासु वेधवन्द्याबुन्दकान्यवतीकयन्ति । पादताडितक पृ. २१०

२- पद्मपाभूतक पृ० ३०

३- शृङ्गार भूषण, ७३

की शोभा का चित्राहा चित्रण इस प्रकार किया गया है—

“शश्वनि स्वसितानिलव्यतिकर-व्याघृतविम्बाघर
खेदाम्भ-कणमञ्जरी विलुलित-व्याकीर्णचूडालकम् ।
उत्कम्प्रस्ननलोतहारसत्तिक क्लान्तावलम्ब वपु
कुर्वन्कन्दुक एष दमन्तश्च ने घटे परा निवृतिम् ॥^१

गेद खेलने के कारण यकी हुई ज़ोडा का यह बरान वृक्षों को सींचने के कारण यकी हुई शकुलता का स्तरण कराता है ।

प्राचीन भारत—चतुष्टय मे उपलब्ध नगरो का सुन्दर बरान भी कालि-
दास की याद दिलाता है । पद्मप्रामुनक और पादताडितक का कार्यस्थल
उज्जयिनी है तथा धृतविटमवाद एव उभयानिसारिका का पाटलिपुत्र (कुमुम-
पुर पटना) । इस प्रकार इन भाषा मे उज्जयिनी तथा पटना (पाटलिपुत्र)
नगर का विस्तृत और वित्तानपंक बरान प्राप्त होता है । तत्कालीन नगर-
व्यवस्था तथा मास्कुनिक दृष्टि से यह बरान ध्यान देने योग्य है ।

‘स्यान् सन्तु कुमुमपुरस्यानन्यनगरमहशी नगरमित्यविशेषग्राहिणी
पृथिव्या स्थिता कीर्ति । बहूनि सत्त्वस्य पुरस्य शृङ्गाभ्युद्वयवन्ति ।
पथ्यसमुदायाञ्जनवाहुलयाच्च ताम्भान् समृद्धिविशेषान् दृष्ट्वा विस्म-
यते जन । सन्ति ह्यन्याग्यपिसमृद्धिमन्तिपुराणि । ये त्वस्य निःसा-
धारणा गुणास्तान् वक्ष्याम ।

तथाहि-दातारः सुतमाः कलाब्रह्मना दाक्षिण्यभोग्याः स्त्रियो,
नोन्मत्ता धनिनो न मत्सरयुक्ता विशाविहीना नराः ।
सर्वे शिष्टकथ धरत्परगुणग्राही वृत्ततो जनः,
शत्रय मो नगरे मुरैरपि दिव सन्त्यज्य सत्पुं सुखम् ॥^२

१- शृङ्गाभ्युद्वय पृ० २८

२- धृतविटमवाद

वालिदान की इन पक्तियों में यंत्री भाव अक्रिय है—

“स्वलोभने सुचरितकने स्वर्णिना या यताना

सैव पुष्पहंतमिव दिव पान्निमत् क्षणमेवम् ॥^१

वाररवि की लेखनी से प्रभूत मुमुषपुर के राजमार्ग की प्रभूत गोम
का बलंत बड़ा ही रोचक एवं हृदयप्राही है जिसे पढ़ कर प्राचीन भारत के
पुष्पपुर (पटना) के ऐदव्यंशाली होने की सूचना मिलती है।^२ इन श्रांति में
छपनम्य प्राचीन काल के व्यातिप्राप्त पाटलिपुत्र का वर्णन भारतीय इतिहास में
मेगास्थनीज द्वारा वर्णित पटना के विवरण से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।
इसका तुलनात्मक अध्ययन इसकी ऐतिहासिक महत्ता की समझने में सहाय
होगा। मेगास्थनीज के अनुसार महाभाष्यकार द्वारा बारम्बार उल्लिखित
पाटलिपुत्र नगर ६० फुट चौड़ी घोर २० हाथ गहरी परिखाओं द्वारा सुर-
क्षित था। परिखा की लम्बाई ८० स्टेडियम या १६१७० गज और चौड़ाई
१५ स्टेडियम या ३०३० गज थी। चौड़ाई १५ से २५ फीट और गहराई
एक प्राकार था, जिसमें ५७० गुम्बज तथा ६४ दरवाजे थे, नगर में ५ द्वार थे,
जिनसे प्रतिदिन मोयं सम्राट अशोक को ४ लाख कार्पास की दैनिक आय थी,
साह्याय के समय में भी यह भारत का अद्वितीय नगर था। उक्त भाषों में
वर्णित पुष्पपुर के वर्णन मात्र स चन्द्रगुप्त अशोक आदि मोयं सम्राटों तथा
चन्द्रगुप्त बिम्बसादित्यसालीन भारत की जनसङ्ख्या और शानदार राजधानी
का स्मरण हो आता है।

भाषा-साहित्य में इस प्रकार के नगर-वर्णन के परिशीलन से ज्ञात
होता है कि वाणमट्ट के पूर्वकासी साहित्य में नालंदा का वर्णन रुढ़ था
हो गया था। सम्पादक राजमार्ग पर मंडराने हुए ‘मनुष्यसालार’ (मनुष्यों
का बस) का चित्र देखने ही बनता है।^३ इन रूढ़ों को पढ़ने समय
आधुनिक दिल्ली, अम्बई, कलकत्ता जैसे बड़े-बड़े जनसङ्घन शहरों का सर्वांग

१- पुष्पहन्त २०

२- उभयान्वितारिण — ६

३- पञ्चमहाभूत

चित्र छाँसो के सामने उपस्थित हो जाता है। वेद्याओं के साथ विटों और राजाओं की वन यात्रा, देवालयों में वेद्याओं के नृत्य गान आदि का आयोजन गुप्तकालीन संस्कृति का प्रमुख अंग रहा है। राजपद पर घूमते हुए विटों, वेद्याओं तथा राजकुमारों के लिये मृच्छकटिक में भी उदाहरण हैं।^१

प्रस्तुत भाणों में चित्रित वेद्योपनिवेश के चित्र का मृच्छकटिक के वेद्य-चित्रण से पर्याप्त साम्य है। इन रूपों में वेद्याओं के आवास का विस्तृत चित्र उपस्थित किया गया है। “एषोऽस्मि वेशमवतीर्णं । अहो न, वेशस्य परा श्रीः । इह हि वारमुप्यानाम्...”^२

तुलना कीजिए —

“ विदूषक :- (प्रविरयावलोकन च) हो, हो, श्री । इषोऽस्मि पठमे पयोऽष्टे मसिसप्तमुणालसच्छाहाद्यो, विरिहिद्विदुषाभुष्टिपाभुराभो

उत्तरकालीन भाण

चतुर्भाषी के भाणों के अतिरिक्त कर्पूरवरीर और मुकुन्दाबन्द भाण को छोड़कर जितने भी उत्तरयुगीन भाण रचे गये वे सब दक्षिण भारत के हैं। अनुमानतः दक्षिण भारत का मुगल आक्रमण से मुक्त रहना ही इनका कारण रहा होगा। ज्ञान वातावरण में ही ऐसे भृष्टारमय रूपों के दर्शन में दान्तिनिक आनन्दानुभूति हो सकती है। अथवा यों कहिये कि भोगविलास में मग्न होने के कारण राजाजी जीवन उत्तर की प्रेरणा दक्षिण में अविनाशनीय हो रहा था, जिससे जनस्वरूप यंत्रों के कवियों को व्यग्न । राजा हान्य की सामग्री अदिन साका के प्राप्ति हो सती ।

जिनके भी भाणों के नाम ऊपर गिनाये गये हैं उनमें से पादनाटिक-वादि चार भाणों को छोड़कर शेष ग्रन्थों में ने कोई भी तेरहवीं शताब्दी

म पूर्व की प्रतीति नहीं होती। उन पर विचार करने में प्रतीति होता है कि भाग्य रचना का सर्वाधिक उन्नत भाग १६ की तथा १७ की या १८ की उत्पत्ति के बीच का था। इनमें विरम वस्तु की पुनरावृत्ति एवं रचनारीति में समानता इतनी अधिक है कि स्वातीपुलाक न्याय में अनुसार किसी एक के विस्तारण में ही अदृष्टि रचनाओं का महत्त्व अनुमान किया जा सकता है। इनके सम्यक् दलोदन में सिद्ध होया कि भाग्य के विकास-क्रम में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। भगवाणाय स लेकर विद्वन्नाथ तब प्रायः सब विचारों की भाग्यविषयक विचार-वृद्धि एक ही है। इनमें लक्षणों में वही कुछ हेर फेर दिखा भी गया है जो उसमें विशेष गहन दन योग्य कोई बात दिखाई नहीं पती। यह बात भाग्य के लक्षण पर ही लागू नहीं होती, अन्य प्रकार की रचनाओं के प्रस्तावना में भी यही सिद्ध होता है कि इनकी प्राकृति एवं आत्मा के चित्रण में कोई अन्तर नहीं है। उन भाग्यवर्ति के दर्शन में म विदित होता है कि हमारे यहाँ अलग-अलग भाग्य रहे होंगे, परन्तु हमारे सब प्रस्तावना नहीं हा सब है। फिर भी उनमें जा है, उनमें भाग्य-माहिर पर पालन प्रमाण पड़ता है।

प्रायः समस्त उल्लेखनीय भाग्य एक ही है। इनके विद्वानों के लक्ष्य में भी कोई नवीनता नहीं दिखाई देती। शिवलोकेश्वर, मधोवेल्लेश्वर, गहन-धन्य-सर्वम-क्षेत्र-अनन्त-लेश्वर, भूजग-लेश्वर, शृङ्गार-लेश्वर, शृङ्गार-माया-दाता-मित्रता-जुगता-भीम-कोई नाम इन दिना जाता है चाह वह १२वीं सदी की रचना हो या १७वीं या १८वीं सदी की। इन भाग्यों की एक विलक्षणता यह भी है कि प्रस्तावना में मूलधार या पारिपारक^१ प्रस्ताव नहीं, कोई दा पात्र गहनत्व पर उपस्थित होकर मभाषण करते हैं जगति नियमानुसार भाग्य में आदि में अन्त तक एक ही पात्र को उपस्थित

१- मूलधार- श्रीमती देव मनामदा जगता । शक्ति, दस्ताकम् ।
पारिपारक- (अविशेष)-भाव, अन्त्यम् । शृङ्गारमूलधारण पृ १ ।

२- (ना-इत्यन्त प्रविष्टि सुखधार)

मूलधार- श्रीमन्मन्त्राचार्य शिवे, दस्ताकम् ।

नदी (अविशेष) - एषा पद्वि । अविशेष करिष्ये आचरेतु आचरे ।

रत्नदत्त भाग, पृ ४

रहना चाहिये। इसके विपरीत चतुर्भासी के एव पात्री रूपों की प्रस्तावना सक्षिप्त होती है। सूत्रधार अनेक ही रंगरच पर आवर भाषण करता है। पादताडितक को छोड़कर अन्य किसी भाण में लेखक का नाम और उसका अभिनयकाल उद्धोषित नहीं किया गया है।^१ इन्हीं वृत्तिपय विशेषताओं के कारण प्राचीन भाण उत्तरयुगीन भाणों से सबका पृथक् प्रतीत होते हैं। पद्माद्वर्ती रूपकधारों में वत्सराज का कर्पूरचरित भाण ही एक ऐसी रचना है, जिसकी समता चतुर्भासी से की जा सकती है। यहाँ भी प्रस्तावना में सूत्रधार मंच पर आकर आकाशभाषित वा प्रयोग करता है। इसकी कथा-वस्तु में भी मौलिकता है। इसका नायक कर्पूर नामक दूतचर है। वह वेश-याद पर ही नहीं चिरता, सीधा रंगरच पर इकर किसी दक्षिण मित्र के समक्ष अपने साहसपूर्ण कार्यों तथा अन्य अनुभवों का निवेदन प्रस्तुत करता है। इसका नाम कर्पूरचरित रखने का कारण भी सम्भवतः यही रहा होगा। वार्तानाप में प्रयुक्त प्रयोग की स्वच्छ दशा भी इस भाण की विशेषता है। नीलकण्ठ के यात्रा महोत्सव में यह भाण परमात्मा की यात्रा से लेला गया था। इसमें सदेह नहीं कि इसमें छूत मद्यपान और प्रेम ही मुख्य वर्ण्य विषय हैं। किन्तु इन दृष्टान्तों की रोचकता प्रदान करने के लिये प्रहमनात्मक तत्त्वों को भी प्रस्तुत रचना में यथेष्ट स्थान दिया गया है।

कर्पूरचरित में काव्य की मनोज्ञता

उमा एव महान् वा जुष्टा और चौपड खेल भारतीय पौराणिक भक्तों की बहुत प्रिय रहा है। इन लीलाओं में रत्न भवानीदेवर की स्तुति को ही कवि ने भी प्रस्तुत भाण के माग्दी श्लोकों के लिये उपयुक्त समझा है —

दास्येऽहं परिरम्भणानि कितव । छूते जितानि त्वया,
मिथुयात्मकमिदं यत्त ततमहोरात्रास्तदीयावधि ।
दत्तुक्त शिवया निशादिवस्तृज्ज्योतिभयाक्षि द्वय-
द्रागुन्मेव निमेष कोटिघटनव्यग्रो हर पातु व ॥^२

- १- कोनु सत्तु मणि विनामनव्यये जय्य इव यूपते । (कर्म दत्ता) हन्त ।
विशालम् । एष हि स विट-मण्डप । (प्रविश्य) द्युतवाक्त्रिक सपनिष्यामितको
षण्मासाद्य पायसनि-पादताडितक —पृ १५१
- २- कर्पूरचरित

इसके अनिर्दिष्ट चौपट के सेत में मग्न पावनी को बौद्धिवा की मूर्खी
गणना करत के बहाने अपनी गागी को छन स थाग उदाहर ठगने बाने
महादेव की श्रीजाया का स्वाभाविक चित्रण भी इन पंक्तियों में निचा गगा है

स्मेरा काशजनैनिवाय निभृत चानुमधुर्न मधी,
मारि सारयना मृपा गणयन स्वानान्यनिकामत ।
बण्ठादेवपणो दुरोदरविधौ चन्द्राघबूडामणो-
देधी बन्धयनो जयन्ति गहनच्छद्रमक्रमा केतय ॥^१

इसके पीछे यही रहस्य छिपा होना चाहिए कि जब भगवान् छतर जैसे शोरी पुरुष
और पावती शैली नामकी स्त्रियों का बन्धन शृंगार में लीन हो सरती है
तब इन्होके के रहस्य मानव धर्म धम-धम का स्थाप कर बैठे तो इसमें
आश्चर्य ही क्या है ? दूर जान को आवरबरता नहीं, स्वयं महाकवि बलराम
के गरणदाता परमहंस भी इतिहासगत सूचना के अनुसार विलासी रह हैं ।
सभन है, कवि न राजा का सचा स्वरन के उद्देश्य से ही ये भाण गी
ग्रहयन १३ है ।

नान्दीपद के शृंगार-प्रकरण के अनिर्दिष्ट उपानातीन प्रवृत्ति व
चित्रण में भी बलराम की कविता की गरिमा एव मधुरिमा प्रस्फुटित होती
है । इन स्थला को दृश्य में कवि की प्रहरणानुगत पदरचनाशक्ति का परि-
चय प्राप्त होता है ।^२

सम्पूर्ण रात्रि भर स्मर-सप्राय में व्यस्त स्वर उपान में राज
भवत से निकलकर गान बानी, बेध्याया के वान हर नुतुरों में निद्रा में गण
हो जात पर भी प्रातःकाल में दम्पति शय्या त्याग में प्राप्तस्व करत हैं ।
फरत छतक शृंगार-गहमर कामदेव को प्रभाव में भी सोत का अग्रसर बनी
मिल रहा है । दूध की नूतन भी देना ही बनती है ।

१- कर्पूरचरित, २

२- कर्पूरचरित, ३०

मन्दप्रतिम पतिनायक चन्द्र की शोभा को भेदकर एवं रात्रि-रूपी वृद्धिनी को दूर हटा कर दूत रवि उपासपिणी गङ्गा का तेजोवीर का रहा है।^१

छात्रोत्तम तथा मधुपानादि में लगे रहने से पता चलने वाली हान्यारपद दृष्टि प्रगटुन भाषा के नायक हल स्वर्ण का दण्डों के समक्ष उपस्थित की गई है।

दन्तिचन्द्रादि-टजौरा पट्टे दिन
मन्त्रादि-द्विगुण-बाह्यगोमरीय ।
लोपोपनुक्त-कठिनीयव-नायक-श्री ?
सूतप्रभार - तन्त्रमन्त्रि-जनादी ॥^२

शेन द्वितीयों में मदन एवम्भार की टिप्पणी-वर्णनी है। जो पात्रों के बीच समाप्त वे रूप में प्रगटुन की गई प्रस्तावना के उत्तरान्न प्रिश्नमुक्त निष्ठ प्रनिष्ठ होता है। वह उपाकाल का शृंगाररहित वस्तुन कर सबेरे ही सपेरे प्राप्ति का प्रयोजन बन्लाता है।^३ अपनी प्रेम्मी (जो कोई वेश्या होनी है) से बिछुड़ जाने के कारण उनकी मनोदशा दयनीय होती है। विरहावस्था में दुःख क्षणों में इतना अनोरजन करने के साथ साथ सभी कभी उनके प्राप्ति का हेतु किसी मित्र में मिलना या मित्र की अनुपस्थिति में उनकी पत्नी की रक्षा करने की प्रविज्ञा को पूरा करना भी होता है। इनमें स्वैरिणी विवाहिता नारियों के पर-पुष्ट्य समन का उल्लेख भी आता है।^४ मुकुन्दानन्द भारत में ऐसी स्त्रियों पर छोटे बत्ते गए हैं। वेश्यावृत्तियों का चक्कर लगाता हुआ रात्र में मिलने वाले किसी तथा भिन्न भिन्न वेश्याओं से मिल कर कालनिक वार्तालाप करता हुआ उनके प्रत्युत्तरो को दोहराना आता है। बिट के आकाशभाषण में तरह तरह की कीड़ाओं और मनोविनोदों का उल्लेख भी होता है।^५ वह वेश्याओं अथवा उनके प्रेमियों के खेल में

१- कर्पूरचरित ४ पृ. २४.

२- कर्पूरचरित, २२

३- अनगभीरव भाष ३-४

४- मुकुन्दानन्द भाष, ४३

५- शृङ्गारभूषण भाष ७१, पृ. १०

विट वैगिनी बना के पूरा अनुभव पंडित हान ह । चारदत तथा मृच्छकटिक का छात्र अथ विमा वृहन्नट म हन विट को नही दखत ।

डा टामस क अनुमार चतुर्भाषी म मुमनमान का उनेव नही आया है । इसके अनिरित पदरचनापद्धति की भिन्न न भी चतुन गवा प्राचीनता स्पष्ट होनी ह । इसममवृत्त भाग के कविन नम न छात्र रूप भाग म कविता न समवातयदा म मुन आया । इस व्यास रर भाषा का प्रयोग किया गया है । अतः डा टामस क अंश म इसका समृद्ध-वचनामृत् टीक ही कहा गया है ।

चतुर्भाषी एक उत्तरवाचीन भाग क उन स र प्रावाचनात्मक सर्वेक्षण के बाद इसकी माहिय का गहरा अध्ययन करत समय उपलब्ध अथवा अनुमान भाग्य क अंश तथा नव इतिहास का परिचय देना समीचीन होगा ।

वत्सराज

पञ्चाद्वर्ती एतपानीय काल म दण्डराज का वपूरचरित भाग प्राचीनतम प्रचीन गाता है । इसके कवि का नाम परमेश्वर क भना थ । नाम क वत्सराज ही ए नाम नन्दनगण दुह है जिसन रूप क विविध प्रचलित एवं अप्रचलित प्रकार का प्रयोजन किया है । दण्ड— (१) किरानाजु नीय व्यापोग (२) वपूरचरित भाग जिसकी बना का सरेन ऊपर दिया जा चुका है (३) हय चूतमणि प्रमाण (४) रुक्मिणीहरण चार प्रका का दण्डमृग (५) निरुरदाह डिम घोर (६) ननुद्रमघन । इन ररक न काव्य क अथ न उदर रर दिगाद देना ह । दण्ड समान तथा दुह-वाक्यनयामरहित हान क कारण वत्सराज का वेदन रीत म माधुर और लाहिय क दान हान ह । उनके नाटक छान हान थ भी नाट्याय क्रियात्मकता रचनता और घटना की नग्यक प्रकता आदि गुण न रहित नहा है ।

काशीपति और मुकुन्दानन्द

इसके उत्तराज मैत्र राज क नहराज क दान अथवा काशीपति न मुकुन्दानन्द भाग रथा । इसके अनिरित अथवा आनन्दाना की हनि

सगीत गगाधर के टीकाकार के रूप में भी इन्हें ख्याति प्राप्त हुई। इनके देशवाल का निदिचन पना नहीं चलना। अनुमानत यह इतिहास प्रतीत होते हैं। इस भाण का रचना-काल भी मदिन्य है। कोई इस १३वीं शताब्दी की रचना मानने हैं और दूसरे १८वीं शती के प्राग्निन भाण की। इसकी प्रस्तावना में इन मिथ भाण कहा गया है नाथ ही यह भी बताया गया है कि माहिर जगन में अब इसका विशेष प्रचार नहीं रहा।^१ इनके अपवाद-स्वरूप यद्यपि पञ्चायुष वित्यास, पञ्चायुष प्रपञ्च, प्रद्युम्नानन्द रस विलास एव रमिक रजन, जैसे कुछ एक मिथ भाणों के नाम मिलते हैं और हस्त-लिखित पोथियों की बर्णनात्मक पुस्तिकाओं में इनके शीपको-नेत्र से ऐसे भाणों के अस्तित्व पर प्रमाण पड़ता है तथापि उनका ऐतरेय का परिचय अज्ञात होने के कारण उनका मिथ भाण का यही एक उदाहरण माना जाता है। इसमें मुकुन्द उपनाम धारी श्रित भुजङ्गेश्वर की मञ्जरी के माध पटित प्रणयलीलाओं का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इसके प्रणय व्यापार मलिनट चिन्तों द्वारा अर्जित है तथा श्रीकृष्ण और गोपियों की रामलीलाओं की ओर सन्तान करते हैं "भूतधार — (श्रुत्वा नैमय्याभिमुखमवलोक्य) - प्रय विन मञ्जरी - त्रिपुतस्य मन्दागोदानगनस्य भुजङ्गेश्वरस्य भगवतो मुकुन्दस्य भूमिकामादाय इत एवाभिवर्तने मानुजकुशो मधुः ।" यही कारण है कि अन्य उत्तरयुगीन भाणों में यह विन है। अन्य परवर्ती माहित्यकारों की तरह प्रस्तुत भाण के प्रणय का बन्ध भी पाण्डित्य-प्रदर्शन प्रतीत होता है। इसकी प्रस्तावना में नटी के शब्दों में प्रकट होता है कि "मुकुन्दानन्द" का भाषा कवि है।

नटी अञ्ज, अच्चरिअ, अच्चरिअ तक्के वक्कोत्तिणिद्धरा तम्भमारई ।

जादा महुत्तस्ये कव्वम्भि मिउला वहम् ॥^२

इसमें चित्त को आनन्द देने के समयें समीप एव विरलम्भ शृङ्गार का भी आभास प्राप्त होता है। कामज्वर से पीड़ित रोगियों को धीरे-धीरे बंधना

१- मुकुन्दानन्द भाण पृ० २

२- मुकुन्दानन्द, ५

सरल नहीं है। इस प्रकार के व्यंगन में चतुर्भाषी के नेत्रको-जैसी सफलता न मिल गान पर भी मुकुन्दानन्द की इन पक्तियों से यदि का धार्वदाध्य प्रभाव है।

हा हन्त रिन्तु मदनी मम तावदेव
मर्माणि कृन्तनि कृतान्त द्वातनायो ।”
वयं वयस्य - मारवसयामि—
शाक त्रयेति पुरुष निमित्त मुचेति—
राग्नयन्ति मुहद मुहदो न विदम ॥^१

तुलना कीजिए—

ययति भगवान् स हन्त व्यासदधराऽप्यनुग्रहादथेन ।

स्त्रीणां विलासमूर्ति रान्तरथेषु द्रुत वाम ॥^२

विषय तय ग्रन्थ के शीघ्र के अनुद्गृत ही अनुनामद पर राम रचान वाले गोपिया के चीरफर्नी मुकुन्द की स्तुति -वि के भाषागत अतिशय को सूचित करती है।

वन्दे वन्दा - मन्दार - मिन्दुभूषणनन्दनम् ।
धमन्दा - मन्दसदोह - बन्धुर मिन्दुराननम् ॥
दण्डालिङ्गन - मङ्गल धनकुचाभोगोपभोगोत्सव
श्रेणीसगम सौभग च मतत मरप्रेयसीना पुर
प्राप्तु कोऽप्यमितीप्ययेव धमुनाबूलेबलाद्य स्वय
गोपीनामहरद् दुबूलनिधम कृष्ण स पुष्पातु न ॥^३

इसके अतिरिक्त एक रघुनाथ की स्तुति भी है जो प्रकाशित भाण की इस प्रति में नहीं मिलती—

“वन्दामहे महेभानचण्डकोदण्ड-अण्डनम् ।

जानकी हृदयानन्द चन्दन रघुनन्दनम् ॥”

१- मुकुदानन्द ४२

२- पद्यप्राप्तक १, पृ० २

३- मुकुदानन्द १२

प्रातः काल तथा प्रदोष समय की प्राकृति-मनोन्नता के वर्णन का पट कर कवि की अद्भुत वर्णन शक्ति का महज ही अनुमान किया जा सकता है। कदिराज कासीराम पर कालिदास का प्रभाव दर्शाने वाले तथा प्रभाव वर्णन के प्रकरण में माघ की याद दिवाने वाले अंश भी इस भाण में प्राप्त होते हैं।

(प्रतीचीमवलोक्य) अयमिह—

जरठ इव मरालो जजंरा-शैममूखं
स्खलति विशिरभानु पश्चिमाम्भाधिपारे ।

अयम - यमुदया-द्रौर्वातिदूरे विस्वान

यमयममृतायु पातकी याति चान्द्रम् ॥^१

इसी कही बसन् ऋतु का मनोहर चित्र भी उल्लिखित किया गया है -

काले वीरिल्लोमलोक्तिमधुर काव्यज-मान्य कवि

काव्यस्यापि स एव कर्मजनको राधाविटा नायक ।

सारज्ञाच्च सभासद पुनरभी नाट्यप्रतीणा वय

किंचाम समुदायिनो भारतश्च इत्यरस्योत्सव ॥^२

शृङ्गारभूषण -

कामनभट्टवाण का शृङ्गार-भूषण भाण भी एक अनुपम रचना है। इनका जन्म ब्रिलिंग देश में हुआ था। इनके शृङ्गारभूषण की प्रस्तावना का पाचवाँ श्लोक कवि का सश्लिष्ट परिचय प्रस्तुत करता है^३। ये दक्षिण भारत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने 'पाचवी परिसर' नामक नाटक, नलायुदय तथा शृङ्गार भूषण दीपन भाण की रचना की। हम्पट्रिजिन पोथिया में भाणों की नाममाला को देखने से इसी नाम के व्यक्ति की "शृङ्गार पाचन" नामक

१- मुकुटा-द २ ।

२- मुकुटा-द १० ।

३- शृङ्गारभूषण ३, पृ० १

एक और भाग रचना का भी पता चलता है। सम्भव है यह भी इन्हीं की रचना हो। इस सम्बन्ध में निरुद्धयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता।

नाममाहस्य के आधार पर कुछ नाम उनको श्रीहप के राजकवि कादम्बरी हृषिकेश चण्डीमठ तथा मुकुटताडितक के रचयिता बाण में अभिन्न समझते हैं। परन्तु यह विचार युक्तिमग्न नहीं। हृषिकेशवार बाण मानवी गताद्री के हैं और भाण के रचयिता १४वीं शती या १५वीं शती के। कुछ लोग यह १७वीं शताब्दी के भी मानते हैं। उन मवन १९२३ के एक नाकूपन में अरिज शृंगारभूषण के लेखक बाण के नाम का इस तरह विद्वाना ने देखा समय १४वीं एवं १५वीं शताब्दी का मध्यमवीं भाग अनुमानित किया है। ये १/वा गताद्री के पूर्वाद्ध में प्रिनिम २/वा गता उद्धरण (ता बार नारायण के नाम में भी लिखा है) के दरबार में रच्य था। सम्प्रिद्ध याणभट्ट की शीरी का मयनापुवन अनुसंग करने के कारण यह अभिनव बाण की रक्षा दी जाती है। इनकी माण्डव्यगमनि का पात्र में भी विभूषित किया गया था उनकी माहिरिज विद्वता में परिचायन है। इनका पान्तीपरिणत की प्रनायन में स्थित गताक में भी उनकी विद्याविद्यामिता प्रकट होती है।^१

गणेशिका में बाण का उत्पल विजिजुर के विद्यारण्य के शिष्य के रूप में मिलता है। यह बात ठीक भी हो सकती है। कारण विजिनगर गता वीरनारायण के राज्य के शनि निरट ही था। वमभूषण के सभा पण्डित तथा विजयनगर (विजिनगर) के सम्भाषा माधवाचार्य के शिष्य अभिनवराण ने कृत हसकाव्य के प्रणयन में ही अपनी कविराशति का परिचय नहीं दिया प्रसुत अव्य काव्य के क्षेत्र में भी उनकी प्रविभा प्रम्फुजि है। इसका प्रमाण अपने आश्रयदाना के जीवन-चरित्र का ध्यान करन वाला गद्यकाव्य वमभूषणचरित तथा मधूत के अनुकरण में लिखा गया हस्यन ग्रन्थ है। इनकी गणना द्वितीय काटि के कवियों में की जा सकती है।

इनका शृंगारभूषण भाण में अथ भाणा की तरह ही शृंगार

रम^१ का प्राधान्य है। विरहाकुल विट मंच पर आकर अपनी अवस्था का वर्णन करता है। वेदोपनिवेशो का पयटन करता हुआ कल्पित मुन्दरिबो के सौन्दर्य-वर्णन के साथ-साथ उनको पाने के लिये लासायित विरोधी पुरुषों के भयङ्गे, मल्लयुद्ध, भुगों की लड़ाई, वन्दुक-क्रोडा आदि खेलों और वमन्तोन्मथ का चित्रण करना जाता है। इनके यथेष्ट दृष्टांत ऊपर प्रसंगानुसार दिये जा चुके हैं। यहाँ कवि के वष्य वस्तुओं के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उत्कृष्ट वर्णन ढोली का पश्चिम प्राप्त होता है। गद्य तथा पद्य रचना में भाण के प्रवाह तथा माधुर्य को देखकर परिचात गद्य लेखक बाणभट्ट तथा रमिक भोजराज की याद आग बिना नहीं रहती।

रत्नमदन

‘रत्नमदन’ भी इसी नाटि की एक अत्रुव रचना है। इस नाट्य के र्नी मुवराज हैं। इनके जीवनकाल का प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। लेखन-शैली के द्वापार पर इनका समय पन्द्रहवीं या सोनहवीं शताब्दी के बीच बनलाया जा सकता है। ग्रंथ का नाब्दी श्लोक^२ तथा त्रल में प्रनित प्रशस्तिमों^३ के आधार पर इनका ही कहा जा सकता है कि नक्ति ने प्रनत्य उपानक मुवराज दक्षिण भारत में वग्न प्रान्त के निवामी थे। रत्नमदन भाण के अनिरिक्त इनकी त्रिपुर् दहन-नरिन, देवदेवेस्वराष्टव, मुररिपुम्नोन, रामचरिन, श्रीनादनपनर, गदाभिरी, नुधानन्द सन्नरी तथा हेत्वाभामोदाहरण इतोन नामक रचनाएँ भी साहित्य मनाग में प्रसिद्ध हैं।

वैदर्भी रीति में रचित रत्नमदन में शीर्षक के अनुकूल ही माधुर्य सौकुमार्यादि काव्य के विविध गुण देखने में आते हैं। कभी-कभी उनकी

१- वाचस्पत्यवचे प्रमदमपुत्र दश प्ररोगे वय

वैदग्ध्यप्रदमावतामरणि मार्याजिकाना मन ।

नात कोकिलकण्ठराग विनयत्वर्पणसौंदर्य

शृङ्गारोत्थि रम म एष विविनो दिष्ट्या गुणाना वण ॥

शृङ्गारभूषण ६, पृ० २

२- रत्नमदन १, पृ० १

३- रत्नमदन १०, पृ० १४

अद्वितीय कल्पना-शक्ति का भी परिचय मिलता है। नाटकों में गीतों का विधान भारतीय-नाट्य शास्त्र में प्राप्त होता है। तात्पर्य के दम प्रकारों में गेय-यद प्रमुख है। दृश्य काव्य की शोभावृद्धि के लिये, साध्यांगों की योजना अनिवार्य होती है। इसकी पुष्टि अभिनवभारती से भी होती है।^१ भाण में तो दस तास्यांगों का विधान है।

नाटक में बहुत से छोटे छोटे गीत कथावस्तु के अनुकूल होते हैं। उनमें तियोजित गान स्वच्छन्द काव्य के रूप में भी उपलब्ध होते हैं। युवराज के रससदन भाण में उसकी कविता की शोभावृद्धि करने वाले घने रसमय गीत भरे पड़े हैं। भाणों के शृंगार रजित पृष्ठों को पढ़ने-पढ़ने जी ऊब जाता है तो ऐसे गीतमय श्लोक उस एकाकारता को दूर कर देते हैं। कुछ एक श्लोक वैदर्भी रीति के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में भी उद्धरणीय हैं।

राजाभुजेन दशमी च वपोनकान्त्या
पालेन पञ्चमतिथिं प्रतिपन्नताङ्गं ।
एषा कुहुरपि वच प्रसरत्त दत्ते
प्रायः समस्तनिश्चितसंग्रहभाजनत्वम् ॥^२

भाषा के साधु व्याकरण पर बलि का अच्छा अधिकार प्रदर्शित करने वाले अंग भा प्रस्तुत भाण में प्राप्त होते हैं।

१- "यानि तास्याङ्गानि वदन्तमप्य कश्चिद्विचित्राङ्गो,
लोकपरिहृष्टोऽपि रञ्जनार्थं विनाय कश्चिप्रसोद्धूयितान्यै निरघनीयः ।

और भी—

ध्रुवगतपञ्चमनराणापस्वर रहितयत्र प्रयागवाग्

भवति स काव्यप्रयोगो गेयपरमित्तुक्तम् भवति । यत्र हि

प्रयोगे तत्तत्राभिनिर्दिष्ट साध्याङ्गैरप्य भवतीतिपादान्तोऽप्यौ तास्याङ्गा-

दिहोपजीविनः ॥

अभि मा ना शा १६

वा शो गो भाग ३. ५० ६७ ६८

२- रससदन ४५ पृ० १२

भूनेभूता समये सत्कारास्ते भविष्यन्ति भविष्यन्ति ।

न भवन्तु दत्तमाने वाङ्मात्रेणायवा विहिता ॥^१

कभी कभी इस भारण में प्रयुक्त छन्द कुछ अद्भुत तथा कटु से प्रतीत होने हैं,^२ किन्तु युवराज की अवन साहित्यगन विशेषताओं के आगे नगण्य हैं ।

इस एकपात्रीय रूपक में नायक चिट वरानकर्ता है । उसके मुख से कवि ने मनोहरवर्णन करवाये हैं । घूमता हुआ चिट मार्गन्ध वन-उपवनो की प्रातःकालीन तथा सन्ध्याकालीन शोभा का चित्रण करता है, जो हृदयग्राह्य है । प्रकृति का सीधा-सादा किन्तु मनमोहक रूप कवि ने बड़ी सरसता से रचाना दिया है । यथा -

घोकूयन्ते विहङ्गा दिशिदिशि निजनीडद्रुमाग्रे निवभ्रणा ।

दोघूयन्ते वहन्नुस्तुहिनि - जलकणान्कुन्दगन्ध वहन्त ।

लोलूयन्ते तमिष्व दिनकर-स्मिराश्रेणय शोखशोभा

बोभूयन्ते रुमेरा प्रकटितननव शैलगेहद्रुमाद्या ॥^३

'पक्षी चारों ओर अपने घोंसलों के वृक्ष पर वृजन कर रहे हैं । अनिल झोन करणों और कुन्द की गन्ध को लेकर वृक्षों को बंसा रहा है । दिनकर की स्पर्शित किरणें अन्नकार को बिन रही हैं और शैलगृहों पर वृक्षलताएँ आदि प्रकट रूप से शोभित हैं । यही प्रभान का एक और दर्शनीय चित्र उपलब्ध होता है । देखिए —

मग्ना बोध्य नभस्थनी विवर्लितप्रत्यश्वाराधर -

श्रेणीद्वामलवासस पन्निरगौरक्त स्वय मुञ्चति ।

टल्यन्नदिचरमाकसय्य ननिनी शोवानिरेकादिव

व्यादायान्बुजमानन विलपति व्यानोल-भृङ्गारखं ॥^४

१- रत्नमदन १२६, पृ० २१

२- रत्नमदन ८२, पृ० १६, १२६ पृ० २२

३- रत्नमदन १६, पृ० ६

४- रत्नमदन २२, पृ० ६

' आकाश का अनाच्छादित और बादल रूपी दयामय वस्त्र को बिखरा हुआ देस (प्रभात होने पर आकाश के तार लुप्त हो गए और बादल इधर उधर बिखर गये) मेरा यह पति रक्त उमल रहा है । (सूर्योदय के साथ साथ आकाश में सबत्र लाली फैल गई है) । इस बात को वही देर तक मन ही मन मोचकर शोचानिरेख से कमनिनी अपने मुखकमल को खोल कर चंचल भौरो की गुजनघनि में मानो बिताप कर रही है ।

मनुष्य का अपनी मन स्थिति की प्रतिच्छया प्रकृति में भा दिखाई देती है । चिन्तामय विरहाकुल बिट आकाश में भूतल तक सारे वातावरण को शोचमय पाता है । यही कवि की सहृदयता है । मित्रदा के स्वभाव का युवराज कवि ने एक दशम में जा करान किया है वह किमी दुबल हृदय नारी के चरित्र का चित्र हो सकता है । कुछ बहुधा पर वह चरित्राथ कहा जाता ।

ग्यागान्त नि गय चेनमि मुह प्राणैररो य ममे
तुदुषोपत्यनुबन्त च पूरुष तत्तत्प्रियाराधनं ।
ना जानानि गपितस्य तु हिन निष्पिञ्चतत्त्व पुन -
स्त्वजत्ता न नजने न्यमीहृदय प्रायण यापा जन ॥ १

इनके अनुसार नारी अपने चित्त में व्यापन होकर यह मरा प्राणेश्वर है - ऐसा श्मशान स्थिति में मानातुल्य मरा द्वारा पुरुष की ताराधना करती है । वह उनी पुरुष के शिर पर उमर हिन की चिन्ता जिये बिना हा पता नहीं वह उम रजा कर वह हृदय की मेधा में लय जाय - प्राय एनी हानी है दिया ।

मित्रदा के त्रिप कवि की इस प्रकार की अविश्वामयूय भावना चरित्रानिताम्रा के रहस्य का परिणाम कही जा सकती है । नारा में श्रिया के इस रूप के आग्नि विष उपपन्न होते हैं । कवि न केवल नारी

के धूर्त रूप को ही नहीं परखा है उसने रमणी की हार्दिक एवं शारीरिक मनोस रोमा को भी निकट से अच्छी तरह निरखा है। कालिदासदि प्राचीन कवियों की मल्ल-सिद्ध-वराण-पद्धति का भी युवराज ने मर्यादापूर्वक अनुकरण किया है। रमसदन नारा में युवती की मुपमा अत्यन्त नितरी हुई उल्लस्य होती है और प्रेमी उन पर आसक्त है—

पादाब्जानाह - मन्दमन्दवमुदाविन्यासीनावत
होदण्डाचनमनागुह - मुहु - प्रत्यञ्च-वशोऽहम् ।
यातापान-विशयि बाहुनिजामूषाम्भरात्कारित
मात मत्त-मद-मनेन्द्र मधुर नये मुद चेनमि ॥^१

‘मेरी प्रियना अपने चरणक्रमन धरती पर धीरे धीरे रख कर चली जा रही है। मन्द-मन्द के कारण उसकी नाड़ी का प्रांचन हाथ के नीचे कृत्तक पता है। उसके पयोधर अतिस्पृष्ट हो रहे हैं, उसकी बाहुता के पलायमान होने में आसुरा की मधुर स्कार उठ रही है। इस प्रकार मत्त घात ने चलती हुई प्रिया वित्त में आनन्द की सङ्गियां उत्पन्न कर रही है।’

तूष्णं प्रतिमानानननिद मेव [मनश्च-बने,
मण्डो इन्दु-मन्त्र-विनयी विन्दप्रमानोत्तर ।
वशाती मणितेनृभन्विरी शोणीभूत निन्दता,
पादी तदपनोन्ती मृग-म नवे ननोन्तोहम् ॥^२

“ यह मृग पशुना के चन्द्र का प्रतिमान है, अर्थात् प्रकृता चन्द्र है, ननीलप्राप्त दर्पण के समान निम्न विन्दोद्ग्राह्य है, अथर्वविन्दप्रमान-ना ज्ञान है। पयोधर मण्डिमन मुकुट-मन के मन्त्र मनोहारी तथा उत्त-प्रदेश विमान हैं एवं चरण पलायन मुहोन्त हैं। मत्त तो यह है कि

१- रमसदन १२, पृ० १३

२- रमसदन २२३, पृ० १३.

इस मृगलोचना का अग प्रयोग मनमोदक है । उत्तरमेघ में भी यशिणी का इसमें ही मिलना जुलता रूप धारित है ।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पङ्क्तिम्वारोही,
मध्ये क्षाया चञ्चिह्रिरिणी प्रेक्षणा निम्ननाम्नि ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोत्रनम्रा म्नाभ्या,
या तत्र स्पर्शवति विषय गृध्रिप्रायेव घातु ॥^१

इन शृंगारिक वर्णनों के धितिरिक्त इस लघु ग्रन्थ में संगीत के तत्वा से युक्त गीत भी अधिक मात्रा में मिलते हैं और उनके शब्दों की गूँज को सुनकर रसिक मन मयूर नाचने लगता है । किसी सुन्दरी को शारता को देखकर नायक हर्षोन्मत्त हो भा उठता है ।

धवलकुसुमधारिणी मृदुनर्हमितकारिणी • २

इस प्रकार विट वेशवनिनामा से मिलता हुआ हास्यशृंगारादि रसमिश्रित संगीत का श्रवण करता है । नहीं इन्द्रजान विद्या के प्रयोग देख कर बहुत प्रसन्न होता है ।^३

इन वर्णनों के प्रसार में रूपक उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि भलशरीरों का विन्यास बहुत रुचिपर है । कवि की इस कृति पर कालिदास माघ आदि कविता का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

सूत्रधार — साधुगीतम् । साधुगीतम् । यत ।

सङ्गीतैः तवाभुना भुक्त्विधौ पीयूषधाराधनम्
कुर्वाणेन विष्णुवर्णमुल्लासदम्भार सिन्धुः इव ।
निपुनि स्तिमिता मुखोदभवसादात्म्यमाश्रितम्—
चित्रयस्तनरा इव ललाममी सर्वश्रेष्ठ सान्निध्या ॥^४

१- उत्तरमेघ (मेघदूत)

२- रसमन्दन २३३ पृ० ५३

३- रसमन्दन २०१ २०३ पृ० २०

४- रसमन्दन १६, पृ० ३

तुलना बीज्य —

गुनगार — शायें मागु योनम् ।

अहो रम्य उद्विग्ननृतिगतिमिति रस सदतोरज्ञ ।^१

शृङ्गारतिलक

महदहो शताब्दी में काशीपुर के दरदाचाय न जो अम्मानाचाय भी कह जाने हैं वसन्ततिलक नामक भाषा की रचना की। ये बैष्णव आह्वण थे। इसलिए भाषा में अम्मा शब्द दिया के लिये अम्बरूपक ध्यनहत होता है। रामभद्र दीक्षित के सिष्य^२ की यह इच्छा हुई कि अम्माभाषा भी लिखा जाय। अम्मा पद आया जा बिक्रम रूप प्रतीत होता है। अम्मा भाषा का नामान्तर है शृङ्गारतिलक। हमारे रचयिता का संक्षिप्त परिचय इस भाषा की भूमिका में प्राप्त होता है।

कोण्डिय गोपबन्धु श्रीरामभद्र मणीन्द्र का जन्म दक्षिण के कुम्भकोण नगर से मात्र थोड़ा दूरी पर स्थित कण्ठरमनिक्कम् नामक ग्राम में चतुर्थेदी यज्वन् परिवार में हुआ था।^३ आह्वण कुन मणि रामयज्ञ दीक्षित इनके पिता थे। बचपन में ही इन्होंने अपने गुरु श्रीनीलकण्ठ मल्ली के चरणों में अध्ययन करते हुए काव्य, नाटक रमालकार एवं लक्षणग्रन्थों में पाण्डित्य प्राप्त किया। अपने गुरु श्री चौवकनाथ मरीन्द्र की ज्येष्ठ कन्या के साथ इन्होंने विवाह किया। श्री बाल कृष्ण से इन्होंने अध्यात्मशास्त्र की विद्या प्राप्त की।

तंजौर नगर के राजा शाहजी ने कावेरी नदी के तट पर कुम्भकोण नगर में दो योस दूर “तिरुविशत” नामक स्थान पर अपने ही नाम से शाहजीपुर नामक नगरी की स्थापना की। श्री महादेव कवि, तिर्याप्पवरी

१- अक्षिजान शाहजल, प्रथम महु ५० ८

२- शृङ्गारतिलक ७

३- शृङ्गार तिलक ५-६

आदि शाहजी के सभापण्डितों में रामभद्र मखीन्द्र प्रमुख थे। इस विद्या-प्रेमी राजा ने १६८४ ईस्वी से १७११ ईस्वी तक (लगभग २७ वर्षों तक) राज्य किया। रामचन्द्र के शृंगारतिलक भाण के अनिरुक्त उनकी अन्य रचनाओं के नाम ये हैं—

- १ अट्टप्राग २ चापस्तव ३. जानकीपरिणय (नाटक)
- ४ पद्मजनिचरित (काव्य) ५ पर्यायोक्ति नित्यन्द
- ६ प्रमादस्तव ७ बाणस्तव ८ विश्वगर्भस्तव
- ९ तूगीरस्तव (अप्रात)

ये कृतिश्रौ इनके बहुमुखी पाण्डित्य की प्रमाणित करती हैं। मुकुन्दानन्द भाण की तरह शृंगार-तिलक में भी यह बनसाया गया है कि प्रायः अभिनव कथाकार साहित्यशास्त्र की प्राचीन परम्परा के कट्टर अनुयायी होते हैं। अतः वे सरस वस्तु का मर्मन नहीं कर सकते। पंडित रामभद्र की वाक्य रचना धुनि-वट्टु एवं ममस्त पदों में रञ्जित होती है, अतः उनका अपनी सरस पदावली पर गर्व करना अनुचित सा लगता है। परन्तु शृंगार-तिलक की प्रस्तावना से यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि ये दो विरोधी बातें भी एक साथ घट सकती हैं। यह शृंगार-तिलक रत्नभट्ट के इसी नाम के श्रव्य-काव्य में संवधा मिल है। रत्नभट्टीय शृंगार तिलक में नायिकाओं के भेद और नाम की विभिन्न अवस्थाओं में उनकी दशाओं का उल्लेख मिलता है। रामभद्र की कृति हृदय काव्य के अन्तर्गत भाणों की कोटि में आती है। कवि ने नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट नियमानुसार वीर्य के अनुकूल ही शृंगार-रस में लिप्त मगलमय श्लोकों द्वारा प्रस्तुत अनपनीय प्रेक्षणक का शीघ्र श्लेष किया है। 'विवाह के पश्चात् पर श्रीराम के हृदय अनुसंगमय नयनों के दशनमान से घरणीसुता नवोन्न सीता की लज्जाई अग्नि तुम्हारा कल्याण करे।' सदा रघुनाथ के चरणों का स्मरण करने वाले भक्त का पावन हृदय भी जिह्व प्रेम के कारण साधारण जनता के लिये रचे जाने वाले भाणों की रचना में प्रवृत्त हुआ। इसमें साम्प्रदायिक प्रचार की भी भावना दिखी हुई है।

शृंगार-तिलक में विं भुजगशेखर और हमांगी नामक वेद्या की प्रणय-कथा है। नायक नायिका के स्वसुराज्य जान के कारण दुःखी हो रहा है परन्तु उसे पुनर्मिलन का आश्वासन दिया गया है। वरदरीधिया का पयटन करना हुआ वह अल्पिन पात्रा में वार्तालाप करना जाना है। मय्या के खेत तथा जादू के चेतन रा भी विवरण प्रस्तुत किया है। अन्त में वह हेमांगी में मिल जाना है। इसी में विं के विन मन्त्र— तम चित्रमन क बीच हुआ साहसिक कार्यों का भी उल्लेख है।

इसमें प्रमगवश प्रस्तुत किय गये वास्तविक मन्दिर और प्रभात क मनोहर वणन रमिका का मन हर लेन है। कही कही कामुक वन्द्यादिलान्तियों का विरह-वणन पाठकों के हृदय को प्रभावित किण दिना नहीं रहता। प्रकृति का मानव रूप दिखलान वाले इन पद्यमय विवरणों को पद्यत समय भाष का तथा हमारे गद्यांश को देखकर वाग्गुभट्ट का स्मरण हो आता है—

वचचिद्विक्कचचम्पकन्मज्जमन्धदन्धु —

... ..^१

प्रकृति विरहाकुल विट को विरहदिग्ध नायिका की तरह आँसू बहाती हुई दृष्टिगोचर होती है। चाहे प्रभात का वणन हो या संध्या का, उसे हर जगह अपने करण क्रन्दन की ध्वनि सुनाई देती है। कही चम्पर के गुच्छा और पुष्पा से निकलने वाली सुगन्ध तथा कही घास की नई पत्तियों की सुरभि से युक्त पवन प्रेमियों को सुखप्रद प्रतीत होता है और कही वसन्त की शोभा विरहिणा को दुःखद लगता है। वर्षा ऋतु में प्रकृति निरन्तर ठण्डी आँसू भर कर विमुक्त दम्पती को भी रुचाती है। इस प्रकार सभोग के साथ साथ विप्रलम्भ शृंगार का आभास कराते हुए कवि ने यह मित्र बनने का प्रयास किया है— 'न विना विप्रलम्भेन सभाग पुष्टिमनुते ।

द्वयान्न दाल का प्रविरसित नीलोत्तलङ्ग—

नताक स्वच्छन्द रन्निमुपभुज्यामरति ।

घोर भी—

उष्ट्रवा इतिवन्तश्चा कर्मिणी तस्या मुपित्वाश्रय—
 दत्त्वा न पत्निरम्भमून्यदिपत्नी नीगोत्पत्तिन्ये निति ।
 प्राप्ते मात्रात्तन्निमपटने मानाहणे वास्तु
 चन्द्रचोरदम्भ - घरमनि मत्तागुको धावति ॥

पर्याप्त - कर्मिणी रूपी प्रोपितवन्तश्चा नायिका को राज के समय अनेका पक्षों से उनकी शक्ति का अपहरण कर उन रात्रि को उठाता उद्भोग करने का मूल्य तमन के रूप में प्रदान कर मामन जाध से तमनमाते हुए नाल किरणा वाले मूल्य को छाता दन चन्द्रमा मानों चोर की तरह पहाड़ से गिरना पड़ना भाग्य जा रहा है। यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा वेगमूह के व्यापार का समीप चित्र कवि ने बीच बतलवा दिया है। निम्नारित पक्तियों में चिरहियों की तुलना दिखाई गई है।

मन्दारगन्धि तरंगो मन्दम्य बारान्
 गन्धाचनोद्भि रयमस्य परिप्लवोति ।
 उन्मीलति श्रियमादुर्विप्रयोग-
 जन्मा च मप्रति विज्ञानितम-प्रगार ॥

प्रेम भाग में कभी उद्देश्य की पूर्ति में मजबूतता मिलनी है और कभी असफलता। लोक-व्यवहार में शरीर के अंगों के पड़ाने में किसी शुभ या अशुभ समाचार के प्रपण होने की सूचना मिलती है। शत्रुनशास्त्र के अनुसार प्रायः स्त्रियाँ के वामाग एवं पुरुषों के दक्षिणाग का पड़कना कल्याण-कर बतलाया जाता है। (अन्य नाटकों की तरह) इस भाण में भी अगविशेष के स्पन्दन को त्रिय-सुख प्राप्त कराने वाला बनवाया गया है।

मन्दने दक्षिणो भुवङ्गः । तन्मन्ये पतिप्यति मे मनोरथः ।

तुलना कीजिये -

शान्तमिदमाश्रमपद स्फुरति च बाहु कृतं पद्ममहास्य ।
 अथवा भवितव्याना भवन्ति द्वाराणि सर्वत्र ॥^१

प्रमिया को प्रतीक्षा की अवधि बहुत अंतरनी है। इस दुस्सह समय को व्यतीत करन के लिये बड़े नाटका और भाग जैम लघु रूपों में प्रणयिका एवं शकुन्तिनाम्नी कवन या उपवन में जाने का विधान उपलब्ध होता है। चतुर्भाणी की नगह शृंगारान्वितादि उत्तरवार्त्तीन भाणों में भी इस प्रकार के चित्रण है। हमें प्रमया पर दब उपवन की यात्रा का चित्रण करन में कविगण अपनी प्रतिभा के प्रदशन का अवसर भी पाने हैं

पकवानि प्रच्यवन्ते कमुरश्चिपिनामुच्छिन्नाना पत्रानि ।^१

यही 'गोश' शृंगार तिलक भाण के कर्ता की दूसरी कृति 'जानकी-परिणय' में भी मिलता है।

इन भाण में एक अतिरञ्जित चित्रोदयिया गया है। जहाँ उसका द्वारा रचित तुलक तत्त्वज्ञान के मन्त्रों पर लिखित पत्र पर प्रतिज्ञा प्रप्नुव की गई है।

स्वप्नि भीमनि मन्मथे सनि निनी तन्नाम्नि सबन्मरे

दयमस्तु ताञ्जनलना वत्परमेक कलत्र मे।

वत्थ भुङ्गशेषर-जाञ्जनलतयोरनुज्ञया लिखितम् ।^२

इनसे अनेक दशकों में कानिदाम के मधुर छन्दों की प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है। कुछ पद्यों में मेघदूत के मन्दाजाला छन्द का स्वर गुंजता सुनाई पड़ता है।

शृङ्गारसर्वस्व

इसके उपरान्त शृङ्गार-सर्वस्व नामक चार भाण संस्कृत रूपक-साहित्य में मिलते हैं, परन्तु इनके रचयिता भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं। इनमें से एक रचना वेदान्तचार्म्य की है, एक भूतिनाथ की तीसरी कृति अनन्तनारायण सूरि की तथा चौथी नल्वाबुध कवि की है। प्रथम दो भाणों के शीर्षक और लेखकों के नाम के सिवा उनके विषय में अन्य जानकारी प्राप्त नहीं है। शेष दो रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

१- शृङ्गारविजय, २०१

२- शृङ्गारविजय, १०८-११४

“भारद्वाज-गोत्रमभव अनन्तनारायण मूरिवरदराज क्षाम्त्री के भागिनेय
एव उनके ही विषय भी थे। पाण्ड्य देश के कोरदणग्रामनिवासी
और मलावार के मानदिऊन राज के समसामयिक थे।”

रामभद्र दीक्षित के निकट सम्भवन्ती मन्नाकुय कवि बालकन्द मन्त्री
के पुत्र थे। य कांशिक सोनीय ब्राह्मण चार दश के कुम्भघोग नगर के
निवासी थे। इन्होंने सुभद्रापरिणय नामक नाटक भी रचा। ‘अद्वैतमञ्जरी’
और उसकी ‘परिमला’ नाम की व्याख्या भी इन्हीं की लिखी मित्रता है।
लगभग १७०० ईस्वी में इन्होंने शृंगार-मधुम्भ भाण की रचना की। इसमें
अपनी प्रेमिका से विछुड़े हुए विट की मनोदशा चित्रित है। किसी मन्त्र
हाथी की सहायता से दो प्रेमी पुन मिल जाने हैं। हाथी को देख दूम्भरे
लोग घबरा उठते हैं, परन्तु नायक उसे अपनी प्रार्थना पर सहायता के
लिये शिव द्वारा भेजे गये गणेश भगवान के रूप में देखता है। इस सरल
कथा को सरल आलंकारित भाषा में सुन्दरतम रूप देने का कवि ने सफल
प्रयास किया है। इस शृंगारप्रधान एकांगी रूपक में विट अपने मनाभिलाष को
प्रकृति के क्षेत्र में प्रतिफलित पाता है। उसकी दृष्टि में सारा वातावरण
विलासमय है। इसमें स्थान-स्थान पर कवि के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ज्ञान का भी
परिचय मिल जाता है। भगवान सूर्य तब कामी के रूप में चित्रित किये गये
हैं। जिस प्रकार शृंगार-तिलक एवं शृंगार-भूषण आदि भाणों में सूर्य का
इसी रूप में चित्रण किया गया है उसी प्रकार इस भाण में भी दिनाङ्क की
कामनिजासिना चित्रित की गई है। देखिये -

पूर्वशमाधरशिखी - शिखराचिह्नों
लाधारमाखण - वपुभम्बान्दिनेश ।
प्राचीमुखस्य परिवर्ध - विशेष-निष्पे
कादमीर - पङ्कनिलरश्मिमाननोति ॥^१

उदयाचल के शिखर पर मदार लाधारम के समान अरण्य नानिमान्
सूर्य पूर्व-दिशा-रुधी नायिका के मुख पर केसर द्वारा चित्रकारी कर रहा है।

गच्छन्त्यस्ता - मिनम्वमम्बरदा - कुर्वन् - रैश्चन्द्रमा
 सगच्छन्त्य इव प्रियम्वन इतो निष्क्रम्य चमत्तना ।
 प्रच्छन्ना कुन्दा विटान् विजहति शार्फाक्यामात्यया-
 नक्त जागरणेन वारवनिता निद्रातुमुद्युज्जते ॥^१

चन्द्रमा के दृष्टान द्वारा भाग्यवारा न वेग-भवना में राधियाप्त करने
 वाले कामुर विटों तथा कुन्दाओं का मज्जीव चित्र प्रस्तुत करने का स्थान-
 स्थान पर प्रयत्न किया है । उक्त पक्तियों में इमका ज्वलन्त उदाहरण देता
 जा सकता है । चन्द्रमा आकाश को दयागतर मन्वाचन में प्रविष्ट हो रहा
 है (रात भर अपनी प्रेयसी के साथ रमण करने के उपरान्त जा रहा है)
 कुलटाएँ रात बीतने पर परपुरुषों का साथ छोड़ रही हैं और रात्रि में
 जागरण होने के कारण वेग-वधुर्गे सोने का उपक्रम कर रही है ।

अग्निवदारा के शृंगार भूषण की भाँति शृंगार-सर्वस्व की प्रस्तावना
 में भी शृंगार को उद्दीप्त करने वाले कामदेव की स्तुति की गई है जो कवि
 की माहित्यिक-प्रतिभा की ओर संकेत करनी है । यथा—

वितन्वन्त्यस्कोण विशिखमभिरादेव भगवा-
 ननङ्ग. वेनापि त्रिभुवनमज्ज्य विजयते ॥^२

भगवान् कामदेव जिसके कोण को बाण बनाकर क्षण भर में ही
 अजेय त्रिभुवन को जीत लेते हैं और जिसका कोमल प्रयास मुक्ती का चित्त
 हर लेता है, वही हरिणाक्षियों का नेत्र कटाक्ष हमारे शृंगार-मुख को बढ़ावे ।

इसने अतिरिक्त इस भाण में और भी शृंगार-परक मनोहारिणी गेय
 पदावलियाँ मिलती हैं । नायक को के मोदय को निरख कर मुग्व हो जाता है
 वह कहता है—

विद्युल्लतेन नवविद्रुममल्लिकेव.....^३

१- शृङ्गारसर्वस्व, २१

२- शृङ्गारसर्वस्व, ४

३- शृङ्गारसर्वस्व, २६

चपला की लता के समान, नवविद्रुमवल्ली-सरीखी चाँदनी के समान, रत्नों में निर्मित वृजिम पुतली के समान, कामदेव की माया के महरा, और यह लक्ष्मी-देव के समान कौन गौरवर्या लावण्यमयी नारी मेरे धन्य पुण्यो के परिणामस्वरूप मेरे समक्ष उपस्थित हो गई है।”

नारी के विभिन्न मञ्जों के वैशिष्ट्य-प्रदर्शन के लिये कवि द्वारा प्रयुक्त उपमानों का विशेष पृथक् महत्त्व है। उपमानों की इस माला का उपयोग केवल लक्ष्मी की शोभा-वृद्धि के लिए तो किया ही गया है साथ ही उनके सहारे नाव ने नैतिक दोषों के उपरिणामों की ओर भी रसिकों का ध्यान आकृष्ट किया है।

जैसे—

धनयनिवर भग्न बालेन्दु नर्तन-मुन्दर,
रत्नगणने पात्रे रूखा वदन-पहण यथ ।
परिरिज नवा माला बाला म बाणविन्दोचना—
मयमभि - पतन्त्रुद्धो बलादनु - शर्पति ॥^१

त्र्यम्बकी पात्र में द्वितीया के चन्द्रमह्य मुन्दर भग्न बनार रोते हुए, उठु बचन बोलता, वह क्रुद्ध पुरण गिरता-बढ़ता उस रोती हुई बाला के साथ ऐसी खीचा-तानी कर रहा है मानो कोई बन्दर नई माला को तोड़-मरोड़ रहा हो।”

प्रावणकोर के कार्तिक तिरुनाल रामवर्मा महाराज धर्मराज लोकप्रिय शासक थे। उन्होंने १७५८ ईस्वी से १७६८ ईस्वी तक राज्य किया। उनके राज्य में विद्वानों एवं कलाकारों को यथोचित सम्मान प्राप्त था। कुछ नाम ये हैं —

- (१) बालमार्तण्डविजय नाटक के कर्त्ता देवराज सूरि।
- (२) बानरामवर्मयज्ञोभूषण ने लेखन, सदाशिव दोसित।
- (३) चलवार-बोम्बुम के रचयिता, कल्याण मुबहाण्य।

- (४) वसुधाभी-कल्याण के प्रयोग और अन्वयशीलता के वरान वेष्ट सुवर्णम् ।
- (५) पद्मनाभविजय काव्य के वरिष्ठतम् सुवर्णम् शान्ति ।
- (६) वैद्यनाथ इन्द्रविजयम् नारायणम् नमः ।

इन सभा-रत्नों में उनके ही भतीजे कवि अश्वतिराम वनों भी थे । उनका जन्म १७५६ ईस्वी में रामवर्मा कोहल लम्पुरान के महा हुमा । उन्होंने श्री शारदाराम से शास्त्री का अध्ययन किया । इसके अतिरिक्त संगीत एवं अन्य कलित कलाओं में भी पटुता प्राप्त की । १७८४ ई० में वह महाराज के साथ रामेश्वर भी गये । राजकुमार भकाविराम तिरुनाल रवि वर्मा की मृत्यु के उपरांत १७८६ ई० में महाराज के भाई युवराज हुए । साठ वर्ष के बाद १७८६ ई. में वह भी स्वर्ग तिथार गये ।

शृङ्गार-सुधाकर

अश्वति तिरुनाल ने सत्कृत एवं मत्तयान् काव्य में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । निम्नातिन रचनाएँ उनकी विद्या का निष्ठ करती हैं । इनमें एक भाग रत्न भी है । यथा—

वाचि महाराज स्तव (करने वाला धर्मराज की प्रशंसा में रचित)
 पागानीरविजय प्रवन्ध, दन्तावगोशमप्रवन्ध आदि चम्पू काव्य तथा हविमली-
 परिराम नाटक एवं शृङ्गारसुधाकर भाग, पद्मनाभ कीर्तन (श्री पद्मनाभ स्तोत्र), दशावतार-दण्डनक और नरकामुखध, पूतनामोक्ष, हविमली-
 स्वयंवरम्, पौष्टिक-वधम्, और अन्वयशीलवर्णनम् (आदि मत्तयानम कृतियाँ) ।
 इनमें से पद्मनाभकीर्तन को छोड़कर शायः सब ग्रन्थ सुन्दर भाव तथा काव्य-
 शौण्य को दृष्टि में रख कर किये गये हैं ।

लक्षण-शालों में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार रचे गए शृङ्गारसुधाकर भाग में भी चिट्टा शास्त्राभाषिण द्वारा घटताओं के चित्र प्रस्तुत करता

है। वेश्या की प्रणय-व्यापकता का विषय है और अनी है शृंगाररस। इसमें वीररस का आभास नहीं मिलता। इसमें अनिरिक्त चतुर्भाषी के भाषों तथा इस प्रकार की अन्य कृतियाँ में भी वीररस लुप्त प्राय है। वीर रस के साक्षात् दर्शन दायद ही किसी भाषा में होते हैं। यह रस तो तन्त्राण^१ की ही वस्तु रह गया है। हाँ, शृंगार के पोषक के रूप में हास्य-रस का आस्वादन करने का जवसर यत्र-तत्र अवश्य मिलता है। वेश्या की माता के भय से बचने के लिये भागते हुए बाह्याण पुरोहित को देख कर दर्शकी की हँसी फूट पड़ती है।^२

ताम्ररसश्रुमुस इत्यादि में वेश्या-रमण करने वाले श्रोत्रिया पर गहरा व्यंग्य भी है।

भा भा धानिदनम्बविर। कुत प्रागम्बने। किं ब्रवीषि—'वेश-वीध्या इति... ३

भाद्र व या जाने में उत्पन्न विद्या ग्या भयावह वानावरण इनके मुख्य रस में गायक नहीं जनता।

तान्तातन्त्रनन्तुली नारक मम्भमेण,

१. दाहिनीना कलाप ॥

२. कम्पने न्वच्छनारवच्छनादुत्पुच्छमातोऽ च्छभल्लभलो

मदमिनुननाच्छनि। वयमपि पनादानह।^४

—हाँ दीच दीच में इन प्रकार के रस का प्रभाव किया जाता है वहाँ इनकी छूट वषाणा का प्रभाव प्रतीत होता है। इसका वाक्य बहुत सुन्दर है और यह नहीं उनके श्रुत दण्डन गति व दृष्टांत भी उपलब्ध होते हैं।—

व्याप्तिमयातनमह-प्रवरान्बुधर्व-

निर्गोपरोक्तिमिरोत्तर-पञ्चपत्तिम्।

म-नन्तु दिनमाणिद्रुतशातकुम्भ

मन्तान्तिरमि पूर्वमहीवरस्य।^५

१- सुदन्तवार-शृङ्गारी जीवे-सौभाग्य मन्त्रव । दण्डपक.

२- शृङ्गारमुद्रावर, २०

३- शृङ्गारमुद्रावर २१, पृ० ८

४- शृङ्गारमुद्रावर ६५, पृ० १६

५- शृङ्गारमुद्रावर ११, पृ० ४

हैं — वासुदेव (चम्पू), विप्रसदेश श्री रामचरित पुराण नाट्य, श्रीराम वर्मा, श्री रामपट्टाभिषेक नाटक, अन्यापदेश और सूर्योदय आदि ।

कोचुण्णि भूपालक के शृंगारप्रधान अनगजीवन भाण में भी भाण-रूपक के सब लक्षण ललित होते हैं । इसमें शृंगारशेखर नामक विट मन्त्र पर याकर अपने कार्यों का विवरण प्रस्तुत करता है । उसके सामने अपने मित्र राजा भद्रसेन तथा ध्यानन्दवल्ली नामक बेरया को मिलाने की समस्या है । ये दोनों एक दूसरे के प्रति आसक्त हैं । हमें यहाँ कामज्वर से पीड़ित राजा के दर्शन होते हैं । इसमें समोग एव विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृंगार का आभास मिलता है । इसका विषय लौकिक होने के कारण राजा के प्रणय-व्यापार की पूर्ति में कोई वस्तु बाधक नहीं बनती । मुख्य रस का अन्वय न करते हुए कवि ने कहीं-कहीं हास्य रस की धारा भी प्रवाहित की है । “किं वदसि ? भद्रमेनो राजाऽत्र महोत्सव-दर्शनार्थमागमिष्यतीति लोकाद, पुरा मया श्रुत ।.... .(स्वगतम्) हाधिक् । हाधिर् । पुरा धनेन राजा ध्यानन्द वल्लीदत्तानजातकामज्वरपीडितेन संगे । मद्रागचिकित्सक खलु भयानिक ।”

एक वृद्ध बेरया मनोरम की पूर्ति के हेतु विट को अपने घर ले जाती है । यह स्थल हास्य के सजन में सहायक बनता है । इस प्रकार के और भी वणन प्राप्त होते हैं । वृद्धा बेरया के कुल्लु प्रेमी का चित्र भी बड़ा रोचक है ।

“अपि कुशलं स्वत्प्रियामा धनरञ्जिन्या ।

किं वदसि । सा बाधक्येन . त्यक्तप्रायेति ।

• • • • •

अये इय कामलोला वृद्धा तरुणीव तस्मिन्जनमाश्रयंवितु भ्रमति
मार्गेषु ।”

इसके अनिरिक्त दोषहर का वर्णन बड़ा ही मशीव है । प्रभात तथा संध्याकालीन मुद्रमा भी देखने ही बनती है—

“... अये चण्डानुक्षुण्डतर सवृत । तयाहि ।.....”^२

१- अनगजीवन पृ० ७

२- अनगजीवन २८-४६, पृ० २०.

मधुर संगीत के प्रसंग में बिट के मुख से कवि ने गीतों के अभ्यास से श्रान्त एक हृन्त वारवनिताओं का स्वाभाविक चित्रण करवाया है जो वृक्ष सेवन से बकी-हारी शकुन्तला के दशन में मिलता जुलता है ।

(श्रवणानन्द नाटयन्) अद्य हि संगीतसरणि—

ईपलक्षितदन्तकुन्दमुबुला द्रागुन्नत पाश्चत

• त्रिभिन्मीलितधारतोचनपुग ध्यालोतनीलासकम् ।

नासाभूपणरन्ध्रनतनरता मुग्ध मुख त्रिभ्रती

शायन्ती मधुस्वर विरचयन्वेपानिनोप मम ॥

• • • • •

(प्ररागम् ।) सखि संगीतसरणि ! परिधान्तामि गानेन । तथाहि—

अनि श्रानितमायत त्रिलुङ्गितालक धानन

वितुष्ट - मनिरन्ध्रने तितारमद्य धर्माभ्रुभिः ।

समुन्नत - पयोधरद्वयमिद च मुक्ताफल -

प्रभधमपय - कर्ण मुननु । भूषित लक्षदे ॥

तुलना कीजिय —

सस्तासावनिमाश्रलोहित-तली बाहू घटोरक्षेपणा —

दद्यापि स्तनदेषभु जनयति श्राग प्रसाणाधिक ।

वद कर्णगिरीपरोषि वदने धर्माभ्रसा जालक

वन्दे त्रिसिनि चैवदस्तयमिता पर्याकुता मूषेजा ॥^१

इस भारण के वतिपय दावों को पढ़कर मृच्छकटिक के शकार का स्मरण हो आता है ।

हृन्नेय रात्ररामहादरी राममिव मामेवाभिपतति ॥^२

अन्त में सव्या समय का बरुण करता हुआ बिट अपने अभिनय का अन्त करता है । नुन्दरी आनन्दवल्ली से मिलन होने पर राजा उसका लावण्य निहार कर ठगा-सा रह जाता है । इस नुन्दरी के दर्शनार्थ सहस्र नेत्र भी बम होते हैं ।

१- अधिशानकाकुन्दन घट्ट १, १७.

२- धनग्रीव ५० १५

राजन् । अथ सध्याममथ सम्प्राप्त । तथाहि -
 भाम्न-मण्डल - चक्रमेघ भगवानुद्यम्य नारायणो
 व्योम्नायस्त्रुतिनाअनोत्तरचिह्वान्नापुगणा गणम् ।
 सहित्याधु तदीयद्याहिन वगामउगादपुड पृन
 रिक्वा धागविनु निमज्जयति तत् पूरय्य वाराविने ॥^१

अनपत्तिनय के बाद भी अनेक गणपत्यारा न भाग्यपरम्परा की आगे बढ़ाया, यद्यपि पूर्वोक्तिविराज एक नट नाटका की तानिदा में संकेतित मय के मय भाण उपनय नहीं है तथापि हम्मलिविराज पोटिया की यणन,त्मक नाममाता में इनका जो खडिताज प्राप्त होने है, उनके पन्थीलन में इनके प्रणेताओं एवं उनको लेखन-शैली का बहुत कुछ ज्ञान होता है। यहाँ उन पर एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा।

मदनसञ्जीवन

१८ वीं शताब्दी में मराठा सम्राट तुळोजी के मंत्री घनस्याम एफ, अद्भुत पत्रिभासम्पन्न व्यक्ति हुए। इन्होंने बहुत थोड़ी अवस्था में पर्याप्त ज्ञानाजन कर सम्पूत-साहित्य का १०१ रचनाएँ प्रदान की। अन्य एक अन्य काव्य के क्षेत्र में उनका समान अधिकार था। इनके प्रेक्ष-राय्यो में एक ध्यायोग, मदनसञ्जीवन भाण, उमरु प्रहसन आदि रचनाओं का उत्कृष्ट मिलता है। इनका मदनसञ्जीवन भाण रसिकों का मन प्रणत करने वाला है। इसमें कवि का जीवन पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। इसी सय भी ज्ञान होना है कि इनका "चम्पु काव्य" की अच्छी स्थिति थी। यथा-

(गुनपद्य) कि मुद्राण्डनाम्नश्चम्पु वाक्पस्य प्रणेता

घनस्याम कवि ।

महाराष्ट्रारायण का "रसिकामृतभाण" तिरुवैया उत्सव के अवसर पर रचा गया था। ये त्रिभी गोद ती गई पुत्रि में उत्पन्न हुए थे और ग्यारहवें वर्ष में कविताएँ रचने लगे थे। प्रस्तावना में इनका परिचय मिलता है।

‘सूत्रधार सकल शास्त्रगारीण श्वरनारायण कवि वदाचिदपि
भवत यवसो आयात ।’^१

कोचीन राज्य के महिष मगल ने अपने ही नामाक्षरो से युक्त भाण रचा । कवि ने अपना नामोल्लेख नहीं किया है परन्तु इस भाण की अन्तिम पक्तियाँ से सूचित होता है कि इसकी रचना काचीन के राजा राजवर्मन् की प्राज्ञा से हुई । इस भाण से यह सूचना भी मिलती है कि हमारे कवि कामाक्षी के भक्त थे । इसके अनिरिक्त इस भाण में उल्लिखित इस वाक्य से — “ श्री नीलवण्ठान्नेवामिन्ना लिखिनमनद् भाराम् ” कवि के नीलवण्ठ के सहपाठी होने का ज्ञान होता है । महिष मगल के नान्दी-श्लोक में स्थित भाव भट्ट-नारायण के वेणीसहर में अविग राजाचरण-भुगव की स्तुति से मिलते-जुलते हैं ।

केलीपोपदत्तानु तन्वाति नत्ति चन्द्रार्थपृथमणी
प्रीडाचन्द्रकमानुपङ्गवसया यद्वृषते कोमराम् ।
यद् वा पर्वस-वासरामुरधिरो निषेपणे निदय ।
पायाद् वस्तादिद गिरीन्द्रदुहितु पादारविन्दद्वयम् ।^२

तुराना कीजिये —

कालिन्द्या पुलिनेषु केलिबुपितामुत्सृज्य राते रम
गच्छन्मीमनुगच्छतोऽश्रुतलुषा वसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशित - पदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुण्णोऽश्रुतम प्रसन्नदयिता दृष्टम्य गुण्यातु व ॥^३

श्रीवण्ठ का मदनमहोत्सव भाण भगवान् विरिन्दवर के कल्याण—महोत्सव के अवसर पर अग, अग, कलिंग एव वाश्मीर जैसे भारत के सुदूर राज्यों में पधारे हुए अतिथियों के प्रीत्यर्थ “वातव्याघ्रपुरी” में राजाज्ञा से लेना गया था । प्रस्तावना में कवि का जीवन-वृत्त संक्षेप में चित्रित है । कवि

१— सूत्रधार : रचितानुमात्र

२— महिषमगल भाण

३— वेणीसहर अष्ट १ पृ० २.

ने अपनी कृति प्रस्तुत करने समय महाकवि कालिदास के सदृश विनम्रता प्रदर्शित की है —

काह मदमनीष क नु वा मरमोक्ति समितो भाण ।

वागीश्वरीविनासो वमुधाया केन वणितु शक्य ॥^१

तुलना कीजिये —

क सूपश्रवो वद कथाल्पविषया मनि २

मदनमहोत्सव के प्रणेता श्रीरूढ आनय गोन के गामाचाय के पुत्र थे और परमेश्वराध्यारिन नामक विद्वान् के गिष्य । रसिकों के चिन्तानुरन्धनाथ श्रीनिवासाचाय के पुत्र रमनाथ ने 'अनगति-कभाण' का प्रणयन किया । यह छेपनाग पर छायन करने वाल श्री रमनाथ के चैत्रात्मक यात्रा के^३ प्रसंग पर अभिनीत किया गया था । गोविन्देश्वर का गोपादनीनावण्य भाण अत्रकाशित है । इसमें कवि अपने को रगाचाय और मरसूती का पुत्र बतलाते हैं । इनका जन्म स्थान एवं बाल अज्ञान है । काशीपुर के वाचपगोत्रीय श्रीरूढ ने एकामरनाथ के वसन्तात्मक के दानाथ उपस्थित अनिविधा के मनोरञ्जन के लिये वदपदपण नामक एतपानीय रूपक रचा । परन्तु अब तब प्रकाशित नहीं हो सका है ।

रसोल्लास

श्रीनिवास वेदान्ताचाय के पुत्र और वाचपगोत्रीय वृषगुरु के पौत्र थे । इनके नाना हरिोनीन रामानुज के बगल भक्तानिहृत थे । श्रीनिवास वेदान्ताचाय के रसोल्लास में कामशेखर एवं मुस्तावरी की प्रेम-कथा वर्णित है । यह कवि अत्रकाशित है । इसकी प्रस्तावना से प्रिदित होता है कि इसका अभिनय स्थल भूतपुरी था ।

१ मदमहोत्सव

२- रघुवध मय - १

३- (नाचते) सूत्रान्तरं साङ्गतरङ्गान्तरं विरचितं वाचपगोत्रीयं रङ्गतरङ्गान्तरं रङ्गतरङ्गान्तरं । (मन्त्राचार्यमोक्ष सारिपोषण) अतो अनिमग्नमनारण्यम् । अणिनी वनुमन्त्रमन्त्रमुद्राण्यमुद्राणिप्रदं, कुरुकुलरूपिण, विष्णुपुत्रादिभ्यः, अन्तराङ्गम्, श्रीरामायणस्य अष्टौ पद्यज्ञा प्रसयेन अनवतिनः

कालीकेलियात्रा

एक अज्ञाननामा कवि के कालीकेलियात्राभाण का नाम भी मिलता है जो कोटिलिंग में छोटे युवराज की आज्ञा से भद्रकाली के सम्मान में रखा गया था। इस भाण के नायाय में ही काली के^१ उत्पन्न की कथा द्विती हुई है। धनगुरुवय कौशिक गात्र के वरदगुरु से पुत्र थे। ये भाण्य सग्रह, साराय्य सग्रह आदि ग्रन्थों के प्रणेता और वन्द्यविजय भाण के कर्त्ता भी थे। श्रीराम के प्रभु रंगनाथ के डोलोत्सव में इसका अभिनय हुआ था।

रसरत्नाकर

नारायण के पुत्र जयन्त ने रसरत्नाकर भाण का प्रणयन किया। यह राजा वाचीभूपात्^२ की आज्ञा से श्रावणपुर में अभिनीत हुआ था। इसके अतिरिक्त शृंगारविलासभाण का नाम भी मिलता है। इसके रचयिता शम्भुशिव, श्रीवत्सगोत्रोद्भूत बनवसभापति के ज्येष्ठ पुत्र थे। इस भाण के लेखक गोपालसमुद्रम् नामक गाँव में रहा करते थे। ये भरद्वाजगोनसम्भव अपादुधारण के पुत्र स्वामिशाली के सुपुत्र थे। मानपित्रमहाराज की सभा के सामाजिकों के प्रीत्यर्थ इसका अभिनय हुआ था।

कतिपय शीपकहीन भाणों में से एक भाण के खण्डितारा को देखने से केरल के राजा रामवर्मा के नाम का पता चलता है।^३ इसी प्रकार की

१- तयापीदमस्तु -

धीकोटिपिद्वानिमये सतत तस्यैव धीकष्टदेवदुहिता परिपातु लोकान् ।

शीपीकते च तुसितामृतसारवेणी वागी विरामस्तु विराम मृदुकोनाम् ॥

कालीकेलियात्रा

२- किं किं नैतद् नेतुं द्रव्यम् पश्य . .

वाचीशरत् प्रणयान्त . राजज्जलेन । रसरत्नाकर.

३- किञ्च-शारत्तच्छन्दुमौलि अवतिपिरिमुता यावदास्ते मुरारे.

वज्रस्यशीपहारेवदुमणिशब्दे देवता भङ्गलानाम् ।

शारद्वक्ते (च) मैत्रीपुनरपति मिरामोश्वरी पद्मयौते:

तापन्तदभोप्रभूति स्वयमस्तु मुव रामवर्मानन्दे .

एक अज्ञात कृति में राजा रविवर्मा का उल्लेख मिलता है ।

भारणों के अन्तर्दर्शन एवं दान्त्रसम्मत लक्षणों के मनन के आधार पर सक्षेप में इसके ये लक्षण मिलते हैं ।

(क) यह श्रकृत्या वर्णनात्मक होता था ।

(ख) प्रायः इस प्रकार की रचना आदि में अन्त तक संस्कृतमय हुमा करती थी ।

(ग) स्वरूप में यह एकपात्रीय रूपक होता था ।

(घ) इसकी क्या-वस्तु कविकल्पित एवं धर्मनिरपेक्ष हुमा करती थी ।

भारण साहित्य के सम्यग्बलोजन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि शृंगारसाहित्य पर वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ चुका था । वाजसनेयी संहिता आदि प्राचीन ग्रन्थों में वेश्याकर्म के जो संकेत मिलते हैं वे भानो भारण में साराार दिखाई देते हैं । नाट्यशास्त्र में भी विटों की ठीक ठीक ध्याया नहीं हो पाई है । विट एवं वेशवधुमों के जीवन पर भारण साहित्य के अध्ययन से बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है । यथा—वेश में प्रचलित महूपीनि (स्त्री के साथ झराव पीने की प्रथा) तथा वेश-समाज की पद्धति की ओर बतियय भारण एवं वेश-सम्बन्धी काव्यों में मवेत बिया गया है । भोग विलासिता के कारण नियन्त्रण का उल्लेख भी एकनट नाटकों में है । बहुत से कामी दूसरे के साथ विलास में रत कामिनी को छोड़ बूढ़े विटों के सामने किसी गणिका को पराजित कर उससे दुगुना पैसा वसूल बिया करते थे । कृट्टिनीमत^१ में बटोरत्रिया का उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार अपने प्रति अन्धाय देख कर कोई भी विट मण्डप में पहुँच कर विट महत्तरो (वृद्ध विटों) को एवज करके अन्धाय का फैसला करवाता था । पादताडितक

१- विजयविजयस्य कन्येयस्यदुःखमुच्यते मदिरा

सकरोष पतिरोषा मदुणित-मदनमेनयावता ॥ कृट्टिनीमत - पृ० ३१०

उपितामापरेण समं वृद्धविटानां गुरुं वरावित्य ।

पुनरपिपित्तं भुज्ज्यं वसिष्ठदण्डिका द्विगुणभाट्या ॥ कृट्टिनीमत पृ० ७६

दशात्मजा मुन्दरि योमतारा
कि नैक जाता शशिनमवन्ते ।
आगहने वै महकारवृक्ष
कि नैकमनेन लताद्वयन ॥^१

पद्मप्रानुनक न मृगद्वय जब अपनी एक प्रेमिका की ओर दूसरी के पास जाने की बात कहता है तो उसकी पत्नी प्रयत्नी उसे इसी दूट बचती के आहाव्य में दाना के साथ निर्वाह करने की सलाह देती है। इसके अनिश्चित भावों में इसी तारोविनयी भी मिलती है जो वेदवाद्या में मन्त्रों रखने वाले कामुका एवं वारवनिनामा के जीवन का मार प्रोट करती है।

- (१) गोपालकुल तद्विन्द त्रियने ।
- (२) न दीपनाग्निमागता त्रियने ।
- (३) मदनीय सनु पुराण मधु ।
- (४) मृतमपि पुरुष मजीवयेद्वेद्यामुख-रन ।
- (५) शिरोवदता नाम शक्तिराजनस्य लक्ष व्याधि शीतसम् ।
- (६) सहितमिदं तप्त तपेन ।
- (७) मुननमं मुमतेन भाक्षोत्सो ।
- (८) पिता नाम खलु न शोचनस्य पुण्यस्य मृतिमान् शिरोरोग ।
- (९) लघुपुत्रोऽपि जनवान् मदनव्याधि
- (१०) घायल विषयाम्बिपिता नाम देहभाषामन्धकद्वयी काजन पिताविरा
- (११) नखनु शरीरान्तरनन्तरेण दयमा तादृशत्वं सम्भवति ।
- (१२) मित्रे पुनर्विचेष्टन्ते विपरीत हि योयिन ।

उत्तरदानीन भावों का बधानक, लेखनशैली, दारुण-प्रसार विलुप्त मिलते जुलते हैं। चतुर्मासों की शैली इनमें भिन्न है। याये चल कर भ्रष्ट शृंगार का बहाना भी भावों में होन लगा। इन मौलिकता के यभाव को देख कर प्रेक्षक एवं पाठक इनमें ऊब उठे और इनका प्रचार नानान्तर में कम होने

लगा । फिर भी भारत साहित्य की दीर्घाएँ एकदम सूनी नहीं रही । सन् १९३८ ई. में कुम्भकोणम् के सुदर्शन शर्मा ने शृंगारसेखर एवं सन् १९५१ ई. में बाइ. महानिगशास्त्री ने "मकटमदलिवा" नामक भारत रच कर इस परम्परा को २०वीं शताब्दी में भी जीवित रक्खा है ।

कीर्ति के शब्दों में यह कहना उचित होगा कि 'भले ही भारत और प्रहसन नामक आधुनिक नाटकीय दृष्टि में उचित न हों, परन्तु शिल्प एवं सज्जा की दृष्टि से उनका धनना महत्व है ।' विशेष कर भारत के काय सकल-युग में जब एकाग्रियों में भी एक पात्रीय रूपका का प्रचार विश्व-साहित्य में बढ़ रहा है । इसका अनुसरण वर्तमान चित्रपटा में भी किया जा रहा है । भारत में जो लोग इस प्रकार के प्रयोगों को अपनी मौलिकता समझते हैं उनके धर्म को दूर करने में प्राचीन भारत-परम्परा समर्थ है, इसमें सन्देह नहीं ।



तृतीय अध्याय

प्रहसन

“प्रहसन” इस शब्द से ही हास्य के भाव की सूचना मिलती है। हस् धातु में घञ् एव ण्यत् प्रत्यय के योग से क्रमशः हास एव हास्य पद बनन है। हास शब्द काव्य-शास्त्रीय भाषा में हास्य रस का स्थायी भाव है जो एक सहज स्थिर प्रवृत्ति है।^१ हमारा विभाव आचार, व्यवहार केन विन्यास, नाम तथा

१- यस्य हास्यो नाम हास स्थायिभावात्मकः । सच्च विकृतपरिप्रेषावकार-
घाट्टे यत्नोन्म-मुहकामरत्ननायक्यङ्गुयदान-दोरादाहरणभिरिविधैरैक्ययने ।

द्विविधश्चायमात्मस्य परस्वस्य । यदा स्वयं हसति*दात्रमस्वः ।

यदा तु पर हासयति तदा परस्वः ।

नाट्यशास्त्र (या आ नी) अध्याय ६ पृ० ३१३.

सुलता कीर्तय —

But laughter, a physiological phenomenon appears earlier in a definite and recognisable form and laughter is atleast closely connected with humour.

Stephen Leacock-Humour and Humanity Page. 19

अप्यं आदि की विकृति है, जिसमें विकृत वेपालकार, घाट्य, चापत्य, कलह, मसत्प्रलाप, व्यग-दर्शन, दोषोदाहरण आदि की गणना की गई है। ओष्ठदर्शन, नासा-कपोलस्पन्दन, दृष्टिसंकोचन, स्वेद, पार्श्वपहण आदि अनुभावों द्वारा इसके अभिनय का निर्देश किया गया है तथा व्यभिचारी भाव आलस्य, अवहित्य, (अपना भाव छिपाना) तन्द्रा, निद्रा, स्वप्न, प्रबोध, असूया (ईर्ष्या) आदि माने गए हैं। सामाजिक हृदय में संस्कार रूप से स्थित हास, स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर आत्मा का विषय बन जाता है, तब उसमें प्राप्ति आनन्द "हास्यरस" कहलाता है।

जीवन को स्थिर रखने के लिये जैसे पङ्कसमिश्रित भोजन अनिवार्य होता है, वैसे ही उसके जीवन की एकनारता अथवा नीरसता के निवारणार्थ हास्य की आवश्यकता होती है। द्विविध (दैहिक और भावात्मक) स्वभाविज हास्य का जो मानवजीवन में महत्वपूर्ण योग होना है, वह बन्धनानी है। दैहिक हास्य शरीर की गुदगुदाने में और भावात्मक अथवा साहित्यिक हास्य विचारविन्यास में प्रकट होता है। शारीरिक गुदगुदी में उत्पन्न हँसी की उत्पत्ति मानसिक गुदगुदी का जिम्मा भारतीयमशा हास्यरस है, दर्जा अलग ऊँचा है। कारण, उसमें बुद्धि का योग होना है। इसका सम्बन्ध हान्यजन्य परिस्थिति के ज्ञान से होना है, जिसमें एक अपूर्व भाव की सृष्टि होती है।

भारतीय रस शास्त्र का प्राचीनतम इतिहास अम्बिपुराण में उल्लेख होता है। इन पुराण के अध्ययन से मालूम होगा कि आरम्भ में शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स, ये चार रस प्रधान थे जिनसे क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक—इन गौण भेदों की उत्पत्ति हुई। कालान्तर में गौण रसमें जाने वाले ये चार रस प्रधान रसों के वर्ग में समा गए। साहित्य-शास्त्र के समीक्षात्मक-ग्रन्थों में रसों की संख्या पर पर्याप्त विवादमूलक विवरण प्राप्त होते हैं। उनकी आवृत्ति करने से यहाँ कोई विशेष लाभ नहीं। भरताचार्य के अनुसार मूलभूत रस आठ ही माने जाते हैं, जिनके नाम हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। वाच्य में रस की स्थिति बड़ा महत्व रखती है।^१ उक्त आठ रसों में शृंगार को रसरजस्व प्राप्त है। वाच्य

१- न हि रसादौ कस्विदर्थः प्रवर्तत । ना. शा. प्रश्नाव १, पृ० २७२-

शाक्य रसात्मक वाच्यम् । भा. द.

स प्राप्त आनन्द का दूसरा नाम रस होता है।^१ अथ रसों के आधारभूत अनुभव भी हो सकते हैं किंतु हास्य का नैतिक और साहित्यिक अनुभव साक्षात् आनन्द का होता है। मनानुबल अनुभव होने के कारण ही उस शृंगार का मन्ना कहा गया है। भरत ने तो हास्य का शृंगार की अनुकृति कहा है।^२ नाट्य शास्त्र के अनुसार यह चार उपरमा की कोटि में आता है। इसकी उत्पत्ति शृंगार से मानी गई है। हास्य में शृंगार में सम्पन्नता आती है और उसकी प्रीतिवृद्धि होती है। वह शृंगारकी भाँवरण का भी शृंगार है।

अबिन समय तक गभीरवातावरण में रहने से मानव चित्त स्वस्थ नहीं रह सकता। शरीर-विज्ञान में निष्णात चिकित्सानास्त्रियों तथा अनुभव प्राप्त मनोवैज्ञानिकों में भी नीरोग रहने के लिये प्रसन्नचित्त रहना आवश्यक बनलाया है। अमरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक-गार्लो बर्नर मैकफैडन ने अपनी पुस्तक 'वायटैनिटी सुप्रीम' (Vitality Supreme) में हास्य को भी एक प्रकार की चिकित्सा माना है। काव्य-प्रकाश के परिशीलन में काव्य द्वारा मयूरकवि का वृष्ण राग से मुक्ति देने की बात की तो पुष्टि होती ही है। हिन्दी के साहित्य-नेता भी तुलसी पद्माकर जैसे कवियों के कविताकामिनी की सेवा का फलस्वरूप भीषण रागों से छुटकारा पाने की चर्चा सुनने में आती है। इन सब बातों पर विचार करके देखने पर यह कहना ठीक ही लगता है कि साहित्यकार अपने युग के समाज का मनोवैज्ञानिक-चिकित्सक भी होता है। वह जब समाज में दुराचार और कुरीतियों की वृद्धि होने देखता है तब हास्य चिकित्सापद्धति का ही अपनाता है। जिस प्रकार 'गुहजिह्वा ग्याय' के अनुसार शहद-मिश्रित दवा मिलाकर रोगी को रोगमुक्त किया जाता है उसी प्रकार कुशल कवि हास्य के मधुर प्रयोग द्वारा अवगुण दूर करने में सफल होता

१- अथ रसं वरम उनातनमत्र विभुम् ।

वदन्तेषु वदन्त्येकैर्बन्धय ओतिरीश्वरम् ॥

मानसं महत्तस्य व्यग्यते स कदाचन ।

शक्ति मा तस्य चैनयचमकार रसाद्वया । अ पुराण ३३६: १२

२- शृङ्गाराङ्कुरिबस्तु स हास्य इति कथितः ।

मा मा ६ ४०

है। सस्कृत-नाट्य-साहित्य में प्रकरण, भाण एव प्रहसन जैसे सामाजिक रूपको की रचना समाज-कल्याण के उद्देश्य से ही होती थी।

सस्कृत-रूपको में उपलब्ध हास्य के विभिन्न रूपों में एक रूप प्रासंगिक कथावस्तु के रूप में भी मिलता है। तदनुसार प्राचीन बृहन्नाटको में नाटककार अपनी कल्पना-शक्ति से आधिकारिक कथावस्तु की आत्मा के अनुरूप हास्यात्मक प्रासंगिक कथावस्तु की सृष्टि करके उसे आधिकारिक कथानक के अन्तर्गत स्थान देते थे। इस प्रकार के दृश्य-प्रदर्शन का मुख्य लक्ष्य होना या आधिकारिक कथा-भाग के पात्रों को दूर करके उनके प्रति आदि से अन्त तक दगावट का आदर्पण बनाये रखना। यह काय विष्पक से भिन्न पात्रों द्वारा भी सम्पन्न हो सकता था। सस्कृत के अतुल भाषा-भाण्डार की चर्चा करते समय यह कहा जा चुका है कि पहले 'प्रहसन' एव 'वीथी' नाटक की प्रस्तावना के अग्रे जिनका प्रयोजन या प्रेक्षकों का सामान्य मनोरंजन। कात्मानर में इन दोनों ने स्वतन्त्र रूप ग्रहण कर लिया।

रूप-निर्देश

पूरा नाटको में प्रासंगिक कथावस्तु के रूप में हास्ययोजना के अनि-रिक्त सस्कृत-साहित्य में स्वतन्त्र रूप से हास्य-प्रधान एकाही लेखन की प्रणाली देखने में आती है। इस प्रकार का एकाही रूपक "प्रहसन" कहा जाता है जिसके नाट्य-शास्त्रकार भरत ने शुद्ध तथा सवीर्ण^१ ये दो भेद लक्षण-सहित बतलाये हैं। उनके मतानुसार शुद्धप्रहसन में पाखण्डी, सन्यासी, तपस्वी अथवा पुरोहित नायक की योजना होती है। इसमें चेट, चेट्टी, विट आदि निम्न-कोटि के पात्र^२ भी आते हैं। इसका बहुत कुछ प्रभाव देव-भूषा और बोलने के ढंग से ही डाला जाता है। भाषा एव कथानक को आचोत्तम सदानुक्त में होगी लोगों के यथार्थ-जीवन के अनुरूप नियोजित किया जाता है। इनके दूसरे

१- प्रहसनमि विनेय द्विविध शुद्ध तथा च सवीर्णम् । ना हा १८-५० ४४८

२- ना हा १०३-१०६, अष्टाध्या १८ ५० ४४८-४४९

भेद सकीर्ण प्रहसन में वेश्या, चेट, नर्पुसक, विट, घृत, दुराचारिणी के अशिष्ट वेश, भाषा तथा चेष्टाओं का अभिनय प्रदर्शित होता है। इसमें हँसी, दिलगी की बहुत प्रधानता रहती है। नायक घृत होता है। प्रपञ्च, छल, अधिवल, नानिका, असत्प्रताप, ध्वनहार और मृदव आदि बीभ्यगो का व्यवहार अधिस्ता में किया जाता है।

विभिन्न-आचार्यों के मत

भरतमुनि के आधार पर धनञ्जय ने भी प्रहसन का यही लक्षण किया है और दशरत्न म भाष्य से मिलते जुलते इस रूपक के वृत्त एवं सजर नाम में दो भेद और यतनावर आचार्य भरत के द्विविध प्रहसनो के स्थान पर इनके तीन^१ रूप बहे हैं। दशरूपककार के अतिरिक्त विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण में भाष्य^२ में साम्य रखने वाले इस प्रहसनारम्भ एकाकी के तीन भेदों^३ के लक्षण लगभग एक से ही दिये हैं। शारदातनय^४ और सर्वेश्वर के लक्षण-ग्रन्थों में भी त्रिविध प्रहसनो की चर्चा की गई है। भरत के समान नाट्यदर्पण^५ तथा मागरनन्दी^६ ने भी अपने रीति-ग्रन्थों में प्रहसन के दो ही रूप माने हैं। मागरनन्दी ने शुद्ध प्रहसन का उदाहरण अश्विजिलास प्रहसन को और सकीर्ण का भगवदञ्जुवम् को बतलाया है। नाट्यशास्त्रकार के द्विविध प्रहसन और अन्य आचार्यों द्वारा प्रस्तुत इस एक-विशेष के त्रिविध्य पर मूढम दृष्टि से विचार करने पर विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता। आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पण से ज्ञात होता है कि इसके सभी रूप में ही वृत्त प्रहसन

१- दशरूपक ५४-५५, तृतीय प्रकाश पृ० १६०

२- भा ॥ परि ६ २६४-६५, पृ० २६२.

३- साहित्यदर्पण पृष्ठ परिच्छेद, २६६, पृ० २६६.

४- भाष्यम्भाप्रमल तन्त्रिवाचपरिचिन्ने । शारदातनय ।

५- वेमुध्यवार्य जीव्यङ्गिह्यात-बोलीनदम्भवत् ।

हास्याणि भाग सध्वन्द्व वृत्तिप्रमल द्विधा ॥ ना द. २३, पृ० २३०.

६- तर्जुनीव शुद्ध सकीर्णक । याज परित्यापसद्विजैर्यैरपिहास्य-कुशनेराधम् । सकीर्ण वेश्याचिटनभूषवादिभुषित प्रथम अश्विजिलासदि द्वितीय भगवदञ्जुवादि । यस्य च द्वावद्धौ भवत । मुद्यनिर्वृत्त-सही च -मागरनन्दी.

के अर्थ के प्रच्छन्न होने के कारण भरतमुनि ने इसकी पृथक् चर्चा^१ नहीं की ।

शारदानन्द^२ ने भावप्रकाश में प्रहसन की अक-सत्या तथा सधियो का उल्लेख करते हुए इस एकाकी का त्रिजदविवेचन किया है । उनके अनुसार हमने एक ही अक होता है और भुज एव निर्वहण सधियाँ होती हैं । उन्होंने मागरकौमुदी को शुद्ध प्रहसन तथा सैरन्ध्रिका (नौभद्रिक) को सर्कार एव शशिकला को विज्ञान प्रहसन के इष्टान्त-स्वरूप प्रस्तुत किया है । दण्डकार के अनुसार ' वन्दपकेलि ' शुद्ध और ' धूतचरित " सर्कार प्रहसन का उदाहरण हैं ।

उक्त प्राप्ति एव नव्य मता का समाहार करते हुए प्रहसन का लक्षण इन शब्दों में अंकित किया जा सकता है —

- (१) प्रहसन भाण से मिलता जुलता हास्य-प्रधान एकाकी होता है ।
- (२) इसके विषय में प्राचीन एवं अर्वाचीन नाट्यसमीक्षकों में विशेष मतभेद लजित नहीं होता ।
- (३) प्रहसन के रूपविभाजन एवं इसकी अक-सत्या के निर्धारण में प्रश्न पर भी उनमें भिन्नता है । सामान्यतया इसमें एक अक की ही योजना की गई है ।
- (४) हमने सर्कार रूप में दो अकों की सत्ता अथवा एक अक को दो रूपों में विभक्त करने की चर्चा साहित्यशास्त्रों में अवश्य उपलब्ध होनी है ।

१- मुनित्वाह —

इदं तु मर्वाणैर्देवगण्यमिति मुनिना पृथङ्नास्तम् । सा द ६ २६८ पृ० २६४.

२- सैरन्ध्रिका न्यायकीर्णः शुद्ध मागरकौमुदी

कलिकेनि प्रहसन ज्ञानज्ञेतिगोपिम् ॥ भा प्र अष्टम अद्वितार पृ० २४७.

टिप्पणी —

भावप्रकाश में वही-वही सैरन्ध्रिका के स्थान पर सौमद्रिक और कलिकेनिप्रहसन के बड़े शशिकला का पाठ भी मिलता है । इसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि सौमद्रिक सैरन्ध्रिका का और शशिकला 'कलिकेनि' का नामान्तर होना चाहिए ।

इस प्रेक्ष्य काव्य के नाम से ही इसमें हास्य की प्रधानता सूचित होती है। फिर चाहे वह प्रहसन आगत-भाषा में निबद्ध हो या विश्व के और किसी साहित्य में।

भरताचार्य^१ तथा प्राचीन नाट्यकला-कोविदों का अनुसरण करते हुए पंडितराज जगन्नाथ ने भी रस-गंगाधर में हास्य पर अपने विचार विस्तार में व्यक्त किये हैं। तदनुसार, हास्यरस दो प्रकार का होता है—पहला आत्मरस और दूसरा पररस^२। आत्मरस विभाव (हास्य के विषय) के दर्शनमात्र से उत्पन्न हो जाता है वह आत्मरस और जो दूसरा को हँसता हुआ देखने में पड़ता है तथा जिसका विभाव भी हास्य ही होता है अर्थात् जो दूसरों के हँसने के कारण ही होता है, उसे रस के पारसी पररस हास्य कहते हैं। यह उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार के व्यक्तियों में उत्पन्न होता है, अतः इसकी तीन अवस्थाएँ होती हैं एवं उनके और भी छ भेद होते हैं यथा— उत्तम पुरुष में स्मित और हसित, तथा मध्यम पुरुष में विहसित और उपहसित एवं नीच पुरुष में अपहसित तथा प्रतिहसित होते हैं।

भावप्रकाश में स्पष्ट है कि इनका सर्वाधिक प्रयोग प्रहसनों में ही करने का अवसर मिलता है—“हास्यस्तु भ्रममा कार्यं पदप्रकारैस्तत्तन्मतम्। इच्छते अतिरिक्तं अन्यं साहित्यं भीमास्तकी ने भी इस रस विशेष के भेदोपभेदों का निरूपण किया है।^३

१- ना ना-गौ गो गो सी सम्बरण अध्याय ६ ५१-५३, ५० ३१४ १५

२- आत्मरस पररसविषयस्य वेदद्वय मतम्।

आत्मरसो द्रष्टुं दराजो विभावोपमात्रम् ॥

• • • • •

स्मितं च हसितं प्रीतमुत्तमपुरुषे नृपे ।

अवेद्विहसितं उपहसितं मध्यमे नरे ॥ रसगंगाधर.

३- स्मितं च हसितं चैव विहसितं उपहसितम् ।

अवेद्विहसितं चाप्रतिहसितं चवेत् ।

अहमावशिष्टं हास्येव बहुविधमुच्यते ॥

अनङ्गद.

इन प्रसंगों में इतना स्पष्ट है कि भारतीय रसिक-समुदाय शिष्ट एवं अशिष्ट हास्य के पात्रवय में भली प्रकार परिचित था। हास्य-साहित्य के प्रणयनकाल में जरा-सी असावधानी से कोई मुँदर काव्य-कृति अश्लीलता का रूप धारण कर लेती है। इस सूक्ष्म रहस्य को भी भारतीय साहित्याचार्य समझते थे। हाम्य प्रधान कृतियों में प्रयोक्तव्य पात्रों का वय भी निश्चित था जिसका मकलन जगद्धर ने अपनी रचना में किया है। यथा —

क्रीनीचवालमूर्खादि विषयो हास्य इष्यते ।
प्रहासश्चातिहासश्च धीराणा नैव दृश्यते ॥

रसों की भीमात्मा के प्रसंग में भरतमुनि शृंगार से हास्य की सृष्टि मानते हैं।^१ गारदातनय के अनुसार हास्य चित्त का विकास है जो प्रीति का विशेष रूप है।^२ वह रजोगुण के अभाव और सत्वगुण के आविर्भाव से हास्य की सम्भावना घोषित करते हैं।^३ निस्मदेह प्रिय चित्तानुरञ्जक होने के कारण हाम्य या शृंगार से निकटतम सम्बन्ध है। किन्तु इसका क्षेत्र सकुचित नहीं है। इसके विस्तृत सीमा क्षेत्र को देख कर इसे केवल शृंगार में ही सीमित करना उचित नहीं। हास्य के विभागों के मूल में अनौचित्य ही एक कारण है और यह प्रायः सब रसों के विभाव अनुभाव आदि में हो सकता है। अनौचित्यमूलक रसपरिपोषण में सबत्र हाम्य उत्पन्न हो सकता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में इस तथ्य की ओर संकेत किया है।^४ उन्होंने सब रसों के आभास (रसभास) से हास्य की उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार मरण बीभत्स आदि रसों में भी विशेषपरि-स्थिति में हास्य की सृष्टि हो सकती है —

१- शृङ्गारादि भवेद्भास्यो रोगोक्त्य कुरुको रस ॥ ना भा अध्याय ६ ३ पृ० २ ५

२- प्रीतिविशेष चित्तस्य विकासो हास्य उच्यते । भावप्रकाश

३- स शृङ्गार इतीदृश

तस्मिन् रजोहीनवाद् हास्य सम्भव । भावप्रकाश

४- अनौचित्यप्रवृत्तिरुचयेव हि हास्य विभावः ।

सर्वपुष्पाय्य व्युत्पत्तिः । ना भा अध्याय ६ पृ० २१६

तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्वं सर्वेषु मतव्यम् ।”

भरत ने कहा है कि दूसरों की चेष्टाओं के अनुकरण^१ से “हास” उत्पन्न होता है जो स्मित हास एवं अनिहसित के द्वारा अभिव्यक्त होता है। भरत के त्रिविध हास को हास्य के स्थानी भाव ‘हास’ से भिन्न समझना चाहिये। नाट्य की ही दमरे शब्दों में अनुकरण कहते हैं और हँसी की जड़ है अनुकरण। भरत के इस कथन में हास्यप्रधान अभिनेय काव्य में नाटकों के प्रारम्भ होने की बात भी पुष्ट होती है। हास्य-युक्त अनुकृति अभिनय द्वारा अनुचाय और अनुकर्ता की एवता प्रदर्शित करने से पूरा होती है तथा सुखारम्भ होने के कारण लोकप्रिय भी। हमारे आचार्यों ने चार प्रकार के अभिनय बतलाये हैं—भाविक वाचिक आहाय (वरा-भूषा धारण करके) और सात्विक (सात्विक भावा का प्रदर्शन करने वाला)। हास्य इस चतुर्विध अभिनय में शामिल है।^२ भाविक अभिनय नवल के सिद्धांतों पर ही अवलम्बित है। वाचिक के अन्तर्गत वाग्वैशद्य इत्यादि, तथा आहाय में रहन सहन की प्रसम्बद्धता सम्मिलित है। अथर्व तथा विषयों द्वारा हास्य का उद्बेक किया जाता है। अनुकरण के द्वारा लौकिक वस्तु भी अलौकिक बन जाती है। वह साधारण लोक की परिधि से निकल कर कला का रूप धारण कर लेती है। इस नकल के कारण दोष भी आचर्यक बन जाता है।

त्रिष्ट विदूषकादि अपनी हँसने-हँसाने की कला में दक्ष होते थे और जनता का मन बहलाने के साथ-साथ वेशवनिताओं को कामतन्त्र कला की शिक्षा भी दे सकते थे। विदूषक की लाल झाली तथा लम्बे दाँवों आदि के द्वारा हँसी के भूल में प्रसिद्ध वाश्चात्य मनोवैज्ञानिक हास का सिद्धांत है—

“The passion of laughter is nothing else but sudden glory arising from sudden conception of

१- परचेष्टानुकरणान्तरान् अनुकरणम्।

स्मितहासानिहसितैरभिनेयः स पण्डितः ॥ ना. शा. ८, १० पृष्ठ ३२१

२- अवेदभ्यगाजस्य कुर स चतुर्विधः ।

भाविक वाचिकवैशद्यवाह्य सात्विक च ॥ ८. ८ ६, २, पृष्ठ २७२

some eminency in ourselves by comparing with the infirmity of other or with our own formerly.... .”

भारतीय आचार्यों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने भी हास्य के तत्वों की विदग्ध व्याख्या की है और उसके सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त निश्चित किये हैं। सत्रहवीं शताब्दी में “हास” के अनायास उत्कर्ष का विशेष महत्व रहा है। शरीर-विज्ञानवेत्ता अतिशय शक्ति के उद्रेक को ही हास का कारण मानते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के विख्यात मनोवैज्ञानिक स्पेन्सर ने असंगति के निगोत्रण को ही हास का कारण बतनाया है। हमका एक कारण विषय भी माना जाता रहा है। हममें परिस्थितियाँ विपरीत होती हैं। बच्चों को अपने बृद्ध गुरुजनों को पढ़ाते देख अनायास ही हँसी आ जाती है।

विकासवादियों का मत इससे कुछ भिन्न है। वे हास्य को हृष्य का व्यक्त रूप बतलाते हैं। आधुनिक आसीसी दार्शनिक बर्गसन का हास्य सिद्धान्त “आवृत्ति और विपर्यय” पर आधारित है। ये हास्य नामक मानवीय प्रवृत्ति की गति सम्पूर्ण जीवन में मानते हैं। अतएव जीवन के विकास के साथ ही हास्य के क्षेत्र में भी विकास हुआ है। इस प्रकार हास्य की उत्पत्ति के मूल कारण के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद उपलब्ध होता है। प्राचीन भारतीयों ने उसे राग से उत्पन्न माना है तो शय्यद आदि आधुनिक पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों ने उसे द्वेष-भावना से निष्पन्न।

भारत साहित्य में प्रहसनो का मूल विषय मनुष्य की मानवी भाव-नाएँ हैं। मोक्ष, गर्व, अह-भावना, प्रतिहिंसा आदि को लेकर उत्तम प्रहसनों की रचना हुई है। अंग्रेजी नाट्यकार प्रायः सौन्दर्य, ज्ञान और धन का गर्व, मानसिक कुम्पता, असंगति, अनैतिकता, मूर्खतापूर्ण कार्य, पक्षपान, विद्रूप आदि विषयों को प्रहसन के लिए उपयुक्त समझते हैं। गुण एवं उद्देश्य तथा उपकरण के अनुसार हास (Comic) के चार भेद माने गये हैं १- (१) चुद्ध-हास, (२) आन्त-हास, (३) उपहास और (४) वाग्वेदगध्य। नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से अंग्रेजी-नाट्य-जगत् में चतुर्विध प्रहसनो का उल्लेख मिलता है— (१) परिस्थिति-प्रधान, (२) चरित्र प्रधान, (३) व्योपक्यन प्रधान और

(४) विदुष्य प्रधान । चाहे जिस किसी दृष्टि से हास्य पर विचार किया जाय या हास्य प्रधान रूपको का विभाजन किया जाय, हम हास्य वृत्ति को असंगति से पुष्ट होता देखने हैं । यह वृत्ति आनन्द, आनन्द, आनन्द, आनन्द, आनन्द आदि भावनाओं में पूर्ण रहनी है । स्नेह के अनुसार शरीर व्यापार में ज्ञान तन्तुओं की उत्साह शक्ति उद्घुसित हो उठती है । वह हास्य होता है ।

"Laughter is merely an overflow of superfluous nervous energy."

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार हास्य के ये चार रूप होते हैं —

(१) हास्य (Humour) (२) वाक्चातुरी (Wit) (३) व्यंग्य (Irony) (४) वशीति (Satire) ।

प्रहसन-साहित्य में हास्य के इन रूपों के दर्शन होते हैं । भारतीय साहित्याचार्यों के अनुसार प्रहसनकार को अपनी हास्य प्रधान वृत्तियों में उपर्युल्लिखित छ प्रकार के हास्य हसित, उपहसित आदि का यथास्थान उपयोग करना चाहिये । साहित्य-शास्त्र में हास्य-विषयक विवेचन नर्म-वृत्ति के अन्तर्गत किया गया है । प्रपञ्च, वाक्वेलि, नालिका आदि नामकरण करके उनके भेदोप-भेद की कल्पना और विवेचना की गई है । छन्दर्वैदग्ध्य भुग्यत यमक, श्लेष आदि पर आश्रित रहना है । इस प्रकार साहित्यिक हास्य विचार-विन्यास में प्रकट होता है ।

हास्य सर्वव्यापी होता है । आचार्य अभिनवगुप्त ने भी इसकी व्यापकता पर नाट्यशास्त्र की टीका में यथास्थान प्रकाश डाला है । विश्व की विभिन्न भाषाओं (अंग्रेजी, फ्रांसीसी, संस्कृत, हिन्दी आदि) के व्यंग्य-विनोद साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से प्रत्यक्ष हो जाता है कि संसार के प्रहसन-लेखकों की विचार पद्धति में साम्य है । विश्व के समस्त साहित्य में विपरीतता, असंगति एवं अमम्वदना ही हास्य का कारण मानी गई है । कलाकार को स्थान और काल की सीमाओं में बाँध कर नहीं रखा जा सकता । वह विपरीतता आदि से हास्य को सृष्टि करके जीवन को उदार आनन्द प्रदान

करने की चेष्टा करता है।^१ इस प्रसंग में अभिनवभूषण द्वारा प्रस्तुत किये गये "अनौचित्य" ^२ शब्द का स्मरण हो आता है। क्षेमेन्द्र और नरन भी नवेंद्र अनौचित्य के अभाव को हास्यास्पद बतलाते हैं। "विकृतावृत्ति वाच्य-क्षेपैरात्मनोऽपरस्य वा" भरत के हास्योत्पत्ति विषयक इन दशम में पाश्चात्य एवं परवर्ती भारतीय आचार्यों के सब मतों का समावेश हो जाता है।

बहुत से विद्वानों के हास्य को व्यय ममनकर इसे धिक्कारने के उपरान्त भी मनोरञ्जन के साथ-साथ समाज में प्रचलित विकृतियों को दूर करने के लिए विश्व-साहित्य में प्रहसनों की रचना होती रही है। ऐसी कृतियों के आलम्बन के रूप में प्रायः असंगतियुक्त सामाजिक कुरीतियाँ ही उपलब्ध होती हैं। अन्तर केवल हर देश की समस्याओं में होता है, जिसका प्रभाव वहाँ के साहित्य पर पड़े बिना नहीं रहता। उदाहरणार्थ—हिन्दी प्रहसनों में घरेलू समस्याएँ अधिक मिलेंगी तो प्रपञ्ची-नाट्य में सामाजिक। संस्कृत साहित्य राजाश्रय में पनपा जबकि सामाजिक स्थिति आज की अपेक्षा नहीं अधिक दान्त थी, इसलिए इसके प्रहसनों में हास्य-मिश्रित भ्रूणार का चित्र ही मिलता है।

असंगति, विपरीतता, अनौचित्य एवं असम्बद्धता से उत्पन्न होने के कारण यह नहीं समझना चाहिये कि हास्य सदा मश्लील वर्णन करता है अथवा प्रकृति के विपरीत बातें बतलाकर समाज का भ्रष्ट करना चाहता है। वस्तुतः हास्य के आलम्बन में निहित विषयताएँ, विकृतियाँ एवं असंगतियाँ अनिष्टकारी नहीं होती। हास्य के देवता शिव के प्रथम दश माने जाते हैं और उनका दशम मित समझा जाता है^३। जिस प्रकार शिव के भक्त-नगर

१- Humour may be defined as the kindly contemplation of incongruities of life and artistic expression thereof.....
Humour and Humanity. Stephen Leacock, Page 11.

२- अनौचित्य-प्रवृत्तिरुभेव हि हास्यविभावत्तम्।...

ना. भा. अध्याय ६, पृष्ठ २६६.

३- ना. भा. अध्याय ६, ४२-४४.

बाहर से भयकर विकृत धातुति वाले होने पर भी भोले भाले और कल्याणकारी होते हैं उसी प्रकार हास्य अश्वि चित्रण करके भी समाज के शिव के लिए तत्पर रहता है। इसीलिए प्रहसन साहित्य में उसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सभ्यत इसी कारण इस प्रकार के एकाकियों के आरम्भ में शिव की ही स्तुति मिलती है।

भारतीय साहित्य में आनन्दस्वरूप रस की प्रधानता होनी है इसलिए आधुनिक मनोवैज्ञानिक जिस दुःख मिथिन हास्य को हास्य के भेदों में स्थान देते हैं उसका प्राचीन नाट्यसाहित्य में अभाव है। संस्कृत रूपक भाव सुख प्रधान होने हैं, जिनमें हास्य एक रोदन का मनोहर मिश्रण उप-भोग्य होता है।

‘प्रहसन’ नामक एकाकी रूपक के सङ्गणों और प्रथम अध्याय में उल्लिखित प्रहसनात्मक रचनाओं को नाममात्रिका को देखकर भी — बहुत से शालोचनों का यह कहना कि ‘संस्कृत में अलग से प्रहसन लिखने की परम्परा ज्ञात नहीं होती,’ न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता^१। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्यकारों पर हास्य साहित्य के प्रति वैभुष्य का आरोप भी बहुत युक्तियुक्त नहीं लगता। यद्यपि आज प्रहसनों की अत्यल्प संख्या उप-लब्ध होती है, तथापि उक्त प्रहसन पुष्प के आधार पर हम निस्संशय कह सकते हैं कि यह प्रेक्ष्य-व्यग्य साहित्य केवल संक्षेप ग्रन्थों में ही निहित नहीं था। नाट्यकारों ने इस प्रकार की रचनाएँ रच कर इस परम्परा को व्यवहारिक रूप भी दिया था। भारतीय साहित्य-कानन प्रहसनरूरी पुष्पों ॥ दर्शकों का मन हर लेने में समर्थ था।

१- (क) संस्कृत साहित्य में अलग से प्रहसन लिखने की साहित्यिक परम्परा ज्ञात नहीं होती।
एन पी सती — नाटक की परम्परा, पृष्ठ २३४

(ख) संस्कृत परम्परा में प्रहसन कम मिलते हैं।

राजेन्द्रकिशोर — हमारी नाट्य साधना, ॥॥ २०६

(ग) संस्कृत साहित्य में अलग से प्रहसन लिखने की परम्परा ज्ञात नहीं होती।

डा० बरमानेताम चतुर्वेदी — हिन्दी साहित्य में हास्यरस, पृष्ठ ७८

डॉ० कीय^१ जैसे दिवारकी द्वारा आक्षिप्त प्रहसनो का लक्ष्य कभी-कभी हास्य के माध्यम से प्रेक्षकों का मनोरञ्जन करना ही प्रतीत होता है तथापि समाज-सुधार की प्रेरणा भी इस कोटि के नाट्य-साहित्य में सन्निहित है। निम्न पात्रों से युक्त तथा ग्रथम कोटि की वक्ष्य-वस्तु प्रस्तुत करने वाले इन प्रहसनो में उनके प्रणयनकालीन समाज में प्रचलित पाण्डु, पदाचार आदि विचारों के दुस्परिणामों की मञ्च पर प्रत्यक्ष देखा कर दर्शकों के हृदय में सामाजिक बुराइयों के प्रति वैमृश्य भाव (घनादर भाव) का उदय स्वयमेव होने लगता है। सहृदयों के हृदयाघातन की इस क्रिया को अभिनवगुप्त साधारणीकरण के तथा भरमुनी जैसे पाश्चात्य विद्वान् रीचनवाद के सिद्धान्त द्वारा सिद्ध करते हैं। मम्मट का ' वान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ' भी इसी तथ्य को पुष्ट करता है। अतः प्रहसन-साहित्य की सर्वांग में उपेक्षा नहीं की जा सकती।

संस्कृत के प्रहसनारम्भक नाट्य साहित्य में प्राप्त अधीन हास्य के अनिर्दिष्ट आचार्य, जैन, बौद्ध एवं कापालिक आदि वेद विरोधी धर्मानुयायियों के प्रति किये गये मार्मिक व्यंग्यात्मक आक्षेपों के कारण इस कोटि के एकादियों की बड़ी ख्याति रही है। भोक्ता के लिए अलौकिक सुलझाविली हँसी की पिचकारियाँ भी इनमें भरी पड़ी हैं। भाण और प्रहसन लगभग एक ही कोटि की रचनाएँ हैं। इनके सज्जित तुलनात्मक अध्ययन के आद्य पर पूर्व पृष्ठों में भाण-साहित्य को 'प्रहसन' की प्रेरणा उत्पन्न का व्यवहार जा चुका है। विस्तारभय से प्रस्तुत अध्याय में सबसे सब उपलब्ध ग्रन्थों की विस्तृत चर्चा नहीं की जा रही है। सामान्य पाठकों के समक्ष साहित्यजगत् में मान्यता-प्राप्त कतिपय प्रहसना का परिचय प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होगा।

दासक प्रहसन

नाट्य साहित्य के आद्यप्रवर्तक महाकवि भास ने संस्कृत नाट्य-सत्कार को तेरह नाटकों के रूप में एक अमूल्य निधि प्रदान की है। श्री रामकृष्ण

१- The Prahāsans and Bhanas are hopelessly coarse from modern Europe stand point, but they are certainly often in a sense artistic productions.

बण की कथा का ही सहारा लिया है । इतना ही नहीं इसमें कर्णभार के वाक्य भी मिलते हैं ।

प्रथम — सखे दुर्मुख ! अपि ज्ञातम् ?

दुर्मुख — किमिति किमिति ।

दुर्बुद्धि — अस्माकं महाराजोऽङ्गराजं फलमूल-समित्कुशकुमुमाहरणाय
वनवता गुरुणा आमदन्नेनानुगत । ततः स गुरु-वनपरिभ्रमण-
परिश्रमात् महाराजस्याङ्के निद्रामुपगत ।

दुर्मुख — ततस्ततः ।

दुर्बुद्धि — ततश्च

वृत्तो वज्रमुनेन नामकृमिणा देवात्तदूहद्वये ।

निद्राच्छेदभयादसह्यत गुरोर्वैर्यात्तदा वेदना ।

उत्थाय क्षतजानुत स सहसा रोषानलोद्दीपित

बुद्ध्वा तं च वशाप कालविकलान्यध्माणि ते सग्लिवति ॥

अहो कष्टमभिहितं तत्र भवता । मच्छाव १

तुलना कीजिये—

को भवान् किमर्थमिहागत इति^२—(ततः प्रविशति परशुराम)

बण — भगवन् वन्दे ।

परशुराम — को भवान् ? किमर्थमिहागत ?

बण — अस्मिन्नानि अस्त्राभ्युपशिक्षितुमिच्छामि ।

परशुराम — ब्राह्मणेपदेशं नरिष्यामि, न क्षत्रियाणाम् ।

बण — नगह क्षत्रिय ।

परशुराम — तर्हि उपदिशामि ।^३

बण — ततः भगवन् अस्त्रितान्यस्त्राभ्युपशिक्षितुमिच्छामीत्युक्तवानस्मि ।

... ..

बण — ततः उक्तोऽहं भगवता ब्राह्मणेपदेशं नरिष्यामि न क्षत्रि-
याणामिति ।^४

शल्य — अस्ति खलु भगवतः क्षत्रिय-वैश्यं पूर्ववैरम् । ततस्ततः ।

१- दामक प्रहसन

२- बणभार-गुह्य ६

३- दामक प्रहसन

४- कर्णभार १०

कर्ण — ततोनाह धत्रिय इत्यस्त्रोपदेश ग्रहीतुमारब्ध मया ।...तत
कतिपयवालातिरुमे कदापि, समित्कुशकुमुमाहरणाय
मतवता गुरूणा सहानुगतोऽस्मि ।

शल्य — ततस्तत ।

कण — तत स गुरुर्वनभ्रमणपरिधमान्मदङ्के निद्रावशमुपगत ।

शल्य — ततस्तत ।

कण — तत —

कृतो बध्ममुनेन नामकृमिणा दैवात्तदूष्टये
निद्राच्छेदभयादसह्यत गुरोर्घैर्यात्तदा वेदना ।

...^१

यह ठीक है कि दूतवाक्य, मध्यम व्यायोग आदि भामनाटक-चक्र में परिगणित नाटकी के समान काव्य-सौन्दर्य इसमें नहीं मिलकर पाया है नाटकीय सबिधान की दृष्टि से भी यह उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं है तथापि इने भात की रचना मानने में कोई आपत्तिजनक बात प्रतीत नहीं होती । कोई भी कलाकार आरम्भ में ही किसी कला के क्षेत्र में नैपुण्य-लाभ नहीं कर लेता । अतः भाम-नाटकचक्र के नाटकी की विशेषताओं से युक्त दामक प्रहसन दूतवाक्यकार भास की प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है । यह पञ्चरात्र, कर्ण-भार आदि रचने से पूर्व की रचना मान्य होनी है । ऐसा लगता है, कवि के मन में कर्ण के चरित्र को चित्रित करने की इच्छा लम्बी अवधि से रही होगी जो इस रूपक में झुंझली सी दिखाई देती है । आगे जाकर वही परिष्कृत एवं विकसित होकर कर्णभार एवं पञ्चरात्र में चमकी और पनपी है ।

प्रसंगवश कवि ने इसमें प्राचीन भारतीय गुरुकुल तथा आश्रमवासियों का तपोमय जीवन चित्रित किया है, जिस पर भास के ' स्वप्रवासवदत्तम् ' की छाया स्पष्ट लक्षित होती है । भारत की तत्कालीन संस्कृति की यह अद्भुत झलकी है । इसकी कतिपय पंक्तियाँ कालिदास की पंक्तियों से मिलती जुलती हैं ।

(परिक्रम्याथमभवलोक्य)

भो सर्वजनसाधारणमाश्रपद नाम ।

मन्त्रुष्टरन्वित्रयोपनाशमानोऽयम् । अत्र मनु चोत्पन्नवपुःसना
चित्रवटाङ्गनिर्गन्धिनोन्मत्ता उपावच अग्निमयी इयमा ।
नाशमवाग्निं मयस्मिन्, नमिन्तुःकृन्तुमादीनिन्वेर इनादुपयन्ति ।
एत एवितान्त्रियमदमाता मुनिवन् । अत्र हि प्रदीर्घान्निर्माति ।
बन्धवममृन्तश्च दूमां प्रविचरति मुनिवन् १^१

तृपता मंत्रित -

मया वामागता मविचमदमाता मुनिवन्
प्रदीर्घान्निर्माति प्रविचरति दूमा मुनिवन् ।
परिभ्रष्टा दृष्टुं मविचरति च मक्षिस्तुङ्गिगुं
एव व्यावृत्तामो प्रविचरति अर्जस्तुङ्गिगुम् ॥^{१२}

इमका मन्त्री-श्रीं कौटिल्य के अष्टादश में मिलता है ।

मुक्तापुष्पी इयाम्प्री इयाम्प्री च मुक्तावन् ॥
मवांश्च देवता वन्दे वन्दे मवांश्च नागान् ॥^{१३}

मन्त्रविष्णु के मन्त्रविष्णु में भी उनके वाक्य मिलते हैं ।

या एव दृष्टदृष्ट दम्नादाशममोमान् वक्त्र एती वा यावति ।

शान्ता पुत्र । वृत्र मनिष्पति । तत्र दन्तान्द्र मन्त्रपाणि ।

मन्त्रपाणि वक्त्रपाणि दम्भ कम्भ भागिनेय भागिनेय मन्त्रपाणि
एव १^{१४}

तृपता कीर्ति - एते एते दृष्ट दृष्ट १^{१५}

जम प्रसार दाम्भ-प्रमम एतु प्राचीन कृति मयून पदवी है और श्री
गन्धर्व कवि ने भी इसे मान का चौदहवीं मन्त्र-ग्रन्थ माना है । इसे मान की
रचना मान कर ही प्राचीनतम मन्त्र होने के कारण यहाँ इसकी सर्वप्रथम
धर्मा की गई है । वाक्य रचना की दृष्टि से मन्त्रित यह मन्त्र मयून रचना नहीं
है तथापि प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिनिधि होने के कारण इसका ऐतिहासिक
महत्त्व है ।

१- दाम्भ प्रमम

२- मन्त्रपाणि वक्त्र, मन्त्र १-१६ पृष्ठ ६३.

३- दाम्भ-प्रमम मन्त्र-ग्रन्थ मन्त्र-ग्रन्थ, पृष्ठ २३२.

४- दाम्भ-प्रमम मन्त्र १.

५- मन्त्रपाणि वक्त्र (विष्णुवन्दन ग्रन्थालय - १३२) पृष्ठ ३२-३३.

भव तब के विवरण ने स्पष्ट है कि सत्कृत नाट्य-वाङ्मय में प्रहसन साहित्य का एक विशिष्ट स्थान है जिनमें ममाव में रहने वाले व्यक्तियों के मतों की खिल्ली उड़ाई गई है। उनके आक्षेपजनक सिद्धान्तों की बुराई की और जिनसे जनता में अनाचार फैलाने की आशंका है वड़े हृदय-वर्गी वाक्यों में सकेत किया गया है। इन प्रहसनों में नृत्तानीन ममाव तथा धन की स्थिति का ज्ञान होगा है।

मत्तविलास

ऐसे उपयोगी प्रहसनों में 'मत्तविलास प्रहसन' का नाम मुख्य है। इसके लेखक काजी के पल्लव-वशीय सिंहविष्णु वर्मा के पुत्र महेन्द्रविक्रम वर्मा थे, जिनका समय सप्तमशताब्दी का प्रथमार्ध माना जाता है। इनका लक्षित नाम महेन्द्र प्रतीत होता है। इनके प्रहसन को पढ़ने से ज्ञान होता है कि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के कारण इन्हें शत्रुमल्ल और सकल गुणों की खान होने के कारण गुणधर एवं भवनि-भाजन आदि उपनामों से विभूषित किया गया था। त्रिचिनामल्ली की गुफाओं के दो शिलालेखों में भी लिखा मिलता है कि मैं पल्लव-वशीय राजा था और उनकी एक उपाधि शत्रुमल्ल भी थी। स्थापनास्थित नान्दी-भास्पावती से उनके मत्तविलास और गुणधर उपाधिधारी होने का बोध भी होता है।

महेन्द्र-विक्रमन् के मत्त-विलास प्रहसन में कापातिक शास्त्रमिश्र तथा पाशुपत का परस्पर संघर्ष बड़ी सम्य-भाषा में दिखलाया गया है। इसकी क्या इस प्रकार है —

मधुनाम के कारण नसेयम चूर किसी दुवनी और कापालिक के हाथ से एक दुत्ता उनका कपाल-भाजन छीनकर भाग गया। किन्ती दूसरे शास्त्रमिश्र के हाथ में उसी प्रकार का कपालपात्र देव कर वह भद्रमत्त युगत उसे धोर समझ कर उनसे झगड़ पड़ना है। उनके साथ का विवाद और विवाद के निर्याय्य उनका पशुपति के आश्रय में जाना आदि बातें इन प्रहसन में बड़े सुन्दर ढंग से वर्णित हैं। इनकी कथावस्तु हार्म्य राम ने अनुरूप ही है।

इस ग्रहसन में कापालिक, पाशुपत, शाक्य भिक्षु, उन्मत्तक आदि घनेक दार्मिकों की परिह्रास-केलि हास्यरस के परिपोषण में वर्णित हैं।

मत्त-विलास में चरित्र-चित्रण

सदा कपाल (खण्ड) धारण किये रहने के कारण इसके प्रमुख पात्र का नाम कापालिक है। इसकी पत्नी का नाम देवसोमा है। कपाल के खो जाने पर वह उससे खेद के साथ पूछ उठता है — 'किनाहमिदानी कपाली भविष्यामि ?' सुरापान के आदी कापालिक के लिए मुरा और स्त्री-समागम मानो मोक्ष का बुला द्वार है। उसके धार्मिक सम्प्रदाय के धाद्य भागदशक भोले-नाथ धाँकूर ही हैं। इसीलिए वह भगवान् शिव की जगज्जकार करता है — "दीर्घायुस्तु भगवान् स पिनाकपाणि ।" इसी सम्बंध में वह दुःखहेतुक मोक्ष का स्वरूप बतलाने वाले जिन-भगवान् को मिथ्यादृष्टि तथा "बराक" आदि शब्दों से सम्बोधित करता हुआ जिनदेव के अनुयायियों का उपहास भी करता है —

कार्यस्य नि सदाप्रमादमहेतो
सरूपता हेतुमिरभ्युपेय ।
दुस्तस्य कार्यं मुक्तमामनन्त
स्वेनैव वाक्येन हृता बराका ॥^१

कापालिक इनका नाम लेने के कारण अपवित्र हुई जित्ना का प्रसादन मुरा द्वारा करने की इच्छा प्रकट करके जैनी तीर्थंकरों की आचार-पद्धति पर भी आक्षेप करता जाता है।

वह परमशत्रु शाक्यभिक्षु द्वारा अपहृत कपाल के अभाव में भी अपना मानसिक सतुलन खो नहीं बैठता। अपनी प्रियतमा देवसोमा के कहने से विवाद को शक्त बनाने के लिए मदिरापान करते समय शाक्यभिक्षु की उपेक्षा नहीं करता। "शेषमाचार्याय प्रदीयताम्" इन शब्दों से उसकी शांती-नता प्रकट होती है। खण्ड को एक पापन के पास से पुन प्राप्त करके इर्ष्यामग्न

होकर भी पाशुपत के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना नहीं भूलता । इसका नारा श्रेय वह उन्हे ही दे देता है । उनका आदेश और सत्परामर्श पाकर अपने विरोधी के सामने अपराध स्वीकार कर लेता है । इस प्रकार इस प्रहसन के नेता कापालिक के जीवन चरित्र में तदयुगीन सामाजिक तथा धार्मिक बदला के साथ ही साथ मुख्यवस्थित बालीनता की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है ।

पाशुपत

मत्तविभास प्रहसन के तृतीय दृश्य में कापालिक और बौद्धमन्यासी शाक्यभिक्षु के उग्र विवाद के समय निर्णायक के रूप में पाशुपत के दशन होते हैं । कापालिक तथा शाक्य भिक्षु का सम्पूर्ण विवरण तत्परता-सहित सुनने के उपरान्त वह न्यायालय में जाकर दोनों का झगड़ा शान्त कराने का यत्न करते हैं । न्यायालय तक जाने से पहले ही एक पागल कापालिक को कपाल दे जाता है और इस प्रकार कलह के अनायास ही समाप्त हो जाने पर पाशुपत को यश प्राप्त हो जाता है । विरोधियों का विरोध प्रेम में परिणत हो जाता है । इससे उन्हें अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है और वह कापालिक के प्रति इन शब्दों में जीवन सन्देश देते हैं—

विरोध पूर्वसम्बद्धा बुवमारस्तु शाश्वत ।

परस्पर-प्रीतिकर किरातानुंनयोर्विव ।^१

यहाँ किरातानुंनयोर्विव के प्रयोग द्वारा कवि ने भारवि की कीर्ति में अपना परिचय सिद्ध किया है । डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय के ' प्राचीन भारत का इतिहास ' से भी यह ज्ञात होता है कि महेन्द्रविक्रम के पिता सिद्धविराजु वर्मा ने भारवि को अपने दरबार में सम्मानित किया था ।

शाक्य-भिक्षु

विवेच्य प्रहसन के द्वितीय दृश्य में बौद्ध सन्यासी के रूप में नागसेन नामक शाक्य भिक्षु का मन्त्र पर प्रवेश होना है । इनके भाषण से ज्ञात होता है कि ये स्त्री परिग्रह एवं सुरापान के समर्थक हैं और सम्य-समाज से छिप कर

इनका उपभोग भी करने हैं। अपने धार्मिक ग्रन्थ "पिटक" में उक्त वस्तुद्वय का अभाव उन्हें बुरी तरह खटकता था और वह मूल पिटक ग्रन्थ का अनुसन्धान करके समाज को यह बतलाना चाहते हैं कि पिटक एवं ऐसे अन्य धार्मिक ग्रन्थों में सुरापान एवं दारसमागम विधान अनिवार्य रूप में रहा होगा, जो दुष्ट वृद्धों द्वारा युवकों के प्रति विरोध-प्रदर्शनार्थ इनमें से निकाल दिया गया होगा।

"कसिं एणुं हं अविण्णट्ठमूलपाठ.....

स तदो सम्पुण्णं बुद्धवज्जणं सोए पसासयन्तो सयौवभारं करिम्सि।"^१
 भिक्षुजी महाराज अपने इस ससोचित रचनात्मक कार्य द्वारा सध का उपकार करना चाहते हैं। कापालिक के साथ विवाद के प्रसंग में देवसोमा द्वारा उनके सामने सुरापान के बढ़ाने पर ये कृतकृत्य हो जाते हैं, किन्तु वृद्धजनों द्वारा देस लिए जाने का भय भी उनके मन में छिपा बैठा है - 'एतावान् बोप । महाजनो-ब्रह्मति...' गुरुजनों से छिन्नकर भोग-विलास की सामग्रियों का उपभोग करना उनकी दृष्टि में पाप नहीं है। इस बौद्ध-भिक्षु को "अविण्णट्ठाणावेरभणं सिक्खापदं मुदावादा वेरभणं सिक्खापदं ।" इत्यादि वाक्य कथित हैं, वह अन्य शैव साम्प्रदायिकों के समान अपने को दोषमुक्त मित्र करने के लिए बुद्ध के इन आदेश-वाक्यों का उल्लेख किया करते हैं।

इस प्रकार शाक्य-भिक्षु के चरित्र से उत्कालीन बौद्ध सन्यासियों की चरित्रिक दुर्बलताओं का उद्घाटन होता है, जो 'ऐतिहासिक दृष्टि से भी अवलोकनीय हैं। उन्मत्तक - कापालिक के कपाल को लौटाने वाले पापमन का चरित्र अपने माप में पूर्ण है। इस उन्मत्त की उन्मत्तता का कवि की लेखनी से स्वाभाविक चित्रण हो रहा है। मासयुक्त सप्तर को कुत्ते से छीन कर वह अपने शत्रु के विषय में एरण्ड के वृक्ष से पूछता है, अपने कथन की पुष्टि में मेघ को साक्षी बनाता है और उसकी साक्षी की अपेक्षा करता है।

'एसे एसे दुट्ठ कुक्कुले ।... कहिं नमिदिससि अइ एतण्डलूक्ख ।

किं भण्णसि - अलिम अलिधत्ति । ए एसे मुज्जलसमविशालतम्ब-
 हत्ये हट्ठने मे शक्खी । ..

इस प्रकार उन्मत्तक यहाँ विट और विदूषक का स्थानापन्न है, और हास्य के वातावरण को मज़ीब बनाता हुआ सफल अभिनय प्रदर्शित करता है।

कापालिक की भार्या है देवसोमा। आदि से अन्त तक पावन पाति-घ्न का निर्वाह करती है। राम की आदेश पत्नी सीता की तरह अपने पति के लिये कपान की लोज म उसके साथ मारे बाँचीपुर का पर्यटन करने को उद्यत रहती है। बाद विवाद के प्रकरण में अन्त कापालिक की शान्ति को दूर करने के लिये शराब का प्याला पकड़ा देती है —

ता दिया गोसिनेण मुर पिबिअजातबलो भविअ इमिणासह विवाह करेहि. '

एक मोर वह कपान को बलपूर्वक छीन लेने की सलाह देती है, और दूसरी ओर पाण्डित द्वारा न्यायालय में जाने की बात को सुन कर अपनी दरिद्रता के कारण डर भी जाती है और इन मय्दों के साथ न्यायाधीश के पास जाने से विवादिया को रोकती है। —

‘भगव । जइ एव, शुभो क्वालस्स ।’

न्यायालय में घूसखोर लोगों की ही बन जाती है, उससे यह रहस्य छिपा नहीं है।* कापालिक की सहवर्मिणी होकर भी देवसोमा नारी जाति के लिये गौरवपूर्ण आदेश प्रस्तुत करती है। मुख दुःख में समान रूप से अपने पति को उत्साहित करते रहना ही जीवन-महिनी का कर्तव्य होता है उसका चरित्र नारियों को यही मुभ संदेश देता है।

संस्कृत नाट्यपरम्परा के अनुसूप ही इसके आदि और अन्त में क्रमशः नान्दी एव भरत वाक्य है। यह प्रहसन लटकमेलक हास्याणंद आदि कृतियों के समान विटवेक्ष्यादि का अतिरञ्जित रूप प्रदर्शित नहीं करता। फलतः उनकी तुलना में अक्षतीलता से परे होने के कारण यह एक अनुपम रचना है। इसकी

* आज देश के सभी क्षेत्रों में इस प्रकार के विचार फैले हुए हैं। यह व्यापकसाहित्य मात्र भी अतिरिक्त परिवर्तनों के साथ जनता को सुधारने के उद्देश्य की ध्वनि में गूँजकर अभिनीत हो सकता है अथवा ऐसे साहित्य के निर्माण की प्रेरणा साहित्य-कारों को दे सकता है।

जैली सरय एव मरय है । निम्नांकित शंकरस्तुति एक हूँसी भरी पिचवारी है । —

पेयासुरा प्रियतमा - मुग्धमीक्षितव्य
ग्राह्य स्वभावतलितो विकृतश्च वेप ।
येनेदमीक्ष - महद्दयत मोक्षवत्तम
दीर्घायुरस्तु भगवान् स पिनारपाणि ॥

अर्थान - -

मदिरा या पान करना चाहिये, प्रियतमा के मुख का दर्शन करना चाहिये और स्वभावसुन्दर विकृत वेप धारण करना चाहिये । इस प्रकार के रहन-महन का उपदेश देकर जा मोक्ष या मार्ग दिखलाने है वे जनर भगवान् दीर्घायु हैं । ^१

महन्द्र विक्रम की उस लघुकृति में विविध प्राक्तनों का प्रयोग उपलब्ध होता है जिनमें शारमनी और भागधी की प्रधानता है । इस एकाकी की प्राकृत-भाषा भाग रवि की प्राकृत में बहुत सादृश्य रखती है । इन्होंने और भी ग्रन्थ लिए परन्तु उनकी अनेक विरचित रचनाओं में से अब यही एक प्रहसन मिलता है ।

लटकमेलक

महन्द्रविक्रम के 'मत्तविनाम प्रहसन' के लगभग ५०० वर्ष बाद १२वीं शताब्दी के आरम्भ में वाण्यट्टुब्ज-नरेश गोविन्दचन्द्र के सभासि दाम-धर वविराज ने एक प्रहसन 'लटकमेलकम्' लिखा । इसके शीपक का शब्दाव्य होता है—'धूर्तों का सम्मेलन ।' भाण्टशोमरी^२ सिरलेर ने अपना बिम्बियो-

१- मत्तविनाम

२- दक्षिण -

(क) भाण्टशोमरी द्वारा प्रस्तुत प्रहसनावलि पृष्ठ १०४.

विभिन्नवाक्यकी जाण दी संस्कृत शृंगार.

(ख) Natakmelak prahazana mentioned in S. D. III 207, 537 Page 74

याफी आफ दी सस्कृत ड्रामा" मे एव श्रीमोनिवर विलियम्स ने स्वकीय बृहद्-कोश मे "नटकमेलकम्" नामक एक ग्रन्थ प्रहसन का उल्लेख भी किया है। इसकी पुष्टि मे इन विद्वानो ने साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद के एक श्लोक को भी याद किया है। किन्तु 'दपण' की पूरी छानबीन के उपरान्त भी मुझे इसमे "नटकमेनक" नाम के किसी नाटक का उल्लेख नहीं मिला। सबत्र "नटकमेलक" ही मिलता है। अतः यह "नटकमेलक" का ही नामान्तर होना चाहिये अथवा प्रतिनिधिकार का प्रभाव हो सकता है।

भीमदेव के पुत्र चालुक्यवर्दीय हरिपाल गुजरात के अभिनवपुर^१ के राजा थे जो 'विचार चतुर्भुज' भी कहलाते थे। इनकी प्रमुख रचना है, समीत-रत्नाकर। इस पदभाषाविद् ने विद्वन्मण्डली मे बहुमत मे "प्रहसन" के नाम से प्रख्यात 'नटकमेलक' को 'ईहामृग' कह कर सचमुच एक नई बात कह दी है। इन दो विभिन्न मतों को पढ़ कर स्वभावतः यह प्रश्न उठ सकता है कि शखघर कविराज की उक्त रचना को किस वग मे रखना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रश्न के स्पष्टीकरण के लिये 'प्रहसन' और 'ईहामृग' नामक रूपकों के लक्षणों पर तुलनात्मक दृष्टि डालना अप्राप्तविक न होगा। अस्तु-ऊपर हम प्रहसन के लक्षणों पर विस्तार मे विचार कर चुके हैं। तदनुसार प्रहसन भाण से मिलता जुलता हास्य-प्रधान एकाकी होता है^२। इसके विपरीत ईहामृग^३ मे चार अङ्क होते हैं। इसका कथानक मिश्रित होना है अर्थात् अशत प्रसिद्ध और अशतः कवि-कल्पित। भुक्त, प्रतिमुख तथा निर्वहण सधियों की योजना होती है।

१- "अभिनवपुरनाथ हरिसंगीतविद्य-प्रशमितविषयेद र्जनी, काञ्चनानाम् ।

... ..

मुद्ररूपेण सवेपुर्दीप्तवया मुकुन्द

ऐन्द्रस्थानमुपाश्रितेषु कविषु शब्देषु भूमण्डलीयम्-कम्पनजम्भमदजुडितवेष्टामिवा रसिजुम् । पदभाषार्थविश्लेषदा रसगुणातस्तुतिरिषी - - जगन्निष्ठ इवदा ।

(भरतकोशस्य भूमिका मे अस्ति य. प्र. रामकृष्णकवि के विचारों के आधार पर)

भरतकोश-पृष्ठ ७

२- सधयङ्गनास्यार्ज्जुनिनिर्मितम् ।

सा. द. ६, पृष्ठ २६२

३- स, द. ६, २४१-२४६, पृष्ठ ४२८.

इसके नायक और प्रतिनायक प्रतिद्वंद्वी धीरोद्धत नर या देवता होते हैं । वह किसी सुरागना को चाहता है जो उसे नहीं चाहती । पतस्वरूप वह प्रकट रूप से उसके प्रति अपना प्रेम जता नहीं सकता और नायक उसको हर कर ले जाने की सोचना है । युद्ध की पूरी सम्भावना होती है किन्तु किसी वजह से वह स्थिति टल जाती है । इतिहास में किसी महात्मा का वध विस्तार हो तो भी ईहामृग में उसे प्रदर्शित नहीं करना चाहिये । प्रायः प्राचीन, मध्ययुगीन एवं प्रवर्तमान सब साहित्यालोचन तथा लक्ष्यकर्ता विचित्र हेरफेर के साथ इसकी यही परिभाषा बतलाते हैं ।

इस प्रकार प्रहसन एवं ईहामृग में निम्नांकित बातों में भेद लक्षित होता है —

प्रहसन	ईहामृग
१ प्रहसन में एक अङ्क होना है जो दो दृश्यों में विभाजित हो सकता है ।	१ इसमें चार अङ्क होते हैं ।
२ यह छुट्ट बिठून और सकर तीन प्रकार का होता है ।	२ नायक उष्णकुल के नर या देवता होते हैं ।
३ इसमें साधु, सन्यासी के प्रति-रिक्त चेट, चेटी, बेस्या, बिट आदि नीच पात्रों की योजना भी हो सकती है ।	३ इसमें नीच पात्रों का प्रवेश नहीं के बराबर होता है ।
४ यह हास्य रस प्रधान रूपक होता है जिसका मुख्य उद्देश्य होता है प्रेक्षकों को येन केन प्रकारेण हँसाना ।	४ मुट्ट होते होते रुक जाता है ।
५ इसमें प्रेमिका का प्रेम असम्भ्य नहीं होता ।	५ नायिका का प्रेम दुर्लभ होता है ।
६ विषय साधारण होना है ।	६ ईहामृग व्यायोग नामक एकाङ्क रूपक का विकसित रूप प्रतीत होता है ।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए जब हम सखधर कविराज के 'लटकमेलक' की समीक्षा करते हैं तब उसमें प्रहसन के लक्षण ही अधिक घटित होत देखते हैं। अतः इस कृति को प्रहसन की कोटि में रखना अधिक युक्तिसंगत होगा। ईहामृग की तरह हममें नाबिका का प्रेम दुलभ नहीं होता। हममें किसी को पान की मृग की तरह चेष्टा नहीं होती। यहाँ तो प्रेम को सब खरीद सकते हैं। प्रहसनकार प्रहसन के लिये सामग्री साधारण समाज से बटोरता है जबकि ईहामृग की कथा पुराणों से ली जाती है या कवि-कल्पित होती है।

साहित्य समाज की ही अभिव्यक्ति होता है। अपने समय के विपाक वातावरण से भावछादित समाज को सुधारन की भाशा से ही प्रसिद्ध प्रहसन 'लटकमेलक' की रचना हुई। कवि सखधर इसमें अपने को कन्नौज नरेश गोविन्द^१ के शासनकाल में उत्पन्न हुआ बतलाते हैं। इसका अभिनय वसन्त-काल में राजाशा^२ से हुआ था। इसमें कन्नौज-नरेश गोविन्ददेव का सकेत तथा कुछ एक गाँवों के नामों का उल्लेख इसे बारहवीं सदी की रचना सिद्ध करते हैं। यथा दुदोलि^३ मुष्टिदाल, दरिह, जो कन्नौज-नरेशकालीन भारत के ग्रामों की ओर सकेत करते हैं। लटकमेलक में मच्छरहट्टा^४ का नाम भी आया है जिसे पञ्जर हसी नाम के बनारस तथा पटनामगर के एक 'मच्छरहट्टा' नामक मुहल्ले की स्मृति हो आती है। इसमें प्रयुक्त 'राटीया' शब्द का सम्बन्ध बंगाल के राठ के से प्रतीत होता है। राठा^५ बंगाल के एक जिले का नाम है। उस स्थान से सम्बद्ध रीति रिवाज या जाति 'राठीय' कहे जाने लगे। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के शासन काल में (१२वीं सताब्दी) दक्षिण भारत से आये हुए ब्राह्मणों को राठीय या राटी नाम दिया गया और उनकी

१- लटकमेलक ४, पृष्ठ २-

२- यद्यपि वसन्तकाल-समुचितेन कविराजश्रीसखधरविरचितेन लटकमेलकनाम्ना प्रहसनेनास्मान् विनोदयेति। लटकमेलक - ॥ १

३- लटकमेलक पृष्ठ १-३, पृष्ठ ३६-

४- लटकमेलक पृष्ठ १२-

५- 'गौड राट्टकनुत्तम निरूपमा वज्राणि राट्टापुरे।' श्रीवीरचन्द्रोदय

परम्परा भी राखीय बहलाई^१। इसमें प्रयुक्त इस शब्द को देखने से भी यह कृति १२वीं सदी की प्रतीत होती है।

साहित्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नियमों का उल्लंघन करते हुए कवि ने 'लटकमेलक' रचना द्वारा समाज का जीता-जागता चित्र प्रकट कर दिया है। ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तुत महादेव की स्तुति से कवि की शिवभक्ति झलकती है।

गौरीचुम्भन चञ्चलान्चलवलच्चन्द्रप्रभामण्डन
व्यावृत्तमत्कल्लिबुण्डल रतिरसप्रस्विन्नगण्डस्थलम् ।
श्रीद्वैतमधरम्परा - परिचयप्रोत्फुल्ल - नेत्राञ्चल
सामोरस्तु विभूतये त्रिजगतामुन्मत्तस्य शिर ॥^२

अपिच—

रत्नाभावनिमा परित्यजजटा कोज्युमदप्रश्म
कौपीन त्यज मुञ्च मुञ्च नखर-व्यापारमास्थानिकम् ॥^३

प्रस्तावना में ही अपने आश्रयदाता गोविन्ददेव की प्रशंसा भी की है जिससे उनकी राजभक्ति का भी परिचय मिलता है।^४

धूतमण्डली की इस कथा में काव्य की छटा-प्रदर्शन का कवि को बहुत कम अवसर मिलता है। कवि ने धूर्तों के त्रियारत्नापों का अनिरञ्जित एवं विस्तृत विवरण और इसमें निम्न समाज का नग्न-चित्रण करके अपनी इस कृति को आधुनिक युग के सस्ने साहित्य की नोटि का अवश्य बना दिया है।

१- कुहटमिथ - बदन भिष्याभुम-महामहाराष्ट्रायामि । (मविमरीए) बहू ।

बाह्याभ्य विनापि धरम प्रतिष्ठाप्रयथ । तथाहि राखीय बचन-रचना - -

एष व्याकरण न वेति न ह्यन काव्येभ्येन यथ

भुत्वाचामति भट्टवार्तिकविर रदति राजस्वद्विद ।

राखीयनिर्द्वय - गद्यदशले प्राधान्य श्रुयते । लटकमेलक, १६ पृष्ठ ३८

२- लटकमेलक १, पृष्ठ १

३- लटकमेलक १, पृष्ठ १

४- लटकमेलक ३, पृष्ठ ३

(कारण इसमें आदि में अन्त तक पात्रों के मूर्खतापूर्ण वातावरण ही आते हैं) तथापि यह प्रहसन-साहित्य का प्रतिनिधित्व करने वाला अपने समय की लोक-रुचि का स्रोतक प्रहसन है, इसमें संदेह नहीं। आगे चलकर हम देखेंगे कि इस प्रकार की रचनाओं का अन्य परवर्ती प्रहसनकारों पर भी प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ ५० जगदीश्वर भट्टाचार्य विर्गचिन्ताम्याणव का नाम उद्धृत किया जा सकता है। लट्टमेलन तथा हाम्याणव के तुलनात्मक अध्ययन में ज्ञात होगा कि दोनों रचनाओं की विषय वस्तु, वर्णनाशैली, यहाँ तक कि पात्रों के नाम एक दूसरे में मिलते जुलते हैं। दोनों प्रहसनों का उद्देश्य है शास्त्र-सम्मत पद्धि विहिन हाम्य के प्रयोग द्वारा हाम्यमय वातावरण का निर्माण करना। शास्त्र के नियमों का पालन करते समय कवि जिष्टता को भी कहीं कहीं भूल बैठा है—

यस्य कस्य तरोर्मूल येनवेनापि पश्येत् ।
यस्मै कस्मै प्रशानस्य यद्वा तद्वा भविष्यति ॥^१
ध्याययो महुपचारलालिता मत्प्रयुक्तमृत विष भवेत् ।
किं यमेन नह जाकिमोषयै न्जविहतरि पुर स्थितेमयि ॥^२

सूचना कीजिए—

नेने तप्ता शलाका जठरगुह्यादध्नीपदे स्थितिरधे
रम्याया नातिवाया वडिश्मनिक्षित तप्तनलचक्षूले ।
हृद्रोगे ६०-६१ दृश्यन्तिटल ६ ६३ सुत्वदेहेऽ
येतं रम्योपचारैतयनि पितृवन गेम्भि व न साधु ॥^३

दोनों कृतियों में रोग के उपचार के नियम जो चिकित्सा पद्धति वैद्य जी अपनाते हैं वह एक ही हैं। दोनों ग्रंथों में वैद्यजी महाराज दाम्पत्य में महावैद्य ही हैं। दोनों को वैद्यशास्त्र का रत्नी भण भी ज्ञान रहा है। हास्यानन्द के कवि का नाम तो ज्ञान है परन्तु इनके समय का पता नहीं चलता। अनुमान से यह चौदहवीं सदी के बाद की रचना प्रतीत होती है।

१- लटकमेलक २३ पृष्ठ १७

२- सटवमेव २८ पुष्ठ १६

३- हास्यार्पण २८, २९, ३०, ३१.

५ 'लटमेलक' में धूर्तों का सारा कार्यक्रम दन्तुरा नामक कुट्टिनी (दूती) के घर पर होना है। कामुव लोग उसकी सुन्दरी पुत्री मदनमजरी के प्रेम को खरीदने के लिए आते हैं। मदनमजरी के गते में हड्डी अटक जाती है। इससे उसे बरूट होता है। लोग उस जन्तुरेनु नामक वैद्यराज से इलाज करवाने की सलाह देते हैं। उनके आन पर हास्य में ओत-प्रोत आनावरण हो जाता है। हैसने में हड्डी अपने आप निकल जाती है। दूसरे दृश्य में कामियों का विवाह-सम्भार होता है। विवाह मानव जीवन का एक प्रादुर्भाव मस्वार है। इसका मनुष्य से गहरा संबंध है। पहले मकरा जानिया से तो सम्बन्ध होता ही था, असवगु जातिया के साथ भी गाँठ जोड़ने की मनाही न थी। सभापति जी ने एक दिगम्बर का दन्तुरा के साथ विवाह कराया और स्वयं मदनमजरी से बंध गए। इस पर गीता का प्रभाव भी है, परन्तु गीता के श्लोक विवाह के अवसर पर प्रसंग का विचार न करने हुए जहाँ-तहाँ कहलवा दिए गए हैं, जो विचित्र हास्य की सृष्टि करते हैं।

जातस्य हि ध्रुव मृत्युध्रुव जन्म मृतस्य च ।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्व शोचितुमर्हमि ॥^१

और भी—

सभापति—दन्तुरे, त्वद्गुणाकृष्टोऽयं दिगम्बरस्त्वामभिनपति । त्व चाद्यापि

नवनवतिवषट्शेषा युवति । तथाहि—

निविहितनूपुर मधुरा कस्य निगूढा न भन्ति ते निधमः ।

रिपुर्विष यदि न विसर्पति करकिमलयवलय-भङ्गार ॥^२

विवाह के दृश्य के आधार पर कई लोग इस प्रहसन को दन्तुरापरि-गम भी कहते हैं।

हास्यार्णवः—

श्री जगदीश्वर के हास्याणव में अनन्य सिन्धु राजा की कथा है जो

— लटमेलक ३४, पृ० ४६

— लटमेलक २६, पृ० ४७

भोगविष्ठा में निष्ठ रहने के कारण राजकार्य को देर में नहीं समाप्त करा है। अथवा शर्मा नामक मीनर को वह राजकार्य की गतिविधियों का पता लगाने के लिए भेजा है। अपना दाय्य मजान करके वह राजा को यह सूचना देता है कि उसकी मन्त्रिणाया के पन्थव्य जनता ने सब प्रकार की बुराइयों को त्याग कर अच्छाई को ग्रहण कर लिया है। मीनर के मुख में यह समा-
चार सुन कर राजा का क्रोध हा जाता और उसके लिए नागरिकों को दण्ड देने के लिए उद्यत हो जाता आदि हास्यमूलक बातें हैं। इन प्रकार धर्माचित्र एवं प्रवृत्तिचित्रण कथनों द्वारा कवि न हास्य का मजबूत करार का प्रमाण दिया है।

चर - (मम्भूतनाधित्य)

आसिद्धानि निजाङ्गना पर-वनू हित्वा जना माग्रन
मीच मीम्यन्ति मत्पुपानहमहो मद्वाह्याणाना परे ।
बन्दने द्विजमन्त्रपदे निवसन्ति सीधविहीना जना
एव मण्डल-वैररीत्यधिक जात महानूतने ॥

धरिच—नारीराज नयनञ्जन न जघन निन्दूरभामग्निने
मीमन्ते न च नूपुरो बद्धयुगे मावोऽपि नैवशरे ।
बशोऽत्र मणियजनी न भररो कान्ची कटो नाधरे
चेत्य वेगविषयं प्रतिष्ठे दृष्टे मकष्ट मया ॥१

इनके अन्तर्गत वह सभी कुमनिवर्मा को बुलवाकर उसे मन्त्रणार्थ उचित स्थान निर्धारित करने की आज्ञा देता है। मरी मन्त्रणा के लिए गहर को बन्धुरा नामक कृद्विनी देवता के मकान को इन कार्य के लिए उपयुक्त बनवाना है। राजा उसका समयन करता हुआ मदके साथ नियत स्थान पर पहुँचना है। बन्धुरा भी उन्हें अपने यहाँ आया देव प्रणम्य होगी है और अपनी पुत्री मृगाक्षलेया नामक देवता से राजा का परिचय करवाती है। कानुज राजा उसके मौन्दरों को देव भीहित हो जाता है। वहीं मृगाक्षलेया को जामगान्ध पढ़ाने वाले पुर महामहोपाध्याय श्रीतिरुमन्डकी अपने शिष्य कतहापुर के साथ पहुँच जाते हैं। उन्हें दूरे आसन पर बैठा कर स्वागत किया जाता है।

मिथ्यानुक्त - (मदनमञ्जरीमवलोकन) - - - ।

समारसारमहः त्रिजगत्पवित्र तद्रत्नमेतदुपसर्पति पङ्कजाक्षी ॥^१

ऐसी रसभरी बातें सुन कर वन्धुरा को युवावस्था में की गई काम-
क्रीडाओं की स्मृति कामज्वर का शिवार बना देती है । उपवाराय द्यातुरातक
के पुत्र व्याघ्रसिन्धु नामक महाबैद्य बुलाए जाते हैं जो लटकमेलक के वैद्य के
समान ही हैं जिसका तुलनात्मक चित्रण हम ऊपर कर आए हैं । विशेष बात
यह होती है कि वैद्यराज चिकित्सा करने के बदले स्वयं ही काम के शिखार
बन जाते हैं, मृगाकलेषा का मौन्दय उन्हें मुग्ध कर देता है । इसी प्रकार रक्त
वल्गो नामक नाई (अपनी कन्या में अनभिज्ञ) मिथ्याणव नामक ब्राह्मण,
महापाशिव नामक ज्योतिषी आदि पात्र मञ्च पर आकर अपने हास्य-परक
आंगिक एवं वाचिक अभिनयों द्वारा लोगों का चित्तानुरक्षण कर पाते हैं ।
इसके अनिश्चित वसन्त ऋतु में प्रकृति की मोहक छटा का कारण यदि वे प्रकृति
के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है । रचना ऐसी सरस एवं सरन है । कहीं-
कहीं ममस्त पदावली के दशन भी होते हैं ।

इसी तरह "लटकमेलक" के दन्तुरा एवं मदनमञ्जरी के गतिगति अन्य
पात्र भी अपने ढंग के अनोपे हैं यथा -

सभासनि कौल (शाक्त) मत के अनुयायी हैं जिनकी पत्नी का नाम
वलहप्रिया है । मदनमञ्जरी की परिचारिका दन्तुरा से उनकी स्खुब बनती है ।
उसके रूप-जीवन पर उनकी दृष्टि सदा लगी रहती है । दन्तुरा और मदन-
मञ्जरी को सदा प्रमत्त रहने का यत्न करते हैं । वह कहीं मत्वाहकार के रूप में
और कहीं भ्रष्टाचारादि और दिगम्बरमूर्ति की बीच बकरी के घघ के भण्डे
का समाधान करते दिखाई देते हैं । कहीं प्रमद काम में भी हाथ घँटात ह ।
कामिया का विवाह भी कराते हैं । इस प्रकार धृत-मण्डली में ये महाभाग्य
व्यवहार-कुशल जान पड़ते हैं ।

फुकटमिश्रजी एक दाशनिव के रूप में प्रतिष्ठित किए गए हैं । इनकी
दाशनिरता एवं इनका पाण्डित्य अतुलनीय है । इनके बौद्धिक-प्रदर्शनपरक
अनेक मनोरञ्जक श्लोक इसमें मिलते हैं ।

गुरोर्विर पञ्चदिनान्पुत्रास्य वेदान्पास्वाणि दिनत्रय च ।

यमी समाध्यात विनवदादान् नमामना पृष्टनिधपादा ॥

ध्यानावर को 'बौद्ध' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो चमरमेन विहार का निदासी है। यह युक्त रूप ने किमी घोबिन में प्रेम करता है। इसी कारण मञ्च पर उपस्थित होते ही उनका चेनन मन उसे धिक्कारता है—

पृष्टुर्धनया नृधनया विना रजन्मा

ममुत्ताननिधानस्मानमिव विभाति भवनम् ।

परन्तु जब उसे किसी निम्नजाति की स्त्री से सम्पर्क रखने के कारण दूषित ठहराया जाता है, तब वह चिट-भा जाता है। इसके प्रत्युत्तर में अपने समथन के हेतु कुछ भगवान् के वचनों का सहारा लेता है। जानि नामक पदाथ, पदार्थों से मिश्र रूप में कभी शान्ति नहीं होता। उनके मत में सब पदाथ ही क्षणमनुर हैं। आत्मा भी स्थायी नहीं है।^१ इसलिये उसे घोबिन को छून का दोष नहीं लग सकता। उसकी अनोखी तर्क-गति इस ब्रह्मन में देखी जा सकती है —

दन्तुरा-परिणय या लटकमेतक ब्रह्मन की शैली एवं भाषा सीधी-भासी किन्तु धरने टग की अनोखी है। संक्षेप में गंभीर चित्रण करने का दुप्पर कार्य भी कवि न कर दिया है, जो स्वाध्य है।

ध्यानावर — विनाशनीला भाषा ब्राम्हे ।^२

ध्यान-ध्यान पर समन्त-पदों का प्रयोग भी किया गया है, परन्तु उनसे भाषा का प्रभाव अवरुद्ध नहीं होता। इस शैली के माध्यम से पञ्चमवार के उपानव शास्त्री के सामाजिक दुराचार, बौद्ध सन्यासियों के मिथ्या विहार, क्षान्तियों के अभिमान और उनकी ज्ञानहीनता का कवि ने अत्यन्त सजीव भाषा में कलात्मक ढंग में रहस्योद्घाटन किया है। कवि ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि सन्तो और उनके अनुयायियों की कथनी एकतरनी में भावना पाताल का अन्तर है।

१- लटकमेतक २३, पृ० ४४.

२- लटकमेतक पृ० ४४.

वैद्यक-ग्रन्थों को जन्म दिया, जहाँ वाग्भट्ट, माधव-निदान, चरक समान ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं, जिनके साहाय्य से कोटि कोटि प्राण बचाए गये, वहाँ नोम हकीम खतरएजान वाली कहावत को चरिताय बनने वाले वैद्य भी समाज में विश्वमान थे। सटकमेलक हास्याणव तथा अन्य प्रहसनात्मक ग्रन्थों में चित्रित वैद्यों का चरित्र इसका प्रमाण है।

प्रस्तुत हास्य प्रधान कृति अपने देश की समाप्तिवर्षिक धार्मिक स्थिति पर भी प्रकाश डालती है। सटकमेलक उस समय की रचना है जब भारत में घम की दागडोर गुरु, माधु सन्यासिया वें हास्य में थी। वे धरनी शक्ति का अनादश्वक लाभ उठाते तथा भोली जनता को भ्रमजाल में फँसाकर अपना मननव माघते थे। इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि भारत के इस स्वर्ण-युग में बौद्धभिक्षु जैसे घम के रक्षक भी दुबलता के शिकार बन कर घमभक्षक बन बैठे। लोगो का चरित्र नित्यप्रति गिरने लगा था। देश की ऐसी स्थिति तो दुग, सातवाहनो तथा गुप्त राजाओं के समयसे ही होने लगी थी। बौद्ध तथा जैन घम की अवनति तभी से होने लगी थी परन्तु उसका चरम भीमा का पहुँचा हुआ रूप ६वीं तथा १०वीं शताब्दी में देखने को मिलता है। बौद्ध एवं जैन जैसे पवित्र घम भी वासना एवं आडम्बर की दुग्न्ध से घृणित हो गए। जटामुर, दिगम्बर और चमरसेन बिहार के वासी व्यसनाकर बौद्ध का चरित्र इसका उबल-त प्रमाण है। यह प्रहसन तत्कालीन विवाह की रीति पर किम प्रकार प्रकाश डालता है हम ऊपर ही देख चुके हैं।

प्राचीन संस्कृत-नाट्य साहित्य के इतिहास के पृष्ठों के सम्मगबलोकन से श्री सुन्दरम् पिल्लर्ड के इस कथन की सत्यता में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि दक्षिण भारत का केरल प्रान्त मुस्लिम आक्रमणों से सुरक्षित रहने के कारण भारतीय नाट्य का उबर स्थान रहा है। महाकवि भास के नाटकों के प्रकाश में आने से तथा इनकी रचनागत विशेषताओं से सम्पन्न मत्तविलासादि अन्य नाट्य-ग्रन्थों के दशन से यह बात और भी पुष्ट हो जाती है। मलाबार के विद्वान् श्री पी अनूनन् अचन् के बोधायन कवि रचित भगवदज्जुकम् या भगवदज्जु-कीयम् की दो-तीन हस्तलिखित प्रतियाँ को प्राप्त कर इसका विद्वत्तापूर्ण सम्पादन करके संस्कृत-साहित्य में एक नवज्योति जगा दी है। अब तक के प्रकाशित प्रहसनों में प्रस्तुत विवेच्य प्रहसन सर्वोत्तम रचना है। पल्लवनरेश महेंद्रविक्रमन् के

मत्तविनाश की तरह भास की वाक्यगत विशेषताओं से विनूषित होने पर भी इन दोनों कृतियों में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। प्रमुख भेद यह है कि मत्तविनाश में हास्यात्मक स्थिति का निर्माण पात्रों द्वारा हुआ है और 'भगवदञ्जुकम्' में कथावस्तु के माहात्म्य में हास्योत्पत्ति की गई है। अतः—

भगवदञ्जुकम् :—

एक हिन्दू परिव्राजक और बौद्ध भ्रमणक शाण्डिल्य योग-विषयक चर्चा करने हुए किसी उद्यान में घाते हैं। वनन्तेना नामक गणिका भी चेटी के साथ उसी स्थल पर पहुँचती है। पुष्पावचन करने समय दम्पत्य नपुंसक वनन्तेना को इन कर उनके प्राणों को हर लेता है। मनम-हृदया चेटी शाण्डिल्य के पास गणिका के मृतक शरीर को छोड़कर उसकी माता को यह गौतम समाचार देने लगी जाती है। उस बीच गणिका के प्रेम में पागल शाण्डिल्य को शिला-प्रलास करने बल परिव्राजक योग-विद्या की महामना से वनन्तेना के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। तब वनन्तेना का शव उठ कर परिव्राजक के समान बातें करने लगता है। चेटी और गणिका की माता जब जाकर वनन्तेना को एक तटस्वी के समान बातें करने सुनती है तो वे इसे विष का प्रभाव समझ कर बैद्य को बुद्धवानी है। दूसरे भूल में वनन्तेना नाम की दूसरी नारी को मार कर घाते के रास्ते दम्पत्य को मृत्युराज की पट-कार सुनती पकती है। अपने स्वामी द्वारा भलिग यम का अनुचर सौटकर निर्जीव वनन्तेना के शरीर को चपना किरता एक शोषणा देव आश्चर्यमग्न हो जाता है। अतएव वह वही पडे परिव्राजक के शव में उन गणिका के प्राणों को डाल कर लौट जाता है। परिव्राजक के शरीर में प्रविष्ट वनन्तेना एक गणिका के समान वार्तालाप करने लगती है। शाण्डिल्य इस मोहक हृदय को देख कर कह उठता है 'अब यह न भगवान् ही रहा और न भगवन्तः— यह तो भगवदञ्जुक' हो गया।

शाण्डिल्य. — भगव । कि एव.....

ऐव भगवो ऐवाञ्जुषा । भगवदञ्जुषा राम सवुत्त ।^१

यही इन प्रहसन के नामकरण का कारण है। शाण्डिल्य परिव्राजक को भगवान् कहा करता था और चेटी गणिका को अञ्जुसा के नाम में सरोधित किया करती थी। कवि ने इन इतिवृत्त को एक अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया है जिस देखकर दशक हास्य के सागर में नौने लगाने लगने हैं। अन्त में यम की सहायता से दोनों आत्माएँ अपने-अपने शरीरों में चली जाती हैं। परिणामतः यह प्रहसन एक मुखान्त लघु नाटक का रूप धारण कर लेता है और कवि 'न दुःखान् नाटकम्, सम्बन्ध-नाट्य-साम्य के इस प्रमुख नियम का पालन न करने के दोष में मुक्त हो जाता है।

'मत्तत्रिनाम' में मत्तपान के कारण मदमस्त कापालिक और एक शास्त्र भिक्षु के वाद-विवाद की कथा वर्णित है, जिसमें घौने में वह भिक्षु को अपने कपाल-पात्र का घोर ठहराना है, जबकि उसका वर्तन एक कुत्ता से आभा था। यहाँ भिक्षु का बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध भौतिकवादी मन्य जीवन चिन्तित किया गया है। इसके विपरीत भगवद्गुणम् का शाण्डिल्य जो पहले शास्त्रमण्डल था, एक भूल पैदा के रूप में दर्शाया गया है। इसे देखकर संस्कृत के बृहन्नाटकों के विदूषक का स्मरण हो आता है।

शाण्डिल्य - भो। पुठम एव्व अहं करहुंममममिदंखिरस्वरूपविवत्तभीरु
कण्ठममत्तजण्णोव वीदे बह्मणमत्त परितुट्ठं कुत्ते पमूदो।
... ... आ। एमो दुट्ठंलिगी पादरत्तणलोहंण एभाई
भिवत्त आहिण्डिदु पुव्व गदोत्ति तक्केमि।^१

उन प्रहसन-द्वय की कथा के तुलनात्मक अध्ययन से प्रत्यक्ष हो जाता है कि मत्तत्रिनामयुगोन भारत में बौद्ध धर्म पतन की ओर मुक्त रहा था। इसके विपरीत भगवद्गुणकालीन देश में उक्त धर्म की स्थिति इतनी गिरी हुई न थी जैसी कि प्रथम प्रहसन में देखने में आती है। इस प्रकार दोनों रचनाओं में नाट्य-संविधान, रचना-शैली आदि में कुछ साम्य होने पर भी बड़ा अन्तर स्पष्ट है। इसे ध्यान में रखते हुए बोधायन कवि के समय का

सम्यक् निर्धारण न होने पर भी उनकी रचना मत्तविलास के पुर्व की प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त एव आत्मा का दूसरे के शरीर में प्रवेश करने का वृत्तान्त वैदिक धर्म के इतिहास से सम्बद्ध कई ग्रन्था में प्राप्त होता है। योग-सूत्र^१ में 'परशरीरावेश' के प्रसंग में इसका उल्लेख मिलता ही है।

वन्धकारणे शैथिल्यान् प्रचारसवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ।

योगी की इस प्रज्ञा की महासिद्धि से सम्बद्ध बहुत से दृष्टान्त महाभारत में भरे पड़े हैं। अपने गुरुदेवशर्मन् की पत्नी रुचि की इन्द्र से रक्षा करने के लिए विपुल का गुरुपत्नी के शरीर^२ में प्रविष्ट होना, महायोगी विदुर^३ का युधिष्ठिर के शरीर में प्रविष्ट हो जाना आदि उदाहरण उक्त कथन का समर्थन करते हैं। इस इतिहास के अतिरिक्त सोमदेव के 'कथा-सरित्सागर' में कथित योगानन्द^४ की कथा में तथा पञ्चतन्त्र की कई कथाओं में भी इसके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। श्री रामानुजाचार्य ने भी 'श्रीभाष्य' में इस प्रकार की कहानियों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। नाट्यकार ने इन्हीं स्थलों से प्रेरणा ग्रहण कर 'भगवदज्जुकम्' की रचना की है। संस्कृत रूपक-साहित्य में बोधायन कवि से पहले किसी अन्य कवि ने अपनी रचना में ऐसी घटना की ओर संकेत नहीं किया है। इसलिये भी इस प्रहसन पर प्राचीनता की छाप स्पष्ट नक्षित होती है। इसके अनुकरण पर रामपाणिवाद^५ जैसे परवर्ती नाटककारों ने भी अपनी कृतियों में इससे मिलती-जुलती कथा को स्थान दिया है।

'भगवदज्जुकम्' उस युग की रचना मालूम पड़ती है, जब धौद्ध धर्म पर से लोगों का विश्वास पूरी तरह नहीं उठ पाया था। बौद्धों एवं ब्राह्मण-

१- पातञ्जलीयसूत्र पृ० ३-३६

२- महाभारत-अनुशासन पर्व १६, पृ० ४०३

३- महाभारत, जायमबासिक पर्व ६९, पृ० ६७

४- कथासरित्सागर - ६८-६९, पृ० ११

५- देखिए- रामानुजाचार्य के 'भगवदज्जुकम्' की समीक्षा।

धर्मविलम्बी साधु सन्यासियों में विरोध प्रबल था परन्तु एक युवक के लिए धर्म-परिवर्तन करना कोई मामान्य बात न थी ।

यद्यपि प्रसृत एकाकी नाटक में इसके रचयिता ने नाम एवं स्थिति-काल का उल्लेख नहीं मिलता तथापि इसी की एक टीका में टीकाकार ने इसे बोधायन^१ नामक किसी कवि की रचना घोषित किया है । इसके आधार पर बोधायन ही इसके निर्माता प्रणीत होते हैं । सम्प्रत-सभाज इस नाम के दो व्यक्तियों में परिचित है जिनमें से एक कवि और दूसरे 'बादरायण' के सूत्रों का वृत्तिकार है । प्रो बिष्टरनिस्स ने इन दोनों को एक व्यक्ति माना है । परन्तु श्री अशांजनार्थ भट्टाचार्य ने इत्याहावाद ओरिगिण्डल काम्फेन्स (मनु १६०९ में) में पढ़े गए अपने शोध-पत्र में इस पर आपत्ति उठाई थी ।

Would it not be rather ludicrous to assume that the great Vrttikar could really demean himself to write such a petty farce as this ?

उनके कथनानुसार एक वृत्तिकार प्रहसन जैसे हीनकाव्य की रचना करके जनता के उपहारा का विषय कदापि नहीं बनना चाहेंगा । परन्तु सत्य तो यह है कि महूदय विद्याप्रेमियों के मानस-मर में किसी भी समय, किसी भी प्रकार की भाव-लहरियाँ उत्पन्न हो सकती हैं । गम्भीर विचाराणु में दूबा हुआ दार्शनिक भी कभी हास्य - व्यंग्य द्वारा अपने तथा अपने साथियों का चित्ररञ्जन करना मिल सकता है । एक ही व्यक्ति में ये दो विरुद्ध स्वभाव के घोनक लक्षण एक ही काल में भले ही न मिलें परन्तु प्रसंगवश उनकी चित्तवृत्ति बदल भी सकती है । नाट्यकला में इनका ही प्रदर्शन किया जाता है ।

गम्भीरता और विनोदवृत्ति एक दूसरे के सहायक हैं । मानसिक विश्रान्ति के लिये अनुरूप हास्य का मार्ग अपनाता है । महात्मा गाँधी जैसे सत

१- बोधायन कविरचिते, विद्यान भगवदञ्जुकाभिहिते कथितेप्रेमिणभोरे, विशदानपुता करोमि गूढार्थात् ॥ भगवदञ्जुलीयम् (टीका) पृ० १

योगी पुरुष का जीवन इस तथ्य को प्रमाणित करता है। वह कहा करते थे कि यदि विनोद का महत्व न समझकर मैं उसकी उपेक्षा करता तो मेरा जीवन ही समाप्त हो गया होता।

इसी प्रकार मानव में बौद्धिक विकास होने या उमके प्रतस्तल में काव्य के बीज के प्रस्फुटित होने का भी कोई निश्चित समय नहीं होता। भारतीय-साहित्य के इतिहास तथा पत्राक्षरि के महाभाष्य आदि ग्रन्थों का अवलोकन करने पर हमें वररचि (दाररुच काव्यम्) जैसे वैयाकरण के कवि होने का प्रमाण प्राप्त होता है। वररचि का अकेला (ग्रन्थ काव्य) उभयाभिमारिका शीपक एव नट नाटक (भाण) मिलता है। भाण एव प्रहसन स्वयम् एव ही कोटि के रूपक होते हैं। यदि वैयाकरण भाण की रचना कर सकता है तो एक वृत्तिकार के "भगवदज्जुक्कम्" जैसे प्रहसन के कर्ता होने में संदेह के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये। श्रीयुत वाचस्पति मीरोला के सम्स्कृत-साहित्य के इतिहास में ज्ञात होता है कि भगवदज्जुक्कम् ईसा की प्रथम दो शताब्दियों के आसपास लिखा गया एक प्राचीनतम प्रहसन है और पल्लवनरेश महेन्द्रविक्रमन् के एक शिलालेख में 'मत्तविनास' प्रहसन के साथ उक्त प्रहसन का उल्लेख होने के कारण कुछ लोग उसे भी "महेन्द्रविक्रमन्" (७०० ई.) की कृति मानते हैं। उक्त कथन के प्रथमांश में यह मर्यादा अवश्य दिखाई देती है कि यह प्राचीनतम हास्य प्रधान रचना है किन्तु यह महेन्द्रविक्रमन् की ही दमरी कृति प्रतीत नहीं होती। कारण, 'भगवदज्जुक्कम्' के आमुख में रचयिता का नाम नहीं मिलता, जबकि मत्तविनास की प्रस्तावना में इसके लेखक महेन्द्रविक्रमन् का नाम उल्लिखित है। यदि भगवदज्जुक्कीयम् भी मत्तविलासकार की ही रचना होती तो इसमें भी गुणभर, मत्तविलासादि उपाधिवा १ महेन्द्रविक्रमन् वर्मा का नाम होना चाहिये था। यहाँ उनके अपने नाम को मुक्त रखने का कोई कारण नहीं है।

इस विवाद में अधिक न पढ़कर हम इसे इसकी टीका में निर्दिष्ट बोधायन कवि की रचना मानकर ही इसकी समीक्षा करेंगे। यद्यपि टीकाकार का नाम भी हमें ज्ञात नहीं है तथापि इनकी टीका में गुरुचरणों की स्मृति में उद्धृत अपने गुरु द्वारा रचित श्लोक के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि ये भगवदज्जुक्कीय के टीकाकार नारायणभट्ट के एक शिष्य थे। उसी श्लोक

का 'गुरुभरतपुराधीश्वर'^१ पद मत्तावार के गुरुपायुर नामक मन्दिर के एक प्रसिद्ध देवता का नाम है।

इसी देवता की स्तुति के रूप में श्री नारायण भट्ट ने १५६० ई. में "नारायणीय" शीषक मन्दो की एक पुस्तिका लिखी थी। यह टीका भी १७ वीं सताब्दी के आरम्भ में इनके किसी शिष्य ने रची होगी। भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' नाटक पर इनके द्रमी शिष्य द्वारा रचित 'भावार्थ - दीपिका' टीका भी जयन्तमंगलम् की "पालीयम् मैन्युस्क्रिप्ट्स साइब्रेरी" में सुरक्षित है। इस टीका के अन्त में भगवदज्जुकम् प्रहसन का नाम भी निर्दिष्ट है।

इस लघु प्रहसन में कवि की विद्वत्ता पद-पद पर झलकती है। परिव्राजक और शाण्डिल्य के मुक्त से निःसृत जो वार्तालाप सुनाई देता है, उससे बोधायन कवि के साक्ष्य एवं योग शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित होने का पता चलता है।^२ इसमें साक्ष्य के सामान्य सिद्धान्त ही वर्णित हैं, अतः अन्य किसी प्रमाणिक एवं पुरातन ग्रन्थ में स्थित वाक्यों से उनकी तुलना नहीं की जा सकती। जहाँ शाण्डिल्य बौद्ध तथा साक्ष्य सिद्धान्तों को पहचानने में भूल करता और अष्ट-प्रकृतियों, षोडशविचारों, आत्मा, पञ्चवायु, गुणत्रय, मनस् आदि की चर्चा करता है, वहाँ उसकी इस तालिका में गिनाए गए सत्वर और प्रतिसत्वर ये दो अन्तिम पद साक्ष्यवार्तिका में उपलब्ध नहीं होते।

शाण्डिल्य - मुणादु भप्रवो । "अष्टौप्रकृतयः, षोडशविकाराः
आत्मा, पञ्चवायवः त्रैगुण्यः, मनः, सत्वरः, प्रतिसत्वरश्चेति ।"^३

तत्त्व-समास में ये पद प्राप्त होते हैं, परन्तु यह कोई प्राचीन ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता। अतएव उक्त विवेचना से भी "भगवदज्जुकम्" के समय का ठीक ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। परिव्राजक तथा शाण्डिल्य (गुरुशिष्य) की बातों में प्राचीन नैयायिकों की वेदवेदान्तविषयक शास्त्रीय चर्चा-शैली तथा गीता

१- भगवदज्जुकम् (टीका) - पृ० ४१

२- भगवदज्जुकम् - पृ० ४१

३- भगवदज्जुकम् - पृ० १०

के उपदेशों की छाप देखकर भी इसकी प्राचीनता का सहज अनुमान हो सकता है। यथा —

शाण्डिल्य - जो अजरो अमरो अच्छेज्जो अमेज्जो सो अत्ताणाम् ।

जो हसेदि, हासेदि, सप्पदि, भुज्जदि, वित्तमं च गच्छदि सो कम्मत्ताणाम् ।^१

तुलना कीजिये—

अच्छेद्यो अयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽप्योप्य एव च ।

नित्यं सर्वगतं स्यात्पुरुषलोऽयं सनातन ॥^२

इतना ही नहीं बोधायन की इस कृति की स्थापना में भास के नाटकों की तरह कर्ता के नाम तथा निवास-स्थान आदि के संकेतों के अभाव को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह रचना उस समय के बहुत पहले लिखी गई होगी जब से नाट्य-कार प्रस्तावना में अपने नाम एवं पते का निर्देश करने लगे थे। भरत के नाट्यशास्त्र में यह नियम लिखित है, परन्तु उसका पालन भास के परवर्ती कवियों ने ही किया। इन विशेष मसलों से लक्षित दृश्य काव्यों को श्री पिशरोतीजी किसी की स्वतंत्र रचना न मान कर एक संकलन मात्र (Compilation) कहते हैं। यहाँ तक कि भास के ख्याति-प्राप्त सुन्दर रूपकों के विषय में भी उनकी यही धारणा है। किन्तु भास-कवि के नाटकों की चारुता को देख कर उन्हें किसी के द्वारा किया गया संग्रह-मात्र मान लेना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार बोधायन कवि के इस उत्कृष्ट प्रहसन को भी ऐसा कहना ठीक नहीं मालूम देता।

साह्य तथा योगदर्शन के पण्डित होने के साथ-साथ बोधायन कवि के नाट्य-शास्त्र-विद् होने का प्रमाण भी इसी रचना में उपलब्ध होता है। भारतीय-नाट्य-शास्त्र के नियम का पालन न करके इसकी स्थापना में कवि ने रचयिता के नाम का उल्लेख करने के स्थान पर सूत्रधार के मुख से एक प्रहसन का अभिनय करवाने की सूचना दिनवाई है। उन्नी स्थान पर अङ्कित रूपक-भेदों की पुष्पिका^३ में नाटक और प्रकरण से विकसित होने वाले दशरूपकों के साथ

१- भगवद्गुणम् ५० ३१

२- श्रीमद्भगवद्गीता । २ २४.

३- भगवद्गुणम् - ५० ५.

‘वार’ और ‘सल्लाप’ को स्थान देकर परम्पराया स्वीकृत रूपक के दस भेदों की सख्या वारह तक पहुँचा दी गई है। इसी सूची में सम्मिलित ‘सल्लाप’ का नाम तो उपरूपकों के साथ परिगणित होने के कारण परिचित-सा प्रतीत होता है, परन्तु ‘वार’ एक नया ही नाम प्रतीत होता है। इनमें कवि ने हास्यप्रधान प्रहसन को ही प्रमुख स्थान दिया है।

दार्शनिक विवेचन के आधिक्य के कारण यह ग्रन्थ कहीं कहीं गूढ़ सा हो गया है, किन्तु दर्शनशास्त्र के सूत्र-सूत्रों वाक्य भी हास्यरस में ढूँढ़े होने के कारण नीरस नहीं प्रतीत होते।

परिब्राजक - रागद्वेषयोमध्यस्थता । कुत -

सुखेपुष्टु चेपु च नित्यतुल्यता
भयेपु हर्षेपु च नातिरिक्ताम् ।
सुहृत्स्वमित्रेषु च भावतुल्यता
वदन्ति ता तत्त्वविदो ह्यसगताम् ॥^१

+ + + +

ज्ञानमूल तप-सार सत्त्वस्थ इन्द्रनाशनम् ।

मुक्त द्वेषाच्च रागाच्च योग इत्यभिधीयते ॥^२

प्रसंगवत् यत्र तत्र शृंगाररसमूर्च्छनात्मक गीतियाँ श्रोता का मन मोह लेती हैं जिससे कवि के कवित्व का परिचय प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ जब गणिका वसन्तसेना और चेटी उद्यान में मधुरमुरो में गाती हैं तो इस उद्यान में बसने वाले सहकार-रूपी शरीरघारी कामदेव के ज्याघोष के समान मधुर स्वर से मुनि का मन भी मुग्ध हो जाता है—

परभृत - मधुकरनाद -

ज्याघोष काम एव उद्याने ।

तिष्ठति सहकारघरो

मुह्यति नून मनोपि मुने ॥^३

१- भगवद्गुणकम् - पृ० २३

२- भगवद्गुणकम् ११, पृ० ४८.

३- भगवद्गुणकम् १८, पृ० १६

इतना ही नहीं, कामिनियों के कटाक्ष का सखा कामदेव (कन्दर्प) जिसे मधुमास वसन्त ऋतु में है प्रफुल्लित 'अशोक' रूपी शरा से योगियों के हृदय को भी घायल कर देता है ।

मधुमास - जातदप
कन्दर्प कामिनीकटाक्षसख ।
अपि योगिनामिह मनो
विष्वनि कुल्लरशोकशरै ॥^१

पुष्पोद्यान में प्रविष्ट शाण्डिल्य द्वारा उद्यान का बणन नाट्यकार की वर्णनाशक्ति का परिचायक है ।

शाण्डिल्य — (उद्यान निरूप्य) ही । ही । चपभञ्जुणकदम्बणी-वणि
मिन्दुवारतिण ..मुहावह ग्रहो । रमणिज्ज खु ड्ड उड्ढाण ॥^२

सर्प द्वारा डसे जाने के बाद विष के प्रभाव से सतप्त गणिका द्वारा उसकी मानसिक एवं शारीरिक निधिलता का बणन बड़ा ही मर्म स्पर्शी है ।

गणिका - मीदन्ति विम्र मे सरोर उच्चमन्ती विम्र मे दिन्ती
भाउक्कम विम्र मे हिम्रम्र, रिण्णच्छन्ति विम्र मे पाणा । सहदु
इच्छामि ।^३

इस प्रसंग में 'भगवदञ्जुकीयम्' में चित्रित वैद्यजी का चरित्र भी विचित्र है । वैद्यराज लटकमेलकादि के वैद्य के समान अपने शास्त्रज्ञान में दृग्ग्य होने पर भी उनसे भिन्न है । इनकी भाषा सयत और सिष्ट प्रतीत होती है । उपचार करते समय 'पुस्तक पुस्तक' कह कर वैद्य अपना अज्ञान प्रकट करते हैं जो हास्य-जनक है ।

१- भगवदञ्जुयम् १६, पृ० ६०

२- भगवदञ्जुयम्, पृ० ३६

३- भगवदञ्जुकीयम् - पृ० ६७

गणिका - मूल ! वैद्य ! वृथावृद्ध ! प्राणिनामन्तकमपि न जानीये ।
कतमेनेष सर्पेण व्यापादितेति वद ।

गणिका - बूढ़ि, बूढ़ि, वैद्यशास्त्रम्

वैद्य - गुणादु भोदी ।

वातिका पेंत्तिवास्त्वेव श्लै - श्लै - अविहा ।

पुत्यम, पुत्यम ।^१

इस प्रहसन में गणिका की बधा आती है। इसका मूढम अध्ययन करने पर यह कृति शुद्ध प्रहसन की कोटि में रखी जा सकती है। कारण, इसकी गणिका वसन्तसेना भी धूर्त के मृच्छकटिक में चित्रित वसन्तसेना की तरह बुलजा नारी है। उसका रामलक्ष्मण के प्रति प्रेम भी वैसा ही निष्पट है जैसा मृच्छकटिक में चित्रित वसन्तसेना का चारुदत्त के प्रति। उसके आचार-विचार लटकमेलक, हास्यार्णव, नाटवाट आदि प्रहसनों में आलिंगित वेश्याओं में भिन्न हैं। उसका स्थान वही अधिक उच्चस्तर का है। इसमें (हेमचन्द्रादि लक्षण-शास्त्रियों के अर्थ में) विकृत भाषा का वही प्रयोग नहीं मिलता। नाट्य-शास्त्र के अनुसार शुद्ध-प्रहसन में भगवत्, तापस आदि को स्थान मिल सकता है।^२ भवदग्जुकीयम् में शाण्डिल्य एवं गुरु परिव्राजक को भगवत् माना जा सकता है। शिष्य उसे इस सम्बोधन से सम्बोधित भी करता है। इसलिये श्री मनकड^३ भी इसे शुद्ध-प्रहसन मानते हैं।

इसमें आदि स अन्त तक मरल किन्तु सरस भाषा में हास्य-व्यंग्य प्रस्तुत किए गए हैं। इसके पात्र भी विशिष्ट लक्षणान्वित हैं और कवि ने बड़ी निपुणता से इसे मञ्च के उपयुक्त बनाया है। अब तक के प्रकाशित प्राचीन प्रहसनों में सर्वोत्कृष्ट रचना होने के कारण इसे 'प्रहसनरत्नम्' ठीक ही कहा गया है। इसके कवि की गणना भी उत्कृष्ट कवियों में की जा सकती है।

१- भवदग्जुकीयम् - पृ० ६०,

२- ना ना अष्टाव १८, १०३ १०४, पृ० ४४८-४४९

३- Types of Drama, D. R. Mankad

इसकी विलक्षणता ने बहुत से उत्तरवर्ती कवियों को प्रभावित किया है जिनमें रामपाणिवाद का नाम प्रमुख है।

मदनकेतु प्रहसन

मदनकेतु चरित नामक प्रहसन में सूत्रधार की पक्तियों^१ में मद्रास के केरल प्रान्त के विख्यात कवि रामपाणिवाद को इसका रचयिता बतलाया गया है। इन्होंने १८वीं शताब्दी के आरम्भ में अपनी कृतियों के रूप में संस्कृत-साहित्य को बहुत कुछ दिया है। इनकी लीलावती एवं चन्द्रिका नाम की दो और रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं जो बीबी (रूपक) की कोटि की हैं। अनुसंधान-कर्ताओं में इस विषय पर मतभेद है कि प्रस्तुत प्रहसन के रचयिता रामपाणिवाद और कुछ मलयालम् रचनाओं एवंतु सन कथाओं के लेखक 'कुचन नम्पियार' दोनों एक ही व्यक्ति हैं। यह समस्या अब तक हल नहीं हो पाई है।

नव युग की नई कृति होने के कारण, कवि को अपनी योग्यता पर विश्वास नहीं है या यों कहिए कि वह बहुत विनयशील है। उदारतावश इन्हें पुराने विद्वान् रमिक-कवियों की रचना के बाद अपनी वस्तु प्रस्तुत करते समय सजोच होता है जो इसकी प्रस्तावना में स्थित सूत्रधार एवं पारिपाश्विक के वार्तालाप^२ तथा ग्रन्थ के अन्त में निहित वाक्यों^३ से स्पष्ट झलकता है। इन वाक्यों से कवि में आत्मविश्वास का अभाव भी स्पष्ट प्रतीत होता है। इसमें कवि की अयोग्यता नहीं, अपितु विनम्रता ही प्रकट होती है। उसकी निपुणता तो ग्रन्थ को सुन्दर ढंग से आरम्भ करने में ही फूटी पड़ती है। सरस्वती के चरणों में श्रद्धा के दो पुष्प अर्पित करने को व्याकुल कवि इसे सहृदयतमात्र के समक्ष प्रस्तुत कर ही देता है। कारण, जो सज्जन हैं वे

१- सूत्रधार. - नारिय । अथि शृणोषिष्यलघाववास्तव्येन राधपाणिवादेन विरचित मदनकेतुचरित नाम प्रहसनमस्मद्वशे वर्तते इति । मदनकेतुचरित पृ० २

२- स पुनर्यथार्थपुण क्रियते एव । किन्तु धामुनिकाना निवर्गान्यवबुध्यन्ति सन्त इति केवलमुदात्तवत् । मदनकेतुचरित पृ० २.

३- प्रहसनप्रारम्भेऽथैः स्पष्ट चेत् प्रहसनाभिधा लघताम् ।

नो चेत् पुनरन्यदिद विनोद रामपाणिवादस्य । मदनकेतु प्रहसन पृ० ५६

कवि के नए काव्य में यदि गुण का अणुमात्र भी देख लेते हैं तो उसके छिद्रों की परवाह नहीं करते । ऐसे लोगों के सामने वच्चा भी स्वकीय वृत्तियों द्वारा अपनी प्रगति का परिचय दे सकता है । देदीप्यमान चन्द्रमा के सामने भी क्या तारागण नहीं चमकते ? चन्द्र के साथ उनका भी अस्तित्व होता है ।

बालोऽप्यात्मकृतिप्रवाक्षनविधौ शक्नोति तेषां पुरो
दीप्तिं विन्दति चि न चन्द्रमहसामग्रेऽपि तारागण ॥^१

उदारमना रामपाणिवाद को इस प्रकार अन्यायम्भ करते देख हमें कवि कालिदास की याद आ जाती है, जिनके मन में मालविकाग्निमित्र को जनता को भेंट करते समय ऐसे ही भाव उत्पन्न हुए थे ।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवघम् ।
सन्त परीक्ष्यान्तरद् भजन्ते
मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि ॥^२

उनके अनुसार कोई काव्य पुराना होने पर ही उत्तम तथा ग्राह्य नहीं होता और न नया होने पर वह ख्याज्य ही होता है । वस्तुतः विद्वान् उमरी सम्यक् परीक्षा एवं समीक्षा करके उसके गुण तथा अवगुण अलग करके बतला देते हैं । इसके विपरीत मूर्ख दूसरों की कही हुई बातों का अन्यायपूर्ण अनुकरण करते हैं । किसी भी कवि की कृति को कसौटी पर कसने वाले विवेकशील पाठक या दर्शकों का एक भ्रमण समाप्त होता है । तदनुसार मदनकेतु को नव-युग की नवीन रचना होने के कारण बिना सम्यक्विवेचन के अवर मान लेना कवि के साथ अन्याय करना होगा । एतदर्थ इसका परिशीलन आवश्यक प्रतीत होता है । अस्तु—

इसमें बौद्ध भिक्षु विष्णुमित्र, शिवदास, राजा मदनकेतु, चन्द्रलेखा, अनगलेखा आदि की प्रणयलीला वर्णित है । मदनकेतु लका का प्रसिद्ध राजा

१- मदनकेतुचरित पृ० २

२- मालविकाग्निमित्र

है जिसने कलिंग पर विजय प्राप्त करके अपने कनिष्ठ भ्राता मदनवर्मा को वहाँ का राजा बना दिया ।

तब मे विष्णुमित्र नामक बौद्ध-भिक्षु अपने धर्म के विपरीत आचरण करने लगता है । वह अनगनेछा नामक वेदशा के प्रति अनुरक्त है और उसके प्रेम में ग्रन्था हो रहा है ।

‘कथमपि नयाम्येष दिवसान्’

+ + + + +

ध्याय ध्याय प्रिया ता पदमपि नोत्सहे किं करोमि ॥

इस प्रकार के प्रलापों से उसका चरित्र जनता के सामने भ्राता देव अपने राज्य में नैतिक पतन हो जाने की चिन्ता से आक्रुत राजा राज्य में धर्म की सुरक्षा के लिए अद्भुतयोगविद्या के ज्ञाता कापालिक शिवदास का सहारा लेता है और शिवदाम को मिश्र विष्णुमित्र की चारित्रिक बातों में अवगत कराकर इसका प्रतिकार करने का सखित्य आदेश करता है । अपने मित्र कलिंगराज मदनवर्मा के अनुरोध पर लकानरेण मदनकेतु के दरबार में पहुँचकर शिवदास उससे स्वयं मिलता है । बातों ही बातों में मदनकेतु के मन में स्थित द्विड देश की रूपवती गणिका चन्द्रलेखा से प्रेम की बात को जानकर शिवदास उसकी प्रणयलीला में सहायक शीठमर्द का कार्य सम्पादन करने का वचन देता है ।

राजा - (सहपंमुत्पाद्य) सखे कथयामि ते भूतार्थम् ।

.....चन्द्रलेखेति प्रख्यात किमपि गणिकारत्नमनुभूयते । तपहि-

प्रत्यङ्गमङ्गनायास्तुङ्गकुचाभोगभुग्नमध्याया

दिवरद्विहरतिमततविरहय्यानङ्गइनमाम् ॥^१

कबुकी राजाज्ञा से मिश्र को राजा के समक्ष उपस्थित करना है । अनगनेछा की वृद्धामाता उसे खींचे जाते हुये देखती है । उसकी शिकायत यह है कि विष्णुमित्र उसकी पुत्री अनगनेछा के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध

वलात्कार करता पाया गया। उसे उचित दण्ड मिलेगा, इस आशा से आश्वस्त होकर वृद्धा लौट जाती है। कामुक भिक्षु बुरी तरह से ताड़ित होने पर भी, इसलिये प्रसन्न है कि इस बहाने उसे अपनी प्रेमिका के साथ कुछ क्षण व्यतीत करने को मिलेगा—

कुट्टिन्मा दृढमुष्टिकुट्टिकसर्तैर्निष्पिष्टसन्धीन्मपि
प्रायो नातिरुज्ज भजन्ति विकसन्चित्तस्य गात्राणि मे ।^१

विष्णुमित्र दरबार में बतलाता है कि वह रानी शृंगार मञ्जरी की आज्ञा से भनगलेखा को बुलाने के लिये गया था, कारण रानी को भनगलेखा के नाम से संबोधित करने से राजा का उसके प्रति अनुराग झलकता था। राजा रानी की चाल को समझ कर उसके विनोदी स्वभाव की सराहना करना नहीं भूलता।

संस्कृत साहित्य में योगियों एवं ऐन्द्रजालिकों द्वारा अद्भुत वस्तुओं का प्रदर्शन करने की परम्परा दिखाई देती है। राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी तथा हय की रत्नावली में इस प्रकार के आश्चर्यजनक वर्णन मिलते हैं। उदाहरणार्थ कर्पूरमञ्जरी सट्टक में राजा भैरवानन्द नामक कौतुक प्रदर्शनकर्ता ऐन्द्रजालिक से कोई आश्चर्यजनक वस्तु दिखाने का अनुरोध करता है। भैरवानन्द वही असम्भव को भी सम्भव कर दिखाता है —

दर्शेमि तपित्तस्त्रिण वसुधावदृश्य
यमेमि तस्य वि रविस्त रह एहद्वे ।
आणेमि जक्सुमुरसिद्वगणमणाम्रो
त एतिथि भूमिवत्तए मह ज ए सज्ज ॥
अत — (भैरवानन्दो ध्यान नाटयति)
राजा — अह ह, अच्छरिअ अच्छरिअ.....
आणीदा इअमच्चु देवकजणणी जोई सरेणामुणा ॥^२

१- भट्टनवेतुचरित पृ० १३

२- क म १ २१ २६

योगीश्वर के इस चमत्कार को देख दशक आश्चर्य में डूब जाते हैं। इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए यहाँ कवि ने योगिराज शिवदास का सहाय लिखा है। ध्यानस्थ शिवदास चन्द्रलेखा को राजा के सामन उपस्थित कर दशको को एक जादूनगरी में पहुँचा देता है।

अवतरतु धरित्रीमेव रावा-गताङ्क
पिबतु वक्त्रघोरस्चन्द्रिक्वामेतदीयाम् ।
अपि च विकचपुष्पा मल्लिका जङ्गमत्व
ब्रजतु भजतु चैनामुत्सुको भृङ्गराज ॥^१

ध्यान-मग्न शिवदास द्वारा सुन्दरी चन्द्रलेखा के नैसर्गिक सौन्दर्य को न देख सकने के कारण राजा को उस कापायनिक पर दया भी आती है। उसकी मनोहारिणी छवि का चित्रण करने वाले श्लोक कवि की वरणाशक्ति एवं प्रकृति के सूक्ष्म-निरीक्षण के परिचायक हैं। यथा—

तल्ले शिवदास । मुधा सतु विफल्पासि सभाविनिमीलनेन लोचन-
मुगलम्^२ ।... पश्य पश्य

संस्कृत-नाटको में राजमहिषी राजा के प्रमुख व्यापार में बाधक के रूप में प्रदर्शित की जाती रही है। विष्णुमोर्वशीय, कर्पूर-मञ्जरी एवं रत्नावली आदि रूपकी के परिशीलन से इसकी पुष्टि होती है। रामपाणिवाद के मदननैतुचरित में भी राजा की धर्मपत्नी भृङ्गार-मञ्जरी की उपस्थिति प्रेम विह्वल राजा एवं चन्द्रलेखा के मितन में बाधा डालती है। चन्द्रलेखा द्वारा यह संकेत किये जाने पर भी कि महारानी की ओर से इसका विरोध होगा, प्रेमान्ध राजा चिरप्रतीक्षित प्रिया के साथ मिलन के सुख को त्याग नहीं सकता।

राजा — प्रिये । मा मवम् । कुत
देवीविरोधमनुशङ्क्य तवाङ्गसङ्ग —
सौम्य चिरामिलपित कथमुज्जहामि ।
व्यानीमयेन गतपापस्तकन्दरस्थ
को वा पटीरतस्सारङ्गपाकरोति ॥^३

१- मदनकृत प्रहसन २२, पृ० १२

२- मदनकृत प्रहसन २७, पृ० १३

३- 'कुत' '०१' '०१' '०१' '०१'

प्रेमिका की आशुका को निर्बल सिद्ध करने के लिये वह मलय पर्वत की वन्दराश्रम में स्थित नागिनो के साथ रह कर भी अपनी स्वाभाविक शीतलता को न छोड़ने वाले चन्दन वृक्ष का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार चन्दन को प्राप्त करने वाला सर्प के डर से मैदान छोड़कर भाग नहीं सकता उसी प्रकार कामासक्त राजा भी रानी शृंगार-मञ्जरी के भय को त्याग कर चन्द्रलेखा के रूपसावण्य के सामने अपने घुटने टेक देता है। इस प्रसंग में राजा के मुख से निकले हुए उद्गार कुमारसम्भव में पार्वती के कठोरतप के आगे हारे हुए शिवजी के वचनों से मिलते हैं।

सुन्दरि !

विष्णोः कद्रविष्णौ केवलमहं शीतोऽस्मि दासोऽस्मि नै ।^१

यद्यपि कुमारसम्भव में कानिदाम का उद्देश्य भिन्न है, उससे रामपाणि-वाद की तुलना नहीं की जा सकती तथापि यहाँ कवि में कानिदास का अनु-करण करने का प्रयास स्पष्ट लक्षित होता है।

‘अथ प्रभृत्यवनताञ्जि तवाम्बिदासः क्रीतस्तपोन्निरिति ॥’

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती। लम्बे के पीछे छिप कर राजा तथा चन्द्रलेखा की कामकैलि को देख लेने के कारण क्रोध से वीखलाती हुई रानी को देख राजा के सामने महान् सकट उपस्थित हो जाता है।

राजा (सबिलक्ष स्वगतम्) — हन्त ! महति सकटे पतितोऽस्मि।

(इति चन्द्रलेखा मुञ्चति)

अब कामोन्मत्त राजा का व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है। वह चौंकर चन्द्रलेखा को दूर कर देता है। इस दृश्य से शृंगारमञ्जरी के हृदय में सपत्नी के प्रति जागी हुई ईर्ष्या का कवि ने भाविक चित्रण किया है।

देवी मा धु मा धु वालीमण्यं चन्दनरसमुवेहि ॥^२

१- मदनकेतु प्रहसन ३०, पृ० १८

२- मदनकेतु प्रहसन पृ० २०

(इस स्थल को पढ़ते समय विष्णोर्वज्रीय के कुछ प्रसङ्गों तथा रत्नावली की कामवदता के सापरिका के प्रति ईर्ष्या-भरे व्यवहार का स्मरण हो जाता है ।)

राजा के रंगे-हाथों पकड़े जाने के कारण यह स्थान दर्शकों के लिये मनो-विनोद का विषय बन गया है। कापालिक शिवदास के समझाने-बुझाने पर रानी शृङ्गारमअरी मान जाती है और चन्द्रनेखा के साथ भगिनीवत् व्यवहार करने लगती है। अन्त पुर में उसको अलकारों से मण्डित भी किया जाता है, जहाँ वह मदनकेतु की प्रतीक्षा करती है।

शिवदास के घमस्कार को देखकर भिक्षु विष्णुमित्र प्रभावित हो जाता है। वह उसके सामने छपने मनोरथ की पूर्ति में विलम्ब के कारण उत्पन्न व्याकुलता को प्रकट करता है। काम के वश में पड़े हुए भिक्षु को-जो कर्तव्याकर्तव्य तथा औचित्यानौचित्य के विवेक में शून्य था, देख कर शिवदास को कलिंग नरेश मदनवर्मा को घम की सुरक्षा में साथ देने का-दिया हुआ वचन याद आ जाता है।^१

इसके लिये वह कोई नई बाल चलना चाहता है। वह विप को विप में ही मारने का यत्न करता है। 'कण्टक कण-केनैव' के अनुसार वह बौद्ध भिक्षु को विषय-वासना में लिप्त करके इतना घृणा देना चाहता है कि वह भविष्य में इस मार्ग पर चलने का साहस ही न कर सके।

साधूक्त मदनवर्मणा । (विचिन्त्य) भवतु । चापल्यस्य परा काष्ठा मयायमनुभाव्यते ॥ ततस्ससाग्भोगेषु विरक्तिं प्रापयिष्यते ॥^२

वह भिक्षु को मद्य से विमुख करने के लिये मद्य का गुणगान करता है और उसे मद्य पिताकर पूर्ण तृप्त करने का यत्न करता है। पहली बार भिक्षु के मना करने पर भी 'सायात्परिग्राडिति युक्तमेतत्' इत्यादि कहता हुआ उसे पान करा ही देता है।^३

१- मदनकेतु प्रहसन २७, पृ० २३, १३, पृ० २,

२- मदनकेतु प्रहसन पृ० २३.

३- मदनकेतु प्रहसन २२, पृ० २४

यहाँ गूढ़ व्यर्थ छिपा हुआ है। भिक्षु के घम-विह्वल व्यापार पर कटाक्ष किया गया है। विष्णुमित्र जैसे दूसरे ढोंगियों पर भी यह बात लागू होती है। इसी प्रसंग में राजा भी राज्य में माधु-सन्तो को मगान करने एवं वैश्यागामी होने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। राजा की यह घोषणा प्रसन्न होने के कारण हार्य की मृष्टि करती है।^१

शिवदास धनगलेला द्वारा यह काय सम्पादित करवाना चाहता है। गणिका का काम ही लोगों को शृंगार में लिप्त कर बह्वाना होता है। वैश्या घन-लोभुष होनी है। सत्पति ही गणिका का प्रियतम होता है। चाह वह भग्ना, लूला, लँगडा ही क्यों न हो ?^२

“यतो वित्तापत्ति स खलु गणिकानां प्रियतम ॥”

जब धनगलेला विष्णुमित्र को रास्ते पर लाने को तैयार नहीं दिखती तो शिवदास भिक्षु को उसके आश्रम की पवित्रता और वेद्य-गृह की अपवित्रता में भेद बतलाता हुआ इन कलुषित मार्ग को छोड़ देने की सलाह देता है।^३

“कदासीं सप्तासिन्धोस्तुतरणतरणियोगिनामाश्रयस्ते”

अर्थात् —

कहाँ समार-सागर को सरलता से पार करा देने वाला योगियों का आश्रम और कहीं अन्त्रोदय की शोभा से रजित रात्रि के समान वेद्य-बधुओं के सग का क्षणिक सुख ? (दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है)। भूत अपने कल्याण की कामना करते हुए सज्जनों की उज्ज्वल सभा के बीच वास करो, तीर्थों का स्नान करके इस दुराशा से मग्न हुए मन का परिष्कार करो।

शिवदास योगविद्या में अनगजम्बा के शरीर में प्रविष्ट होकर भिक्षु के मन में वैराग्य उत्पन्न करके सपरिवार राजा को दिखलाना चाहता है। प्राय ही अग्नि का मूल कारण होती है।

१ मदनवेनु ग्रन्थ ४०, पृ० २४

२ मदनवेनु ४२, पृ० २६

३ मदनवेनु ६०, पृ० ३१

ह्रीमून्स्योपतापस्य स्त्रिय एव प्रतिक्रिया ।

वह्निश्च वह्निमूलस्येत्यामनन्ति मनीषिणः ॥^१

वह अपनी योगिक शक्ति से अनगलेखा को मर्प से डँसवा कर उसकी आत्मा को किसी जन्तु में डाल देता है । इस घटना से वस्तु होकर भिक्षु राज-राज्य के पास पहुँचता है । इसी बीच शिवदास की आत्मा से युक्त अनगलेखा के शरीर को क्षतता-फिरना देख राजा-रानी आदि आश्चर्य में डूब जाते हैं । इस स्थान पर बोधायन कवि के भगवदज्जुकीय का प्रभाव स्पष्ट है । यहाँ भी कथावस्तु द्वारा हास्योत्पादन किया गया है । अनगलेखा भिक्षु के प्रति अपना प्रेम प्रकट करने लगती है । उसका प्रेम प्रकाशन अपनी सीमा को पार कर इतना बड़ जाता है कि भिक्षु को भरी सभा में उसके इस व्यवहार से लज्जित होना पड़ता है । वह लज्जा में गड़ जाता है । इतना होने पर भी वह अनगलेखा को हृदय से चाहता है । परन्तु अनगलेखा के व्यवहार में नयुचित कुल, शील तथा लज्जा के अभाव को देख कर वह ऊब जाता है । बीभत्स-रस का संचार होने के साथ-साथ उसकी बातों से प्रामीणता भी टपकने लगती है । इसके फलस्वरूप पहले जो कामुक था, अनगलेखा पर प्राण देता था, वही उसका तिरस्कार करने लगता है ।

‘ बीभत्सन्ते जगति युवतिम्भ सुमतयः ।^२

तिरस्कृत होकर शिवदास की आत्मा में युक्त अनगलेखा का शरीर भागना चाहता है । राजा मदनकेतु भी रुष्ट होकर उसे दण्डित करने की धमकी देता है । उसी क्षण प्रविष्ट होने वाले डाम्भक के हाथ में शिवदास के शव को देख दर्शक योगिराज की आकस्मिक मृत्यु पर दुःख प्रकट करते हैं । शिवदास की आत्मा अनगलेखा का तब त्यागकर अपने शरीर में पुनः प्रविष्ट हो जाती है । माता को पुत्री के लिये दुःखी देख शिवदास उसे भी पुनर्जीवित कर देता है । इस प्रकार अनगलेखा द्वारा दिखलाए गए प्रामीण व्यवहार का रहस्य भी खुल जाता है ।

१- मदनकेतु ६२, पृ० २३.

२- मदनकेतु पृ० ४०

भूमौ पल्लित सचिनोति दुरित घम्यान् पथ प्रच्युतो,
 लोकस्तन् खलु भूपती परिणमत्यम्भो ययाम्भोनिधौ ।
 इत्यालोच्य हिनाय ते यतिमम् दुर्मणिपातोन्मुक्त
 तत्त्व बोधयितुनुभवाधिजलधरेप प्रयत्नो मम ।^१

इस प्रकार कवि ने शिवदाम नामक पात्र द्वारा एक उच्च उद्देश्य की पूर्ति करवाई है जिसमें जन-बन्ध्याणकारिणी भावना छिपी है ।

परिपदमाराधयितु प्रयतेया मर्वथा दुराराचाम् ।
 गणितमनङ्गलेखा भिभुरभो विष्णुमित्र इव ॥^२

वैदर्भी रीति में रचित मदनकेतु प्रहसन अपने ढंग का निराला है । १८ वीं शताब्दी की रचना होने पर भी इसमें १२ वीं शताब्दी के लटकमेल-कादि प्रहसनो में चित्रित समाज का ही चित्र प्रकट किया गया है । लटकमेलकादि की भाँति वही-वही अश्लील कथनों से युक्त होने पर भी रचयिता ने इसे हम ढंग से प्रस्तुत किया है कि इसमें अन्य भ्रमयुगीन प्रहसनो की अपेक्षा अभद्रता-सूचक दृश्य कम पाये हैं ।

इसमें कुछ ऐसे तत्व हैं जो पूर्णतया काव्यनिष्ठ हैं तथा अद्भुतरसात्मक (Romantic) जगत् का निर्माण करते हैं—जैसे योग-विद्या का अतिरञ्जित चित्र । भारत में योग विद्या का प्रभाव प्राचीनकाल से रहा है, परन्तु आधुनिक युग की दृष्टि में इसे अस्वाभाविक माना जा सकता है । फलतः आज के विचारक इसे अवर रचना मान सकते हैं । आंग्ल-साहित्य में भी शेक्सपियर ने इस प्रकार के कृत्रिम रोमान्टिक और काव्यनिष्ठ तत्वों का सहारा लिया है—जदाहरणार्थ मैकबेथ हेमलेट, 'मिडसमरनाइट्स ड्रीम' आदि में प्रेतात्माओं का प्रवेश कराया गया है । चलचित्र जगत् में आज भी दर्शकों को जादूनगरी में पहुँचा देने वाले दृश्य दिखाए जाते हैं, जिन्हें जनता बड़ी रुचि से देखती है । हममें स्पष्ट है कि आधुनिक युग में भी ऐसी-वानों का सम्मान होता है ।

१- मदनकेतु ११० पृ० १४

२- मदनकेतु १. पृ० ३, मदनकेतु ११४ पृ० ११

कारण, अग्रिय सत्य की अपेक्षा कल्पना में रक्षित असत्य चित्रण अधिक प्रभावोत्पादक हुआ करता है ।

इस प्रहसन में मुख्यतः बौद्ध भिक्षु विष्णुमित्र और शिवदास की कथा वर्णित है । फिर भी इसका शीर्षक 'मदनकेतु' रक्खा गया है । नाट्याचार्यों ने नाटक-सम्बन्धी जो नियम बतलाये हैं, उनका पालन न करके कवि ने राजा के नाम पर ही इसका नामकरण कर दिया है ^१

यहाँ दो प्रकार के राजाओं का चित्र उपलब्ध होता है । एक है रात दिन भोगविलास में रत रहने वाला लका का राजा मदनकेतु, जो प्रेम मार्ग में बिभ्रामघात करता है । उसकी बातों से उसकी छलियावृत्ति और नारी की मोहिनी-शक्ति के आगे उसकी पराजय भन्नकनी है ।^२

" नम्राभापैरमृत - मधुरैरन्यमाह्लादयन्ती
नारीनाम्ना जयति हि जगन्मोहिनी कापि शक्ति ।।

कवि ने उस पर गहरा ध्येय कसा है । रानी की उपस्थिति में वह उसे पैलोक्ष्य-रत्न बतलाता है और रानी के जाने पर शिवदास ने चन्द्र-मेखा के प्रति अपने प्रेम को बात व्यक्त करता है ।^३

मदनकेतु पर भगवदञ्जुकम् का प्रभाव

इसके विपरीत दूसरा राजा है कनिगराज मदनवर्मा, जो सदा राज्य में धर्म स्थापना की चिन्ता में लीन रहता है । योग-विद्या द्वारा एक महान् उद्देश्य की पूर्ति करने की कवि की कल्पना निम्नस्वेह उत्कृष्ट है । यह प्रेरणा कवि ने बोधायन के 'भगवदञ्जुनीयम्' प्रहसन से ली होगी, ऐसा भासित

१- नामकार्यं नाटकस्य गणितार्थ-प्रकाशम् । यथा - 'रामायणम्' ।

नायिकाभानात्मज्ञा-अकरणादिषु । यथा मालतीमाधवादि । नाट्यासट्टकादीनां नायिकाविवेकणम् । यथा - रत्नावली वर्षरामादयः ।

साहित्यदर्पण.

२- मदनकेतु पृ० ४५.

३- मदनकेतु १३५, पृ० ७.

होता है। मदनकेतु प्रहसन एवं भगवदञ्जुकीयम् के तुलनात्मक अनुशीलन से दोनों कृतियों में निम्नान्वित साम्य दिखाई देता है यथा —

भगवदञ्जुकीयम्	मदनकेतु प्रहसन
(क) यहाँ वसन्तसेना की मृत्यु का कारण सपदशन है।	अनगलेखा के मरण का हेतु भी मर्प है।
(ख) भगवदञ्जुयम् में परित्राजक वसन्तसेना के शरीर में प्रविष्ट होता है।	यहाँ शिवदास अनगलेखा के शरीर में प्रवेश करता है।
(ग) हास-परिहास के पोषक के रूप में किसी स्त्री-पात्र को योगी द्वारा प्रस्तुत किया गया है।	रामपाणिवाद भी अपनी कृति में हास्य की पुष्टि के लिये योगी के द्वारा एक नारी-पात्र को स्थान दिलवाते हैं।
(घ) प्राकृत भाषी पात्र कभी कभी संस्कृत बोलने हैं जैसे वसन्तसेना ^१ धमकी बेटी कामदेव की स्तुति करते समय संस्कृत में गीत गाती है।	चन्दनिका नामक दासी संस्कृत में बोलती है। ^२ शिवदास के तन में प्रविष्ट अनगलेखा ^३ प्राकृत में भाषण करती है परन्तु कभी-कभी संस्कृत बोलना आरम्भ कर देती है।

नाटकीय सविधान की दृष्टि से उक्त प्रहसनद्वय में कुछ अन्तर भी दृष्टिगत होना है। भगवदञ्जुकम् में भास के नाटको की विशेषताएँ प्राप्त होनी हैं। यथा नान्दी का अभाव, स्थापना में नाटककार के नामोल्लेख की अनुपस्थिति और मञ्च पर वध दिखलाना आदि बातें भामनाटकचक्र के नाटको के समान ही वोघायन कवि की रचना में उपलब्ध होती हैं। इसके विपरीत मदनकेतुप्रहसन में इनका अभाव है। भास के बाद के रूपककारों का तरह रामपाणिवाद ने भी प्रस्तावना में अपने नाम घाम का परिचय दिया

१- भगवदञ्जुकम् श्लोक १८-१९, पृ० २६६०

२- मदनकेतु ४३, पृ० ७३

३- मदनकेतु ८३ पृ० ४३

है। नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार मंच पर वष के दृश्य भी (दो चार क्षणों तक रहने वाली मरणावस्था को छोड़ कर) नहीं प्रदर्शित किए हैं।

इस प्रहसन में कवि ने पहले के व्यंग्य-रूपकों की भाँति लोगों को बेवकूफ हँसाने का ही प्रयत्न नहीं किया है अपितु काव्य की माहित्यिक छटा का सुन्दर प्रदर्शन भी किया है। प्रसंगानुसार कवि लेखन शैली बदलने में भी पटु है। भिक्षु द्वारा प्राप्त कालीन सूप की किरणों का वर्णन उत्कृष्ट कल्पना का दृष्टान्त है।^१ मदनवर्मा द्वारा मदनकेतु को प्रेषित सन्देश में अपने दरबार के सामन्त राजाओं की राजभक्ति का प्रभावोत्पादक वर्णन है।^२

विषयानुबल दीपसमासयुक्त लम्बे वाक्यों का बाहुल्य भी इस प्रहसन में मिलता है। कहीं-कहीं कवि की गौर्यात्मक शैली दशक के हृदय में माधुर्य का सञ्चार करती है।^३

भृंगार-वर्णन के प्रसंग में भाषा सजीनधर एवं भावारमक हो उठी है। प्रेमी प्रेमिका के प्रेम में विमोह होकर उनके चरणों में घपना सिर रख देता है।

जननयनचकोरी — चन्द्रिके, चन्द्रलेखे ।

विसृज सुतनु । मौन माहुरो नापरायी ।

इति निपतति जन्मन् पादयोस्ते प्रमादा -

दधिमुवि लिखितायाश्चित्त-सकल्पिताया ॥^४

इस प्रकार रामपाणिवाद के मदनकेतु प्रहसन में नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार सन्धि, सन्ध्यङ्ग, सात्वाङ्ग, और अङ्गु द्वारा सम्पादित बौद्ध भिक्षु विष्णुमित्र जैसे निन्दनीय पुरुष का कवि-कल्पित वृत्तान्त है। यह राम पाणिवाद का बेवकूफ विनोद ही नहीं, प्रत्युत प्राचीन आचार्यों की रुढ़ि को न तोड़ते हुए इस क्षेत्र में उनका सफल प्रयास है।

१- मदनकेतु १०, पृ० ६

२- मदनकेतु १५, पृ० ८

३- मदनकेतु ३४, पृ० २३.

४- मदनकेतु २६, पृ० १७.

हास्य-चूडामणि प्रहसन

चतुर्भण्डों की विवेचना करते समय वत्सराज के कर्मरचरित भाग का उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ उनके हास्यचूडामणि प्रहसन की चर्चा की जायेगी। इस प्रहसन में भाग्यल सम्प्रदाय के किसी आचार्य के अध्यापन के विचित्र ढंग तथा उनके केवलीविशेषज्ञ ज्ञान का अतिशय हासिक दृष्टि के प्रयोग द्वारा उपहास दिया गया है। वही गुरु-शिष्य के वेदयामत प्रेम पर भी आक्षेप किया गया है।

ज्ञानराशि - श्रिय ! कष्ट क्ती श्रोत्री तवेमी सवृत्ता ?

शिष्य - भाएरासे । उवरमदाविमै सवृत्ता ।

ज्ञानराशि - (म.गोपम्) मूर्य नामग्रहणेन मा व्याहृतसि ?

+ + + +

शिष्य - नमस्ये पाण्डुरैनाह । नमस्ये विश्वतत्त्वम् ?

नमस्तैस्तु मृपागोप महापुरुष भूर्भुवः ।

ज्ञानराशि - (म.गोप) का कुत्र ? पाण्डुराद्य इति नाग्राहृतसि ।

(इति हन्तुमुपक्रमते)

+ + + +

ज्ञानराशि - (स्वगतम्) नमस्तोऽयम् । सवह एवम्प्य व्येषम् ।

(प्रकाशम्) वत्सराजिष्ठन्य एहो हि ।

शिष्य (सोद्वेगम्) ए पागामिस्त अण्टसीलो मु मुम् ।

+ + + +

शिष्य - ए प मुम् बाणमि केवली विज्ञा ।

ज्ञानराशि - मूख । यहमेव शेषती जाने कि.मु... ..

कवि क भाण और प्रहसन तथा इसी कोटि के अन्य ग्रन्थों में अधिकतर मिसरी स्तुति की गई है।

वत्पाण वितरन्तु न पृथुवटाहृदाद्य-विस्तारिण

न चूडामणिन शिर मुरधुनोवारावुत्तारा कर ।

गानुत्प्रेष्य मरोम्भभार - विचुने मुष्मारक्ष्ण्डमृपा

हेरम्ब घटपत्थनारनमभुदुद्रामिहासो हर ॥^१

अपि च -

भूयिष्ठा परिरम्भकेलिषु भुजा मोत्कण्ठमालोके
नेत्राणि प्रचुराणि चुम्बनविधौ भूयासि वक्त्राणि ते ।
इत्य भूरिवधूविलास-घटनासञ्जम्य काऽह तव
प्रोक्त्वा क्रोध-विस्फुर्येति शिवया स्मेरो हर पातु व ॥^१

इन्हें देखकर ऐसा भासित होता है कि ऐसी हास्यपरक रचनामा के रचयिता नंद और शास्त्र सम्प्रदाय के अनुयायी रहे होंगे । इनमें तथा श्रव्य-काव्य के कतिपय रूपों में प्राप्त धूर्तों का चित्र एवं वैदिक-वर्णन का आधिक्य इस बात की ओर सकेन्द्र करता है कि मध्ययुगीन भारत में वेश्याओं और कपटी लोगों की संख्या बहुत बड़ गई थी । सम्भवत बड़े नगरों और राज-धानियों में इस प्रकार की जनवृद्धि का कारण रहा होगा छोटे-छोटे राज्यों का अतिविलासी होना । परिणामस्वरूप तरकालीन साहित्य में अफित प्रकृति-नदी भी ठगोका-सा आचरण करती पाई जाती है । वत्सरज के एकाकी प्रहसन हास्य-चूडामणि में आचार्य ज्ञानराशि की कुछ हँसी उड़ाई गई है जो 'वेदली' विद्या के ज्ञान के सहारे गड़े हुये घन तथा खोई हुई पुरानी निधि का सहज ही पता लगा लिया करता था । अपने धार्मिक कृत्यों को छोड़कर लौकिक कार्यों में उसकी अनुरक्ति को ही ब्रह्म ने व्यर्थ का शिकार बनाया है ।

हास्यचूडामणि में प्रकृति का चौर-कर्म दंगनाय है —

पत एण्ण सम्मत्ति परिमुत्तिम् विसमत्तिमिरचोरेण
एमाऽम्बर — लक्ष्मीभंगवन्त मूरमनुमरति ।^२

अर्थात् रात्रि के घोर तिमिर रूपी चोर द्वारा अपहृत सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिये यह अम्बर-लक्ष्मी उपा भगवान् मूर्धन्य का पीछा करती चली आ रही है ।

इस प्रकार ब्रह्म ने सामाजिकों का चित्तानुरक्षण करते हुए उनके मनो-विवारों का परिष्करण करने का सुन्दर प्रयास किया है ।

१- हास्यचूडामणि २.

२- हास्यचूडामणि ६.

धूर्तसमागम

मिथिला नरेश हरिसिंह देव के राजकवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर के धूर्त-समागम प्रहसन का भी नामोल्लेख महत्वपूर्ण है। ज्योतिरीश्वर ने वर्णन रत्नाकर^१ (मैथिल भाषा में) और पचसायक नामक अलंकार ग्रन्थ भी लिखे। नेपाली जनता ने नाट्यकला के साहित्यिक रूप को इन्हीं से ग्रहण किया। ज्योतिरीश्वर के काल एक स्थान के विषय में मतभेद नहीं है। 'धूर्त-समागम' की प्रस्तावना में वर्णित मिथिला-नरेश और इतिहासप्रसिद्ध तुगलकवाड़ा के मुसलमान राजा गयासुद्दीन तुगलक के बीच हुई लड़ाई की ओर संकेत किया गया है। वही कवि ने अपनी बशावती पर भी प्रकाश डाला है। तदनुसार ये मिथिला के धीरेश्वर कुलोद्भव रामेश्वर के पौत्र तथा बनेश्वर के पुत्र थे। कवि के इस प्रहसन की किसी प्रति में उनके प्राथम्यदाता का नाम हरिसिंह देव और किमी में नरसिंह देव मिलता है। यही भेद विद्वानों में प्रचलित ज्योतिरीश्वर-ठाकुर के कालविषयक मतभेद का प्रमुख कारण है। इन आधार पर जर्मनविद्वान लासेस ने अपने एन्थोलोजिया संस्कृतिका (बर्लिन १८३८ ई०) में ज्योतिरीश्वर को विजयनगर के नृपति नरसिंहदेव का, जिनका समय १४८६ से १५०८ ई तक बताया जाता है, दरवारी कवि माना है। हरप्रसाद शास्त्री नेपाल दरबार पुस्तकालय से प्राप्त धूर्त-समागम की एक प्रति के अनुसार इनके प्राथम्यदाता का नाम हरिसिंह देव (१३२३ ई) ही मानते हैं। अतः उनके अनुसार कवि का समय तेरहवीं शताब्दी होना चाहिये। श्री कृष्ण जी (बबुआ जी मिश्र) छठे कर्णाटवर्षीय राजा हरिसिंह देव के शासनकाल में प्रारम्भ की गई मिथिला की पंजी में कवि के नामोल्लेख को न पाकर उन्हें हरिसिंह देव का पूर्ववर्ती मानते हैं। तदनुसार भी कवि का समय तेरहवीं शती ही प्रतीत होता है। श्री सुनीलकुमार चटर्जी ने 'वर्णरत्नाकर' का सम्पादन करते हुए उसकी भूमिका में कवि के काल-विषयक उद्गार अंकित किए हैं। उनसे ध्वनित है कि इनका समय चौदहवीं शती रहा होगा। कतिपय आधुनिक आलोचकों ने पंजी में भी ज्योतिरीश्वर के नाम को ढूँढ निकालने का बल किया है और उन्हें विद्यापति

का वराज सिद्ध किया है ।^१

धूतंसमामगम मे एक दुष्ट परिव्राजक विश्वनगर और उसके शिष्य दुरा-
चार के बीच एक सुन्दरी वेश्या अनगसेना के लिये कलह का विषय किया
गया है । अनगसेना से शिष्य पहले मिला था परन्तु गुरु उसे अपने लिये चाहता
था । उस युवती के वरामश से इसका निर्णय सज्जाति नामक ब्राह्मण को सौंपा
जाता है जो बन्दर तथा दो बिल्लियों की लड़ाई की कथा के आधार पर इस
भगड़े का निर्णय करता हुआ वेश्या को अपने लिये रख लेता है । इसकी कथा
लटकते-लटक एव हास्यार्णव के समान ही आदि से अन्त तक शृंगाररस में ढकी
हुई है । पञ्चसायक नामक कामतन्त्रविषयक ग्रन्थ के रचयिता ज्योतिरीश्वर
के लिये काममय ग्रहमन लिखना कोई बड़ी बात नहीं थी ।

कौतुक-सर्वस्व

गोपीनाथ चक्रवर्ती का कौतुक-सर्वस्व दुर्गा-पूजा के उत्सव पर लिखा
गया उत्तरकालीन ग्रहमन है इसमें प्रवृत्ति-तत्त्व अपेक्षाकृत कम और मनोरञ्जक
तत्त्व अधिक प्राप्त होते हैं । भगैडी, लम्पट और मय प्रकार से दुर्व्यसनी
गंगा कलिवत्सल पुष्पात्मा ब्राह्मण सत्याचार के प्रति दुर्व्यवहार करता है ।
सत्याचार राज्य में फैली हुई गड़बड़ी को देखता है । लोग परीजन में शूरा,
भूठ बोलने में कुशलता और धर्मशील लोगों को घृणा की दृष्टि से देखने में
अपनी सज्जनता समझते हैं । तलवार से मक्खन की टिकिया काटने की एव
मच्छर की उपस्थिति से उसको काँपता देख दर्शन सेनापति के वीरत्व का
महान् अनुमान कर सकते हैं । पुराणों में वर्णित अनैतिकता की इन ग्रहमन में
हँसी उड़ाई गई है । ऋषियों ने पाप की चर्चा करते हुए उन्हीं बातों का निषेध
किया है जिनका वे स्वयं वृद्धावस्था के कारण उद्योग नहीं कर सकते । राजा
म्वच्छन्द प्रेम की घोषणा करता है, परन्तु स्वयं मणिवा-विषयक किसी ग्रन्थ
द्विबाद में व्यस्त हो जाता है । उसे शस्त्री के पास बुला लिया जाता है । इस

१- देखिये - वर्षक रत्नाकर - वैद्यक लक्षणप्रसाद
दो जर्नल काफ बिहार रिक्थ संसादनी - १९५०
त्रिद ३४, भाग ३-४ पृ० १०२.

घटना से गणिका इतनी त्रस्त होती है कि सब लोग उसे आश्वासन प्रदान करने के हेतु दौड़े आते हैं। राजा गणिका की प्रसन्नता के लिये विवश होकर सब आदमियों को राज्य में निवास देता है।

कौतुक रत्नाकर

वंगाल के बाणोनाथ के पुत्र भजातनामा (कवितार्किक, उपाधिधारी) राजपुराहित की एक अनुपम हास्य प्रधान कृति मिलती है, जिसका लीपक है कौतुक रत्नाकर। नोमालासी में स्थित भूखूषा के लक्ष्मणमाणिक्य कवि की यह सोलहवीं शताब्दी की रचना है। इसमें पुष्य वर्जित नगर के धुरि-तारुण नामक मूल राजा की हंसी उड़ाई गई है जिम्ने दुष्टों द्वारा हरी गई अपनी रानी को बूढ़ लाने का काय धूर्तों को सौंपा था। रानी पुत्तिस विभाग के प्रधान कमवारी मुलीलान्तक के पास सुरक्षित थी। वह वसन्तोत्सव से एक रान पहले भगा ली गई थी। राजा अपने मन्त्री कुमतिपुत्र, पुरोहित आचारकालकूट ज्यातिपी अनुभवन्तिक, घन्त पुर के ग्रहरी चचण्डशेक एवं अपने पुत्र अजितेन्द्र्य आदि की मलाह के अनुसार सारे काय सम्पादित करता है। राजा अनग-नरगिणी नामक वेश्या की रानी के स्थान पर वसन्तोत्सव के दिन रह जाता है। इसी बीच कपटवेशधारी नामक धूर्त बाह्यण रानी के हर्ता का रूप में प्रकट होता है। अन्य ग्रहसनात्मक रचनाओं की तरह इसमें भी पात्रों के आचार विचार, उत्तर-प्रत्युत्तर अतिवृत्तापूर्ण हैं। प्रतिशोभित तथा ग्रामी-एता भी इसमें दृष्टिगत होती है जिसके कारण इसका अर्थ एवं हास्य फीका पड़ गया है।

धूर्तनर्तक

मगध की शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नरहरिविन्दुपुरेन्द्र के पुत्र एवं दामा-र्चरित नाटक तथा अथ कविताया के निर्माता सामराज दीक्षित का धूर्त-श्रीनर्तक भी दो सविद्या में विभक्त एकाकी ग्रहण है। यह भगवान् विष्णु के अभिनन्दन समारोह के अवसर पर रचा गया था। इसमें मुख्यतः नौ अवधूतों का उपहास किया गया है। साधु गुरेश्वर एक नर्तकी के प्रेम में पड़ा था किन्तु उसने अपना प्रेम अपने शिष्यों से गुप्त रखा था। इसके दोनो शिष्य उसका

प्रणय-व्यापार राजा पापाचार के समक्ष उद्घाटित कर देने हैं। इस कृति में पूर्ववर्ती प्रहसनो की अपेक्षा अक्षिप्तपूर्ण चित्र कम पाये जाते हैं। फिर भी इसमें साहित्यिक दृष्टि से सराहनीय कुछ भी दिखाई नहीं देता।

पूर्वोल्लिखित प्रहसनावली में परिगणित कृतियां म कुछ अप्रकाशित हैं। इनका ज्ञान हमें हास्य रचनाओं की आधुनिक पाण्डुलिपियों के अध्ययन से होना है। ऐसी कृतियां में कादयप-गोबोद्भव^१ कीर्तिदेव के बसावतस थी विश्व-नाथ देव के पौत्र और गोविन्ददेव के पुत्र सुन्दरदेव वैद्य द्वारा दो सन्धियों में रचित 'विनोदरङ्ग' नामक प्रहसन भी है। इसकी रचना वसन्तोत्सव के समय उपस्थित सामाजिक^२ के अनुरक्षणार्थ हुई थी। इसमें परम्परा के अनुसार धूर्तों एवं रागमजरी बेइया का चरित्राङ्कण किया गया है। इसका अन्त भरत-वाक्य से होना है।

उन्मत्तकविकलश

भोसलवशावलि चम्पू वाक्य एवं सभापनिविलास शीपक नाटक के रचयिता बेंकटेश्वर बवि ने भी उन्मत्तकविकलशप्रहसन लिखकर प्रहसनसाहित्य को समृद्ध करने का यत्न किया।^३ उक्तरूपरत्नय तथा चम्पूकाव्य की हस्त-लिखित पोथियां की तालिका से विदित होता है कि हमारे नाट्यकार दक्षिण भारत

१- कादयपगोबोद्भव कीर्तिदेव बसावतस-ओ विश्वनाथ-देवालय गोविन्दरत्न-सुन्दरदेव-वैद्य-संस्तुत विनोदरङ्गप्रहसने द्वितीय-अधो प्रथमोऽङ्कः ।

मगानाभिद प्रहसनम् ।

२- नाट्योत्तम सूत्रधार - धनमजिनिस्तरण ।

३- वसन्तोत्सव-समयानुपूर्वतं श्रीकविराज-सुन्दरदेव वैद्य विरचिते विनोदरङ्गनाम्ना प्रहसन सामाजिकानुशास्त्रम् । (नेपथ्ये) क काव्य ओ वाक्य इव पण्डित सभासु ।

विनोदरङ्ग प्रहसन ।

३- सूत्रधार (विचित्र सहाय्य) हस्तमन्त्रविद्याविश्वनाथो मृगधर । यन् निर्दिष्टपुत्र-विनिष्टमन्त्रद्वय एव कवरकुमारिभारतलक्षणाङ्गविनोदरङ्गसार गीतनोसत्य-मानुषाग्रहाद्वारायामो यद्दर्शनो-सागरनिताकरस्य वदथा-सावर्भौमस्य प्रतिदिन-प्रवन्धनिमागपरेश्वरस्य धमराजमनीषिणो आग्धन-भारिनामेन वेङ्कटेश्वरकविना महीत-वस्तु - विरचित-विरचितानुमत्तकविकलशनामकं सप्तहृदयानन्दविरसनम् प्रहसनम् ।

के भोसल-नृपेन्द्र शरभोजि प्रथम के आश्रित कवि थे। शरभोजि महाराज का शासन काल १७११ ई. में १७२८ तक माना जाता है। नैधुवकाश्यपगोत्रीय घमराज के पुत्र बेंकटेश की ये कृतियाँ अब तक अप्रकाशित हैं। ये विद्वद्वश के थे। इनका उन्मत्तवक्त्रलक्षप्रहसन आगलसाहित्य के प्रहसनो (Farce) से से बहुत कुछ मिलता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रेक्षकों को हँसाना है। फलस्वरूप इसमें कहीं-कहीं अभद्रता के दशन होते हैं। बिट सभा में स्थित सामाजिकों के हृदयावजनाथ इस प्रस्तुत किया गया था। यहाँ भी नाट्य शास्त्र के नियमानुसार नादीपाठ का सम्यक्पालन किया गया है।

बेंकटेश्वर कवि

बेंकटेश्वर नामक एक दूसरे महानुभाव के भानुप्रबन्धप्रहसन का नाम भी प्रहसनावली में मिलता है। ये कवि उन्मत्तवक्त्रलक्ष प्रहसन के रचयिता बेंकटेश या बेंकटेश्वर जी से सर्वथा भिन्न व्यक्ति हैं। यह कृति अपने सम्पूर्ण रूप में तो नहीं मिलती किन्तु इसके कुछ अंगों का निर्देश पाण्डुलिपियों की सूची में अवश्य मिलता है। ये रामभद्रदीक्षित के पतञ्जलि चरित काव्य के व्याख्या-कार थे। इस व्याख्या में और इसके अन्त में इन्होंने स्वयं को रामभद्रदीक्षित^१ का शिष्य और श्री दक्षिणामूर्ति का पुत्र घोषित किया है। भानुप्रबन्ध^२ के भरतवाक्य में भी इनके पिता का नाम उल्लिखित है। इस प्रहसन के अन्तिम

१- इति कौण्डिन्यकुलवितकवसिचामूर्तिबेङ्कटेश्वरसास्त्रिचरितार्था पतञ्जलिचरितव्याख्यायां सतिनाम्न्या प्रथम मग ।

० ० ० ० ० ०

व्याचष्टे किल रामभद्र मलिनस्तस्याप्तशिष्य इती,
श्रीभोद्र सद्बिबेङ्कटेश्वरकवि मस्यानिबद्ध मग ॥ पतञ्जलिचरित व्याख्या-४ ।

२- भूपा पुष्पपत्रे चरन्तु भवतु लोम नृपा सवत
मनेष्वेनस्य पवनतुल्यस्य भेनन्तु राज्ञा पिता ।
कौण्डिन्यान्वयभट्टनायकनिष्ठ - श्रीपतिचामूर्तिना
कान्यसात्म्य च बेङ्कटेश्वर-कवि नर्ता चिरजीवतु ॥
॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ भानुप्रबन्ध प्रहसन ॥

श्लोक से कवि का तबौर के दरबार से निकट सम्बन्ध भी विज्ञापित होता है ।^१

सोमवल्ली योगानन्द प्रहसन

चित्तोद जिले के विद्वत्परिवार में उत्पन्न कवि मरुणगिरिनाथ के सोमवल्ली योगानन्द प्रहसन का नाम भी मिलता है ।^२ इसके कवि ने महाकवि बालिदास की कृतियों पर प्रसिद्ध टीकाएँ भी लिखी हैं । यह प्रहसन प्रकाशित होकर जनता के सामने नहीं आ सका है । इसमें एक योगी की किसी कुमारी कन्या के साथ प्रणय-लीला का वर्णन है ।

इसके अनिरिक्त वाश्चर्य क निवामी गोविन्दश्रीवत्साङ्क उपनामधारी वासुदेव कवीन्द्र का सुभगानन्द प्रहसन भी लिखा गया था । प्रस्तुत प्रहसन के अन्तिम श्लोक से ज्ञात होता है कि वे काश्मीर^३ के राजा भी थे । यह कृति भी प्रकाश में नहीं आ पाई है ।

किसी भज्जातनामः कवि ने भी 'पलाण्डुमण्डन' नामक प्रहसन लिखकर प्रहसनसाहित्य को समृद्ध करने में योगदान दिया । यह प्रहसन अब नष्ट हो चुका है ।

१- धानश्याम्लिदेव्या वन्धात्ममेदुरा कटाक्षोमि ।

मामभकुलमणिदास मुखयनु शाहाधियं निरुम् ॥

२- मल्लि (ख) नु वरेद्राधरार नयिकमणे सामवेदनागर-सावातिरस्य मष्टभाषाकविता-
सौरभ्याभिषत्तस्य कलावरस्य कटकविकुलपर्वधतपदे बाणकविभागवेमरिण श्रीमत्
कविप्रभो धेनू पुत्र श्रीराजनायदेविकस्य वल्लाङ्गभाङ्गविदम्भण्डतिगडिण्डमध्वचण्डिन-
श्रीवण्टाकनगिण्डमण्डमण्डको आरिण्डमप्रभो दीहित श्रीमदगिरामनायिकास्त-प्रप-
समापतिप्रटगरकायं भाविनेय अरिण्डमकवि सार्वभौम इति श्रियतविकन्दनामधेय-
सुनभभाकथय भरस्वतीप्रगाश्तव्यकविनाशस्तद श्रीमानकृष्णगिरिनाथो नाम । तेन (प्रणी-
तेन) सोमवन्मयोगानन्द नाम्ना प्रहसनेन सभानियागमनुविष्ठाभि । योगानन्द प्रहसन.

३- काश्मीरोपश्रीमरायदीहितमत्तत्रिविधवीरचूडामणिनाथपौत्रयावद श्रीवत्सङ्गापरनाम-
धेय-श्रीवासुदेव-नरेन्द्र विरचित सुभगानन्द नाम प्रहसन सम्पूर्णम् ।

तजोर ने तुलूडोडी महाराज प्रथम के मन्त्री घनश्याम १८वीं शताब्दी के प्रथमाद्वे में बहुमुखी प्रतिभा में सम्पन्न कवि हुए हैं। इन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत में अनेक ग्रन्थों की रचना की और प्रत्येक ग्रन्थ में अपने विद्वत्तापूर्ण जीवन पर प्रकाश टाँसा है। इनकी विलक्षण बुद्धि का ज्ञान समय-समय पर उन्हें प्रदान की गई विभिन्न उपाधियों को देख कर होना है। वह स्वयं अपने को वश्य वचस्, सर्वज्ञ और मरस्वनी कहा करते थे। प्रबोधचन्द्रोदय पर अपनी सजीवनी टीका में भी उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया है।^१ ये महादेव और काशी के पुत्र थे तथा इनके भाई का नाम चिदान्ध्रयति एवं वहिन का शाकम्भरी था। इनकी सुन्दरी और कमलजा नामक दो विदुषी पत्नियाँ थी। इन्होंने राजशेखर-वृत्त विद्वत्शालभञ्जिका की टीका में स्वरीय कृतियों की तात्तिका भी प्रस्तुत की है। चन्द्रशेखर और गोवधन इस महाकवि के दो पुत्र-रत्न थे। चन्द्रशेखर ने अपने पिता के काव्य डमरूक पर और दूसरे पुत्र गोवधन ने घटकपूर काव्य पर टीका लिखी।

डमरूक (चित्रावली)

इनके 'डमरूक' को कई लोगों ने प्रहसन की कोटि में रक्खा है परन्तु वस्तुतः यह रचना सास्त्रमग्न प्रहसन कहलाने योग्य नहीं है। इसमें हीन पात्रों का चरित्र नहीं प्रदर्शित किया गया है। इसमें हास्य का प्राधान्य भी दिखाई नहीं देता। राजानुरञ्जन, कलिद्रूपण, सुकविमञ्जीवन, कुकविमनापन, अवोपाकर, शाब्दिक भञ्जन, पण्डित-राष्ट्रन, जातिसतर्जन, प्रभुत्व और प्रसन्न-मन्द, इन दस छोटे-छोटे अङ्कों में यह अभिनेय प्रबन्ध विभक्त है। प्रत्येक अङ्ककार के वरुणकर्ता दो भिन्न भिन्न पात्र हैं। कवि ने स्वयं इसे निबन्ध की सजा दी है।^२ प्रबन्ध, रूक और वस्तु-अभिवान दोनों में निबन्ध के तीन अभिघाएँ कही गई हैं। इस पद्यमय अभिनेय रूपक को लिख कर कवि ने निःसन्देह संस्कृत-नाट्य के क्षेत्र में एक नई धारा प्रवाहित की है। इसकी चलना अन्य आधुनिक एकाङ्की नाटिकाओं के साथ की जा सकती है। कारण कवि के पुत्र चन्द्रशेखर ने भी इसी व्याख्या में इसे प्रहसन न कह कर चित्रा-

१- डमरूक ६, ४.

२- डमरूक पात्रवृत्तवार्ता पृ०

बली^१ कहा है। इसके अतिरिक्त घनश्याम की पत्नियों द्वारा रचित राजशेखर की विद्वशाल-भञ्जिका की टीका में इनकी कृतियों का वर्गीकरण करते इनके शीपक स्पष्ट लिखे गये हैं किन्तु डमट्टक के आगे भाण या प्रहसन जैसा कोई विशेष पद नहीं विभिन है। इस विवेचन में इसका प्रहसन होना प्रमाणित नहीं होता।

प्रहसनों की पाण्डुलिपितालिका में इनके 'वण्डानुरजन' प्रहसन का नाम भी आता है। इसमें हास्य की प्रमुखता है। यह कृति अपूर्ण और अप्रकाशित है।

नाटकाट प्रहसन

मदनमहोदय के अक्षर पर अभ्यासतो के मतविनोदार्थं बानुदेव-चयनिसुत मदनन्दन द्वारा विरचित नाटकाट^२ प्रहसन का नाम भी आता है। कवि का जन्म सारस्वत कुल में हुआ था। शिवजी की भर्चनाविषयक पद्यावलि में इनका शिवभक्त होना सूचित होता है। इनका काल अब तक अनिश्चित-ना ही रहा है। संस्कृत-साहित्य के इतिहास लेखकों एवं नाट्य-समीक्षकों ने इसे बहुत पुराना न कह कर ही सतोष कर लिया है। गोपाल-नारायण कम्पनी से १८६१ ई. में प्रकाशित इसकी एक प्रति के अन्त में 'पुस्तक-लेखक लेख' के नाम से उद्धृत श्लोक से इस रचना के रचनाकाल पर कुछ प्रकाश पड़ता है।^३ तदनुसार यह रचना आज (शक संवत् १८८७) से १०६ साल पूर्व की अर्थात् १६वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। नवयुग की रचना होने पर भी इसमें मध्य-युग के समाज का चित्र दृष्टिगत होता है। इसमें एक

१- डमट्टकव्याख्यानम् ३, पृ० ३३.

२- नाटकाटप्रहसन ५, पृ० २, नाटकाट प्रहसन पृ० ७.

३- इति बानुदेवचयनिसुतमदनन्दन विरचित नाटकाट प्रहसन-सम्पूर्णम् । पुस्तकलेखक लेख-सर्वेभ-मुनिशाकेभुवत्सरे च ख्यावते ।

प्राग्भिने शुक्रपथे नवम्या सोम्यवासरे ॥

काशीर-तोमिधानस्त्यम्बको म्यालिधिन्मुदा ।

नाटकाट-प्रहसन यत्तये तत्त्वमपिठम् ॥

पूरी कथा आदि से अन्त तक नहीं मिलती। किसी नगर के समस्त कर्णटक^१ के किसी शहर में नाट्यक के (नटक या नट) राहगीरों का बार्तालाप इसमें सुनने को मिलता है। इन यात्रियों की शास्त्रविरुद्ध एवं प्रकृति विपरीत अनगल बात सुनकर तथा इनके पात्रों के विचित्र नामों का देख कर लटकमेतवादि प्रहसना की मार आ जाती है।^२

यहाँ भी उपयुक्त प्रहसना की भाँति प्रेक्षक समाज की मेन-केन प्रचारेण हँसान का प्रयत्न किया गया है। इसके बीच ज्योतिषी आदि पात्र पूर्ववर्ती हाम्यारमक कृतियों में अङ्गुल पात्रों की तरह अपने अपने ज्ञान से शून्य जात होते हैं।^३

दो सधिया में विभक्त इस लघु प्रहसन की कथा में सारतम्य के अभाव और प्रथम अधि के नतिपत्र पात्रों की द्वितीय सधि में अनुपस्थिति को देल बहुत से समीक्षक इसे शास्त्रीय प्रहसन की कोटि में रखने में संकोच करते हैं। इसमें नेपथ्ये, तत प्रविवर्ति, मनोदूती, आकण्य आदि मञ्चीय निर्देशा तथा पात्रों की बड़ी संख्या पर दृष्टिगत करने से भासित होता है कि यह रूपक मवाई, रामलीला जैसे लोकशैली के नाट्यों के अनुकरण पर अभिनयाय रचा गया होगा। इसमें सूत्रधार द्वारा नाट्यी पाठ के प्रसङ्ग में एकाङ्की अभिनय पर संस्कृत के प्राचीन भाषा की छाया प्रतिबिम्बित है।^४ साहित्यिक दृष्टि से नाट्यवाट प्रहसन का विशेष महत्व प्रतीत नहीं होता।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में प्राचीन काल से प्रहसनो की रचना होती रही है। भाषा की तरह उत्तरकालीन प्रहसनो में भी निकृष्ट समाज के चित्र उपलब्ध होते हैं। भगवदज्जुकीयम्, मत्तविलासादि प्रहसन साहित्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। शेष मध्ययुगीन हास्यप्रधान रूपक लगभग एक

१- अभिलानकोशों में नाट्य का एक कर्णटक का एक शहर भी उल्लेख किया है।

२- नाट्यवाट प्रहसन ३६, ४४ पृ० १२

३- नाट्यवाट प्रहसन ३६-४० पृ० १६

४- नाट्यवाट प्रहसन ४८ पृ० १-२

से ही प्रतीत होते हैं। दक्षिण भारत, बंगाल आदि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में राजाज्ञा से समय-समय पर मनाये जाने वाले त्यौहारों के अवसर पर प्रेक्षकों के मनोविनोद के लिये इस प्रकार के साहित्य की सृष्टि हुई। बारहवीं सदी से लेकर सत्रहवीं सदी तक पर्याप्त सत्या में शृंगारसिक्क हाम्य-व्याय-प्रधान रूपको की रचना हुई। साहित्य के अन्य क्षेत्रों की भाँति उत्तरयुगीन प्रहसनों में भी मनोरञ्जन के साथ साथ पाण्डित्य-प्रदर्शन कवियों का उद्देश्य रहा है। आज के विद्वान् अब भी प्रहसन-परम्परा को जीवित रखने का प्रयत्न कर रहे हैं।

चतुर्थ अध्याय

व्यायोग

संस्कृत में व्यायोग

परिचय

व्यायोग एकाकी रूपक का ही एक प्रकार है। इसकी कथा-वस्तु पुराण में ली हुई या इतिहासप्रसिद्ध होती है, किन्तु इसका नायक वीरोद्धत, राजपि अथवा दिव्य पुरुष होना है। इसमें कैंशिकी-वृत्ति का प्रयोग निषिद्ध है। शेष तीन भारती, भारभटी और सात्वती वृत्तियाँ प्रयुक्त होती हैं तथा गर्भ एव विमर्श को छोड़ कर मुख प्रतिमुख और निवहण नामक सन्धियों की योजना होती है। व्यायोग में हास्य एव शृंगार का प्रयोग वर्जित है। कष्ट, भयानक, वीर रौद्र एव वीमर्श नामक रसों का प्रयोग किया जा सकता है। शृंगार^१ और हास्य में रहित (जो कैंशिकी वृत्ति का गुण है) होने के कारण ही स्वभाव में कोमल क्रिया को इस रूपक में स्थान नहीं दिया गया। आचार्य

१- शृंगार कैंशिकी वीरे सात्वत्यारवटी पुन ।

रसे रौद्र य वीमर्शे वृत्ति स्वेव भाख्ये । सा ८ — १-१८२

हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में स्पष्ट कह दिया है कि इसमें नायिकाएँ नहीं होती। त्रियो में केवल दासियों को ही स्थान दिया जा सकता है। पुरुष पात्रों का इसमें बाहुल्य होता है। व्यायोग शब्द का अर्थ है जिसमें विविध व्यक्ति युक्त हो।

नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ने इस नाट्य प्रकार में 'बहुवस्तुत्रय पुरुषा' अर्थात् अनेक पुरुष पात्रों के रहने के कारण ही इसका नाम व्यायोग रखा होगा। आचार्य अभिनवगुप्त ने इसे अपनी टीका में स्पष्ट करने का यत्न भी किया है।^१ उनका मन है कि युद्ध में पुरुषों के नियुक्त होने के कारण इसे व्यायोग कहा जाता है। यह दीप्त रम-युक्त नाट्यभेद व्यापार भी कहा गया है।^२ वीर-भयानकादि रसों से ओत प्रोत होने के कारण युद्ध, नियुद्ध (इन्द्र युद्ध) एवं सपर्यं भी इसमें प्रस्तुत किये जाते हैं, किन्तु ये युद्ध त्रियो के कारण नहीं होते। इसमें एक दिन का वृत्तान्त चित्रित किया जाता है। भेष सब बातों में व्यायोग डिम के समान ही होता है।

भरतमुनि ने लेकर आचार्य विश्वनाथ तक जितने भी नाट्यमीमांसक हुए हैं, उन सबके लक्षण ग्रन्थों का सम्यगानुवर्तन करने पर ज्ञान होता है कि

१- व्यायोगस्तु विधितं कार्यं प्रख्यातनायक-शरीर ।

अभ्यस्तोऽनन्दक

एव विद्यस्तु कार्यो व्यायोगो दीप्तकाव्यरम-योजि ।

(टीका - अत्रात्र स्त्रीजनश्च तेन युक्त चेटयादिना न तु नायिका विधि कश्चिद्दी-
हीनत्वात् ।) काव्यानुशासन (निर्णयभाष्ये संस्करण) पृ० ३८७

२- व्यायोगस्तु डिमत्सर्वदोषश्रुते दिव्यनायकाभावात् । वेदनयत्नोद्यतस्य राजादेर्नायकता ।
अस्मिन्नायकेनापतिवृत्तेर्दीप्तरसस्य । दिव्यैर्देवैर्नृपैश्चपिभिश्च नायके न निवदोऽर्थ-
भवतीत्यर्थः । ननु कस्मादयं व्यायोग इत्याह । युद्ध नियुद्धेति । व्यापारे युद्धप्राये नियु-
क्त्येव युद्धा यत्रान व्यायोग इत्यर्थः । सङ्घर्षेति । शौर्ये विबाहुल्यरूपादिहृता स्वर्णा ।
दीप्त काव्यमौज-नुमनुत् । दीप्तरसा-वीरगोशब्दाः । तदुपयं दोषि कारणमस्य ।

अभिनवगुप्त ।

३- व्यापारस्तु विधितं नाथ प्रख्यातनायक-शरीर । काव्यानुशासन - पृ० ३८६

इन सब नाट्याचार्यों ने प्रवारांतर से व्यायोग का यही उद्देश्य किया है ।^१
कही-नही थोड़ा हेर-फेर अवश्य है ।

अभिनवगुप्त के मतानुसार द्रवता नृपति अथवा ऋषि व्यायोग का नायक नहीं होना चाहिये । परन्तु आचार्य विश्वनाथ न अभिनवगुप्ताचार्य से मतभेद प्रकट करते हुए इसका नायक प्रख्यात घोराद्वन राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष माना है और अपने ही नामधारी किमी ब्रवि के सौम्य घटाहरण को इसके उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है । राजपरिचयदिव्या वा भवेद्दीरोद्वनश्च स' । संभवतः आचार्य विश्वनाथ न भामिक दूतवाक्य व्यायोग के नायक श्रीकृष्ण को ध्यान में रख कर ही प्राचीन आचार्यों में मतभेद प्रकट करने का साहस किया होगा । इस प्रत्यक्ष प्रमाण को देख कर हम मोक्षादित्य के भीमविक्रम व्यायोग के सम्पादक द्वारा किये गये निम्नांकित आक्षेप पर पुन विचार करने को बाध्य होना पड़ता है ।^२

शारदातनय के अनुसार पात्रों की संख्या दस से अधिक नहीं होनी चाहिये ।^३ मागरनन्दी के व्यायोग को 'ऋषिचर्यापरिणययुक्त' कहने में ध्वनित होता है कि किमी युग में व्यायोग में लगभग कुमारिया के विवाह के चित्र अंकित किये जाते रहे होंगे और उसमें गाम्भीर्य को हल्का करने के लिये घोडा बहुत अवकाश रहता होगा । परन्तु इसके उदाहरण भव्य अप्राप्त हैं ।^४

१- ना ना ६१ ६२ अध्याय १८ दशक-३ प्रकाश ६०-६१ अटलपत्र ७१-७३

२ 'Mankad seems to be wrong when he says that the hero may be divine person or a king since neither Natya sastra referred to by him nor Natya darpana support a divine hero Introduction Bhima Vikrama Vyayoga G O S No 151 Page 9

३- अस्तीनिहित संज्ञाओं व्यायोग कविता कुंभ

नायकान्तिवस्तुष्वच भवेयुत दशाविका । भावप्रकाश ८ २४८

४- प्रख्यात नायकविषय । ऋषिचर्यापरिणययुक्त सम्प्रयोगमुक्तो वा एकाङ्क ।

निबृद्धपुटबद्धन दीप्तवीरपौत्ररस विदितश्च मरुतोद्वान् मुखनिबहणविधुक्त,
नानिबहणद्विज्जार कथ्यते सद्भिः । सागरनन्दी (धरतकोश) से

नाट्य-शास्त्र में सम्बद्ध ग्रन्थों के शास्त्रीय विवेचन को देख कर प्राचीन काल में व्यायोगों के प्रचलन का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही साहित्य के इतिहासों में दी गयी इनकी नामावलि तथा हस्त लिखित योगियों की सूची में प्रदर्शित व्यायोग-तालिका में संस्कृत-साहित्य में इस प्रकार के लघु-रूपकों की लोकप्रियता सिद्ध होती है। भारत के अन्य भाषाविदों ने भी संस्कृत व्यायोगों का अनुवाद करके इनके प्रति अनुराग प्रकट किया है।^१

एकांकी साहित्य का गवेषणात्मक अध्ययन करते समय मुझे भद्र तक जिन व्यायोगरूपकों के नाम मिल पाए हैं उनकी सूची आरम्भ में दी जा चुकी है। उनमें से कुछ तो प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ अभी तक विमिराच्छल हैं। इस तालिका में निर्दिष्ट रचनाओं के अनिश्चित भात-नाटक-चक्र में परिगणित दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरुमग को भी कतिपय इतिहासविदों ने व्यायोग के वर्ग^२ में रखा है। वस्तुतः भासप्रणीत ये नाटक ऐसे हैं जिनमें उत्सृष्टिकाक^३ नामक रूपक के लक्षण भी पड़ते हैं और व्यायोग के भी। इनका सम्यक् अध्ययन करने पर उक्त रूपकत्रय में उत्सृष्टिकाक के लक्षण अधिक मात्रा में प्राप्त होने हैं। भद्र श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय आदि इतिहास-लेखकों^४ ने इन्हें उत्सृष्टिकाक ही बताया है।

१- देखिये - काव्यदर्पणित के जनक-विश्व व्यायोग का बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हिन्दी में अनुवाद।

२- व्यायोग रचनाओं में भासकृत मध्यव्यायोग, दूतवाक्य दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरुमग प्रमुख हैं। वाचस्पति वैरोता : संस्कृत साहित्य का इतिहास-बृहत्-संस्करण - १०, ८२४ डॉ० बी० के अनुसार भी दूतघटोत्कच एक व्यायोग है।

३- उत्सृष्टिकाक एकान्तो नेतार प्राकृतं वयः ।
रसोज्ज्वलं कला-स्थायी बहुस्त्री-परिदेवितम् ।
प्रख्यातमिदं कृतं च कविर्बुद्ध्या प्रचक्षते ।
भासवत्कश्चिदुत्तमं न्यन्मिदं पण्डितैः ।
मुद्र च वाचा कृतं विवेचनं बहु ।

श. ८

४- कर्णभार यह एक उत्सृष्टिकाक है। दूतघटोत्कच और उरुमग में दोनों एकांकी उत्सृष्टिकाक हैं। (संस्कृत साहित्य की रूपरेखा) - १०, २४.

ले. श्रीचन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डॉ० एन. बी. व्यास।

दूतघटोत्कच में अभिमन्यु के वध के बाद शत्रुसन्तप्त अर्जुन के पुत्रवध का बदला जयद्रथवध द्वारा लेने की प्रतिज्ञा करने पर श्रीकृष्ण हिडिम्बा से उत्पन्न भीम के पुत्र घटोत्कच को दुर्योधन के पास भेजते हैं। यहाँ उद्धत वीर घटोत्कच का दौत्यकर्म नाटकीय ढंग में वर्णित है। वर्णभार में कर्ण द्वारा ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र को अपना कुण्डलवचन दान में दे देना दिखलाया गया है। उरुभग में भी अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लेने के लिये पाण्डवों की प्रतिज्ञा के फलस्वरूप भीम और दुर्योधन के बीच मदायुद्ध में असफल दुर्योधन की दयनीय मृत्यु का चित्रण है। इस रूपक में विशेष बात यह है कि एक अंक में ही लगभग छयामठ (६६) श्लोक मिलते हैं। संस्कृत नाट्य परम्परा में मृत्यु का वर्णन करने वाले भास के ही रूपक मिलते हैं। स्व० पाण्डेयजी “संस्कृत-साहित्य में दुस्त्रान्त-नाटकों का नितान्त अभाव है—” इस कथन का खण्डन करते हुए कर्णभार, उरुभग और भट्टनारायण^१ के बेनी-सहारादि का दुस्त्रान्त के उदाहरण स्वरूप स्मरण करते हैं। परन्तु वास्तव में दुस्त्र-प्रवण नाटक (ट्रेजेडी) हमारे नाट्य-सिद्धान्तों के सर्वथा-विरुद्ध है। स्व० पाण्डेयजी इनके दृष्टान्तस्वरूप संस्कृत की जिन नाट्यकृतिओं का नामोल्लेख करते हैं, उनमें दुष्टों का वध हुआ है। दुष्टों की मृत्यु से दुस्त्र नहीं होता और न मरनेवाले के प्रति सहानुभूति ही होती है। यह ठीक थावबनीन है कि दुष्टारमा की मृत्यु किसी के दुस्त्र का कारण नहीं होती, किन्तु पाश्चात्य दुस्त्र-प्रवण नाटकों में नेता की मृत्यु दिखाई जाती है जो प्रेक्षक की सहानुभूति का पात्र होता है। अतः उपर्युक्त रूपकों को पाश्चात्य ट्रेजेडियों का म्दानापन्न नहीं माना जा सकता।

नाट्यरचना-विधान की दृष्टि से, य. रूपकनय उत्सृष्टिकों के अधिक निबट प्रतीत होते हैं। बहुत से अन्य विद्वानों ने भी इन्हें व्यायोग-न, मानकर उत्सृष्टिका^२ ही माना है। अतएव इन सदिग्ध रूपकों की यहाँ विस्तृत चर्चा नहीं की जा रही है।

१- संस्कृत नाटक प्रायः सुखान्त होते हैं किन्तु यह कथन श्रुतिसङ्गत नहीं है। संस्कृत में दुस्त्रान्त नाटकों का नितान्त अभाव है। २- निम्नलिखित रूप से दुस्त्रान्त नाटक माने जाते हैं—
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—पृ० २२६, स्व० पाण्डेय तथा डॉ० व्याध.

रामायण और महाभारत सदा से परवर्ती साहित्य के उपजीव्य रहे हैं। व्यायोग-मंडल के परिशीलन से प्रतीत होता है कि इनके रचयिताओं को दीर्घतरस्युक्त रूपको के लिये उपयुक्त सामग्री महाभारत से ही मिल गयी है। इस प्रकार की सर्वांगीण कृतियाँ महाभारत पर ही आधारित हैं। केवल कृष्ण कवि का “विक्रान्त राघव” और जीवन्त्यामतीश का “कलासनाथ विजय” रामायण पर आधारित हैं। इन महाकाव्यों में से किसी एक सूत्र को लेकर कविगण अपनी मौलिक प्रतिभा प्रदर्शित करते आए हैं।

कवि नुसगुरु कालिदास द्वारा सम्मानित महाकवि भाम ने भी जो केवल संस्कृत-नाट्य-साहित्य के आदिसृष्टा ही नहीं हैं अपितु सर्व प्रथम एकाकी-कार भी हैं, अपनी कृतियों के लिये उपयुक्त इतिवृत्त महाभारत से ही वृत्ता। यहाँ पर कुछ उपलब्ध व्यायोगों में से प्रमुख का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा। संस्कृत-साहित्य में नाटकों की सर्वांगीण एवं मूल परम्परा के अनुवर्तक भाम कवि के द्रुतवाक्यनामक व्यायोग में ही हम इस चर्चा का प्रारम्भ करेंगे।

द्रुतवाक्य

- - -

भाम-नाटक-चक्र के अन्तर्गत द्रुत-वाक्य व्यायोग का नाम सबसे पहले लिया जाता है। इसकी कथा-वस्तु महाभारत के उद्योग पर्व से ली गई है।^१ पाण्डवों ने बारह वर्षों का वनवास समाप्त करने के उपरान्त इन्द्रप्रस्थ पहुँच कर कौरवों से, सन्धि की शर्तों के अनुसार, भावा राज्य माँगा।

“अहं तु तव तेषां च श्रेयश्छामि भारत।

सर्मादिर्यात् सुखात्पैव राजन् मा नीनश प्रजा ॥^२

तुलना कीजिए —

अनुभूत महद् दुःख मत्पूण समय प्रज्ज।

अस्माकमपि धम्य भद्राया तद् विभज्यताम् ॥^३

१- महाभारत — अध्याय ८२, ४३-६० अश्वमेधपर्वणि अथवायन पर्व।

२- महाभारत — अध्याय ८२, ६० (उद्योगपर्वणि अथवायन पर्व)

३- द्रुतवाक्य २०

पाण्डवों ने युद्ध के भयङ्कर दुष्परिणामों से संसार की रक्षा के लिये सन्धि के प्रस्ताव के साथ श्रीकृष्ण को दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजा। महाभारत की यही कथा दूतवाक्य में भास के कवित्व से निखर उठी है। कवि ने इसमें सवधा विरुद्ध प्रकृति के दो पात्रों को चुना है। एक धीर धीर गम्भीर सफल राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण हैं, जो त्याग एवं शान्ति की साक्षात् भूति हैं। दूसरी धीर ईर्ष्यालु दुर्योधन है, जिसे कर्तव्यावर्तन का कुछ भी ध्यान नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण सारगर्भित उक्तिओं एवं प्रत्युत्तियों द्वारा ज्येष्ठ कौरव को समझाने का यत्न करते हैं, परन्तु सब व्यर्थ होता है। उनका दुर्योधन की सभा से निराश होकर लौटना इस अभिनेय काव्य में वर्णित है।

मध्यम व्यायोग

संस्कृत व्यायोग-कालन का दूसरा पुष्प है — मध्यम व्यायोग। यह भी भास की ही कृति है। इसका नायक महाभारत का प्रमुख पात्र कौन्तेय भीमसेन है। पाण्डवों में इसका स्थान तीसरा था, इसलिये इसे मध्यमपाण्डव भी कहते हैं।

मध्यमोऽहमनघ्यानामुत्सिक्ताना च मध्यमः ।

मध्यमोऽहं क्षिती भद्र ! भ्रातृणामपि मध्यमः ॥^१

मध्यम व्यायोग में महाभारत में उल्लिखित बकासुर और ब्राह्मण-परिवार की कथा का आश्रय लिया गया है।

लाक्षाग्रहदहन के समय हिडिम्बा राक्षसी से मध्यम-पाण्डव का सम्पर्क होने के कारण भीम के घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। पारस्परिक वचन के अनुसार पुत्र-वसन होते ही हिडिम्बा और भीम का साथ छूट गया। भास के प्रस्तुत व्यायोग के अनुसार जहाँ हिडिम्बा रहती थी, उन्नी जंगल में केशवदास ब्राह्मण का परिवार एक यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये जा रहा था। माग में उसका सामना घटोत्कच से हुआ जिसे माता के भोजनार्थ

मनुष्य ढूँढ लाने का आदेश था। ब्राह्मण के तीन पुत्रों में से एक की उसने प्रवृत्ति की। पुत्र-प्रेम के कारण केशवदास ने अपने आपको और पतिव्रता ब्राह्मणी ने पति के प्राणों की रक्षा के निवेद्य को इस कार्य के लिये समर्पित किया किन्तु घटोत्कच ने वृद्ध होने के कारण ब्राह्मण को तथा स्त्री जानकर ब्राह्मणी को भोज्य बनाना उचित नहीं समझा। ज्येष्ठ सन्तान पिता को और कनिष्ठ माता को प्रिय होती है। फलतः मध्यम-ब्राह्मण के राक्षस ने चला। तृयातं मध्यम ने राम्ने में जनार्दन से जल ग्रहण करने की आज्ञा माँगी। घटोत्कच की स्वीकृति पाकर जलपानाथ गये ब्राह्मण-पुत्र के लौटने में विलम्ब होता देख, राक्षस ने 'मध्यम-मध्यम' कह कर जोर से पुकारा। उसकी पुकार सुन भक्तस्मार्त् ब्राह्मण के स्थान पर मध्यम-पाण्डव भीमसेन पहुँच गया। घटोत्कच के मुख में वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण की रक्षा के हेतु उसने राक्षस की माता का आहार बनना स्वीकार कर लिया। सामने आने पर हिडिम्बा पवन-पुत्र भीम को पहचान गई। पिता-पुत्र का मेल हुआ और ब्राह्मण परिवार का उद्धार। यही इस व्यायोग की संक्षिप्त रक्षा है। मध्यम पाण्डव द्वारा मध्यम ब्राह्मण की रक्षा की गई। इसलिये इसका नामकरण 'मध्यम-व्यायोग' रखा गया है।

मकर नाटक के लिये निम्नांकित षड्गुण आवश्यक होते हैं (१) घटनाओं का ऐक्य (२) घटनाओं की सार्थकता (३) घटनाओं की घात-प्रतिघात गति (४) कवित्व (५) चरित्र-चित्रण (६) स्वाभाविकता। भास के नाटकों में इन सब गुणों का समावेश उपलब्ध होता है। दूतवाक्य एवं मध्यम व्यायोग के अनुशीलन से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। इन रचनाओं में भास की सरल, सरस एवं सुन्दर शैली का परिचय मिलता है।

भास अपनी दोनों ही कृतियों में महाभारत की छोटी-छोटी कथाओं को मौलिक रूप प्रदान करने में सफल उतरे हैं। इनका अध्ययन करते समय भास को, हम एक अनुभवी व्यक्ति, राजधर्म में निष्णात पण्डित, उत्कृष्ट कोटि के नाटक-कार एवं विष्णु के अनन्य उपासक के रूप में देखते हैं। दूतवाक्य में कृष्ण का दोषवर्णन वर्णित है, निम्न दुर्घोचन और वृष्ण के संवाद में नाटकीयता का पर्याप्त निदर्शन है। दोनों की ओर से एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न होता है। भास ने आरम्भ में ही पाण्डवों के दूत के आने का समाचार सुनाते

हुए जो वाक्य कहा है वह उपमालङ्कार एवं यमक का सुन्दर दृष्टान्त है।

प्राप्त विज्ञात वचनादिह पाण्डवाना
दोत्येन मृत्युश्च कृष्णमति स कृष्ण
थोतु सभे त्वमपि सज्जय वण वणो
नारी-मूढानि वचनानि युधिष्ठिरस्य ॥^१

यहाँ पाण्डवा के प्रति कीरवा के हृन्मय में स्थित बुद्धिस्त भाव भी झलकते हैं।

भास की रचना शैली प्रसाद एवं धाज के साथ साथ माधुर्यगुण से ओत-प्रोत प्रात है। इस अपूर्व नैप्तु में रचे गये नाटका के संवाद बड़े घुमते हुए संक्षिप्त एवं सुबोध हैं जो भास की नाटकीयता को पुष्ट बनाने में सहयोग प्रदान करते हैं। गद्यपद्यमयसंवादों का भास का ठग अनोखा है। श्रीकृष्ण प्रोत्त दुर्योधन की गवींक्षितियों को पट्ट कर कवि का भाषा पर अधिकार उसकी वाक्पटुता एवं राजनीतिज्ञता का परिचय प्राप्त होता है। विपक्षी का समुचित उत्तर न दे सकने पर दुर्योधन का कृष्ण जैसे योगी पुरुष के विषये भी अपगण्य कहना नितान्त स्वाभाविक है।

दुर्योधन - कथं कथं दापाद्यमिति । भो तदाप्रभृत्येव सदारस्तूह परमात्म
जाना पितृतां कथं ज्ञेत् ?

धामुदेव - पुराविद भवत्, पृच्छामि -
विचित्रवीर्यो विषयी विपत्ति क्षयेणयात पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एव सभेत राज्यं जनकं कथं ते ?
दुर्योधन - भो दूत । न जानाति भवत्-राज्यं व्यवहारम् ।

श्रीकृष्ण की कामना करने वाले दूत के रूप में श्रीकृष्ण का सत्य, शब्दों में नैतिक उपदेश करना उनकी उदारता का परिचायक है और मूढ़ दुर्योधन का अशिष्ट व्यवहार उसकी पामरता का।

१००

वासुदेवः - कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो, विस्मयं व्या गुणैतरा ।

१०१ सम्बन्धो बन्धुमि श्रेयांस्तोकयोस्त्वयोरपि ॥

दुर्योधनः - भो योपालक ...

दुर्योधनः - गच्छ गच्छ पशुबुरोद्धतरेणुरूपिताङ्गो वज्रमेव । विफलीकृत-
कालः ।

पारस्परिक वार्तालाप के बीच श्रीकृष्ण का मायावी रूप दिखनाकर कवि ने इस रूपक में चार चांद लगा दिये हैं। सर्वत्र अद्भुतरस का संचार है। दुर्योधन तो ऐसे मायामय दृश्य को देखकर भ्रम में पड़ ही जाता है, दशक या पाठक भी इससे प्रभावित हो भुग्ध हो जाते हैं। महाभारत में भी वाद-विवाद के प्रसंग में क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण ने अपना भयंकर विश्वरूप दिखलाया है। इस प्रकार दो विरुद्ध स्वभाव के चरित्रों का मनोहर रूप दूनवाक्य में प्राप्त होता है।

दुर्योधनः - भो दूत । ... मातिष्ठेदानीम् । कथं दृष्ट केशव, अयं केशवः ... महोहस्वत्व केशवस्य.. अयं-केशवः । सर्वमन्त्रशालाया केशवा भवन्ति । किमिदानीं करिष्ये ? भवतु दृष्टम् ... भो भो राजानः । एकैर्नैकः केशवो बध्यताम् ।^१

तुलना कीजिए -

एवमुक्त्वा जहामोर्ध्वः केशव, परवीरहा

शस्त्रचक्रमदाशक्तिशङ्खलाङ्गुलनन्दका ।

नाना बाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वश ।

ते दृष्ट्वा परमात्मानं केशवस्य महात्मनः ...

... न्यमीलयन्त नेत्राणिराजानंस्तत्तेतसः ।^२

मध्यम-व्यायोग में भी भीमसेन एवं घटोत्कच की दयोंक्तियों के माध्यम से दो वीरों का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। भीमसेन के मुख से ब्राह्मण को छोड़ देने की बात सुन कर घटोत्कच उसे मुक्त न करने की जिद पकड़ लेता है। बाढ़ों ही बातों में दोनों अपनी शक्ति की परीक्षा करने पर तन जाते हैं।^१ भीमसेन इस व्यायोग का नायक है और नामकोचित बल-पराक्रम से युक्त धीर-वीर पुरुष है। घटोत्कच की वीरता देखकर उसे आनन्द होता है।

भीमसेन — (निमुहुवन्धमवधूय)

व्यपनयवसदपं दृष्टारोर्जसि वीर ।

नहि मम परिवेदोविद्यते बाहुयुद्धे ॥^२

भीमसेन घटोत्कच भी बड़ा धक्की है। वह वीर-श्रेणी भी है। 'वलीबल वेत्ति' के अनुसार दूर से वीर भीमसेन की दशनीय आकृति को देखकर एक पराक्रमी के लिये उसके हृदय में घावर भाव उमड़ पड़ता है।

घटोत्कच — न ह्यस्य ब्राह्मणवदु । अहो दर्शनीयौज्य पुरुष

सिंहाकृति वनकवट्टिसमानबाहु —

मध्येतनुर्गच्छपक्षविलिप्तपक्ष

विष्णुर्भवेद्विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो

नेत्रमबाहूरतिबन्धुरिवावतोऽयम् ॥^३

वीर हो ने के साथ ही साथ वह गुरुभक्त भी है। घटोत्कच के मुख से माता के प्रति भक्ति भावना-मिश्रित विचार सुनकर भीम को भी मातृ-भक्ति के फलस्वरूप प्राप्त पाण्डवों की वर्तमान दुर्दशा की याद आ जाती है।

भीमसेन (आत्मगतम्) — कथं मातुराजेति । अहो गुरुमुधुपु ह्यस्य तपस्वी ।

माताकिञ्च मनुष्याणां देवतानां च दैनतम् ।

मातुराजा पुरस्कृत्य वयमेतां दद्यां गता ॥^४

१- मध्यम व्यायोग ३६

२- मध्यम व्यायोग ४६

३- मध्यम व्यायोग २७

४- मध्यम व्यायोग ३७

भीम उसकी गुरुसेवा-परायणता की सराहना करता है। दोन-ब्राह्मणों के प्रति भी उसके हृदय में पर्याप्त सम्मान और सहानुभूति है। राक्षस होने पर भी शूरवीर घटोत्तच में मानवीय गुण विद्यमान हैं।

रूप सख बल चैव पितृमि सहज बहु ।

प्रजामु चीतकारुण्य मनश्चैवास्य कीदृशम् ॥^१

उसका मातृ प्रेम निराला है। ब्राह्मणों के प्रति दयाभाव होते हुए भी वह माँ की आज्ञा का टाल नहीं सकता।^२

गुरु-भक्त पिता की सूठी निन्दा को सहन न कर प्रतिद्वन्द्वी से लड़ने को तैयार हो जाता है। अन्त में रहस्योद्घाटन होने पर आजाकारी पुत्र पिता से क्षमा-प्रार्थना करता है। भीम भी उसे क्षमा प्रदान कर अपने हृदय की विश्वासता तथा पितृत्व का परिचय देता है और पुत्र पराक्रमी होने का आशीर्वाद प्रहण करता है।

हिडिम्बा राक्षसी होकर भी, द्रौपदी, गान्धारी आदि की तरह एक सती साध्वी पतिव्रता है।

कीरम्यकुसदीपेन पाण्डवेन महारमना ।

सनाया या महाभाया पूर्णेन धीरिवात्मना ॥^३

भीमसेन - (विसोक्तम्) का पुनरियम् ? अये देवी हिडिम्बा ।

अस्माकं भ्रष्टराज्यानां भ्रमता गहने बने ।

देवि ! सन्तापो नाशितस्त्वया ॥

जात्या राक्षसी । न समुदाचारेण

बढ़ जाति से ही राक्षसी है, आचरण से नहीं। बहुत दिनों के बाद वह अपने पति से मिन कर कृतकृत्य हो जाती है और उसका एक भारतीय नारी की

१- मध्यम व्यायोग ३६.

२- मध्यम व्यायोग -६.

३- मध्यम व्यायोग ३२.

नरह अभिवादन करती है। आदश माता की तरह घटोत्कच को उमकी भूल का ज्ञान कराती हुई पिता का अभिनन्दन करने की आज्ञा देती है। वह किसी देवी से कम नहीं।

इस तरह भास पात्रों के व्यक्ति-वैचित्र्य द्वारा कथा को सजीव बनाने में निपुणता है। उनके पात्र रत्नी हा या पुरव मामाच भूमिका पर ही दृष्टिगत होते हैं। वे कल्पनावृत्ति के प्राणी नहीं हैं। उनके पात्र चाहे दिव्य हो या राक्षस मानवीय गुणों से भडित होते हैं। उनके विचारों एवं कार्यों में कोई असाधारण बात नहीं देखी जाती। जब हम पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र-विकास की परीक्षा करते हैं तब पाते हैं कि भास आधुनिक युग के नाटककारों के साथ ही हैं। उनके गुण की श्री मीरबय जैसे सहृदयों ने मुक्त कण्ठ से सराहना की है —

“In Psychological subtlety, Bhasa is almost modern”

महाभारत पर आधारित रूपकों के चरित्र चित्रण में यद्यपि भास स्वतन्त्र न थे तथापि उनके द्वारा मिश्रित श्रीकृष्ण दुर्योधन, भीम आदि उदात्त भावनाओं को उत्पन्न करने में पूर्णतया समर्थ हैं और वे प्रवचकों की सहानुभूति भी प्राप्त कर लेते हैं। संक्षेप में भास के पात्र कालिदास, बाण, भवभूति आदि के पात्रों की तरह केवल कल्पनानगरी में विचरण करने वाले भावना के पुतले नहीं हैं। वे भट्टनारायण जैसे भोज-प्रधान भी नहीं हैं और न वे शूद्रक की तरह हँसोड़ ही हैं। इनमें प्राचीन कवियों के पात्रों की-सी कामुकता तथा भावुकता नहीं दिखाई देती। इनमें यथार्थता के दर्शन होते हैं।

भास के नाटकों की अनेकता एवं विविधता से भास की मौलिकता तथा नाट्यकला में निपुणता स्वतः सिद्ध है। नाट्य-शास्त्र का अन्तराश पालन न करने पर भी उनकी अभिनेय कृतियाँ खेप्ट एवं रोचक सिद्ध हुई हैं। इतिहास-पुराणादि से लिये गए इतिवृत्त भी कवि की अनूठी कल्पना से मनोश बन गए हैं। भास के रूपकों की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण उनकी अभिनेयता है। इनमें समय और स्थान की अन्विति का सफल निर्वाह हुआ है। जहाँ मस्कृत के बहुत से नाटक अभिनय के लिये अनुपयुक्त प्रतीत

होते हैं, वही भास के नाटक रङ्गमञ्च के सर्वथा उपयुक्त हैं। दक्षिण भारत में चाण्यारो द्वारा सैकड़ों वर्ष पूर्व से इनके नाटकों का अभिनय होना रहा है।

विस्तृत, विलम्ब कल्पना और दीर्घ-समाप्तों का अभाव ही कवि की रचनाओं की रोचकता का मुख्य कारण है। भास की वैदर्भी शैली को ही कालिदास ने ग्रहण किया। भाषा की सरलता को देख कर विदित होता है कि ये नाटक तत्कालीन सामान्य जनता को ध्यान में रख कर ही रचे गये होंगे। प्रस्तावना में ही मुद्रालंकार की सहायता में नाटक के प्रमुख पात्रों का परिचय कराने की कवि की पद्धति निरासी है। भास ने उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा जैसे गरल अमकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। रस तथा प्रसङ्ग के अनु-रूप शैली में परिवर्तन कर देना कवि के बाएँ हाथ का खेल है। व्यंग्यस्तार के स्थान पर शब्दों के परिमित प्रयोगों से ही भावों की मर्मस्पर्शी व्यञ्जना करने में भास निपुण है। कवि की लेखनी के प्रभाव से कई स्थल बड़े ही प्रभावोत्पादक एवं हृदयग्राही बन गए हैं। उदाहरणार्थ— मध्यमव्यायोग में विछुड़े हुए पिता-पुत्र का बड़े दिनों बाद हुआ मेल बड़ा ही हृदयस्पर्शी है।

भीममेन - एहू देहि पुत्र । अतिक्रमकृत क्षान्तमेव । (परिष्वज्य) धातराट्-
वन-दशानि पुत्रापेक्षीणि समुपिनृहृदयानि । पुत्र । अतिबलपरा-
क्रमो भव ।^१

इसी प्रकार राक्षसी के आह्वाराणं मध्यम-पुत्र को विदा करते समय माता-पिता का हान देख कर माँझ नहीं रोके जा सकते ।

वृद्ध - हा पुत्र ! कथं भव एव ।

तरुण । तरुणतानुरूपकान्ते । नियमपराध्यवन-प्रसक्त-बुद्धे ।

कथमिहि वनराजदन्तमग्न - स्तरुचि यात्यसि पुष्यितो विनाशम् ॥^२

१ मध्यम व्यायोग

२ - मध्यम व्यायोग २४

मध्यम-पुत्र को उपलब्ध होने देम ऐतरेय ब्राह्मण का 'शुन-शेष आख्यान' याद आ जाता है ।

तस्य ॥ यय पुत्रा आमु । ..

म ज्येष्ठ पुत्र निष्कृष्टान उवाच — नन्निममिति नो एवेममिति ।

कनिष्ठ माता । तं ह मध्यमे सपादयान्वक्तु शुन शेषे ।^१

सुलना कीजिए —

वृद्ध — ज्येष्ठमिष्टतम न शनोमि परित्युक्तम् ।

ब्राह्मणी — यथायौ ज्येष्ठप्रिच्छति, तथाहमपि कनिष्ठमिच्छामि ।

द्वितीय — पित्रोरनिष्ट कस्येदानी प्रिय ?

घटोत्कच — अह प्रीतोऽस्मि, जीघ्रयानश्च ।^२

सतमे भी यज्ञ में बलिदान देने के लिये अपने तीन पुत्रों में से एक का त्याग करते समय पिता ने ज्येष्ठ को और माता ने कनिष्ठ पुत्र को छाती से लगा लिया था । मँझली सन्तान की यह दुर्दशा सदा से ही होती आई है । उसके प्रति पाठकों की पूरी सहानुभूति होती है । इस प्रकार बोरस के सफल नाटककार ने प्रणय, करुण एवं विस्मय का मुन्दर निर्बाह किया है ।

भास ने साप्ताहिक बातों का सूक्ष्म निरीक्षण कर लोगों को उनसे लाभान्वित करने के लिये बहुत सी नैतिक बातें लोकोक्तियों में पिरो दी हैं । इन लोकोक्तियों द्वारा उन्होंने गागर में सागर भर दिया है ।]

मापद हि पिता प्राप्नो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते ।^३

रुष्टोऽपि कुञ्जरो बन्धो न व्याघ्रघर्षयेदने ।^४

उनके सश्लेष चित्र नाटक के कथानक की श्रीवृद्धि करते हैं ।

१- ऐतरेय ब्राह्मण १४ हरिश्चन्द्रा आख्यानम्

२- मध्यम आयोग

३- मध्यम आयोग १६.

४- मध्यम आयोग ४४

पादः पादादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्तवः । सवः ।
 व्याविद्धो नमुचिर्पुनः तनुताम्रनखेन खे ।^१
 दीप्तेन भूत्यइव कृष्णमतिः स कृष्णः ।
 श्रोतुं शब्दे । त्वमपि सञ्जयकर्णः । कर्णः
 - - -
 भवतु चरता चक्र चालचक्र भवाद्यः ।
 - - -
 तरणः सकृन्तानुत्पदान्ते ^२

कही कही समस्त पदों और दीपं वाक्या का प्रथम भी वे प्रसङ्ग बना करते हैं किन्तु वह वाक्य काव्य-मांद्य की वृद्धि में सहायक होना है, वाक्य नहीं ।

कृष्णापरानवभुवा रिपुदहिनीभद्रुम्भस्थनीदलननीक्षणराघवस्य ।^३
 मरारामुकोदरविनि सूनराण्यश्वत्थं ।^४

धनञ्जयविजय व्यायोग

भास के पदचान्तरागम १२०० ई में वाञ्छनादाय न धनञ्जय-विजय व्यायोग रचा । इसकी ऋषावस्तु महानारत क विराट-पर्व के गोप्रहा-पर्व से सी गई है । दुर्योधन की शर्तों के अनुसार पाण्डवा को तेरह वष तक वन में वास करना था जिसमें एक वष की अवधि अज्ञानवास की थी । पाण्डव द्रौपदी-सहित भिन्न-भिन्न वेशों में राजा निरा के संरक्षण में रह कर अज्ञानवास की अवधि पूरी कर रहे थे । एक वष के पूरा होने में तेरह दिन शेष रह तब औरतों ने कीचक का वष हो जाने में विराट का निदल जान कर उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया । वे उनकी एक लाल सारें हर ले गए । ऐसी विजय

१- दूतवचन

२- मध्यम ग्यारो व

३- दूतवाक्य - १४.

४- दूतवाक्य - ४१

परिस्थिति मे भीम, धृजुन आदि ने अपना पगक्रम दिखना कर कौरवों में गाएँ बापम ले ली । धनञ्जय विजय में गोरक्षा की यही कथा वर्णित है । चन्द्रावली (जोधपुर) के परमार राजा धारावर्ष के भाई प्रह्लादनदेव^१ ने १२०६ ई में पाथपराक्रम नामक व्यायोग की रचना की । उगवा विषय भी गोरक्षण कर्म का चित्रण करना है ।^२ यथा -

धृजुन (स्वगतम्) (साहचारम्) कृतमिदानी कर्तव्यान्तरेण ।
वात्सानामहमुत्सव विरचयाम्युर्ज्वर्महु कन्दना
निष्क्रौणामि विराटकुट्टिममुखावम्बानमानीय गा ।

पार्थपराक्रम और धनञ्जयविजय की तुलना

उन दो कवियों की रचनाओं के एक ही कथावस्तु पर आश्रित होने पर भी इनके रचयिताओं के विचारों और उनकी भाषा में पर्याप्त अन्तर दृष्टि-गम होता है । सबसे पहला भेद तो रूपन के दीर्घक का ही है । दूसरे, पात्रों की संख्या में भी पार्थक्य है ।

धनञ्जय-विजय	पार्थपराक्रम
धृजुन	धृजुन
अमात्य	उत्तरा विराटरामपुत्री
विराटकुमार	द्रीषदी
इन्द्र	उत्तर नामक कुमार
विद्याधर	
दुर्योधन	पुरुष एवं जयमेन
प्रतिहारी	द्रोण
मून (इन्द्र का)	भीष्म
भीम (मध्यम पाण्डव)	मुपेग

१- नट - याव ! अग्रेयः सुवराज्यीप्रह्लाददत्तमिति पार्थपराक्रमनामा व्यायोग
पार्थपराक्रम पृ० २

२- पार्थपराक्रम ३६, पृ० १३

शुचिष्ठिर

दुर्योधन

सूत

वासव

भास ने अपने नाटका में भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमों का उल्लङ्घन करने का साहस किया है, परन्तु काञ्चनपण्डित एवं प्रह्लादनदेव जैसे परवर्ती कवियों ने अपनी कृतियों में नाट्य-सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए वीररस-प्रधान रूपक के अनुरूप विष्णु भगवान् के नानारूपों तथा शक्तिदायिनी माता चण्डी (दुर्गा) की स्तुति के उपरान्त इस व्यायोग के प्रमुख विषय का बड़े कसा-हमक ढंग से परिचय करवाया है।

हरेर्लोलावराहस्य दष्टा-दण्ड स पातु व ।^१
 देव म व शिवशतानि तनोतु शौरि -
 य शैलवेडपि तुल्यमतुल नगेन्द्रम् ।
 सज्जा विजित्य परिहृत्य श्रिय गुह्या
 गोपीजनै सरमस परिरम्यते स्म ॥^२
 तद्व प्रमाप्यु विपद प्रणतातिहन्त्र्या
 न्यस्त पद महिषमूर्धनि चण्डिकाया ।
 वैरी मदीय - नखरामुपरीत - शृङ्ग
 शक्रायुधाद्धित - नवाम्बुधर - प्रभोऽभूत् ॥^३

काव्य की छास्ता

इसके अतिरिक्त इन रस सिद्ध कवियों ने प्रभातकालीन एवं शरत्कालीन प्रकृति की मोहक छटा तथा श्रीकृष्ण द्वारा हाथ में उठाए नन्दनपर्वण की शोभा

१- धनञ्जयविजय

२- पार्ष्णराज्य

३- धनञ्जयविजय

का वर्णन कर अपने कवित्व का चमत्कार भी प्रदर्शित किया है।^१

स्थापक - (पुरोबिलोक्य) ग्रहह । चारिमा हिमाचलनन्दनस्य
नन्दिवद्धनस्य । तथा हि -

नीने मोनिप्रणयिनि धन वरमुवत्सद्वलाने,
विभ्रत्युच्यैविवचतुमुमाद्भासिध म्मितशोभाम् ।
पानाघातशत्रयपय सीङ्गराट्टेगारहाङ्ग,
स्फारस्फानिदितरनिरति वस्य नाऽर्जानयेन्द्र ॥^२

अद्यपि दीप्ति-रमो बाने व्यायोग में कविता का रमणीय रूप दिखाने का कविया को बहुत कम अवसर मिलता है तथापि प्रस्तावना में ही देवी-देवताओं की स्तुति के व्याज से वे अपनी कविता का मनोरम चित्र प्रस्तुत कर ही देते हैं। अस्तु -

रमणीयप्रभात का क्षीमनीय रूप काञ्चनाचाय की इन पंक्तियों में प्रकृत है -

वाराणा मुरबैरिणो रनिपनेमनुन्निनोशीजित
स्फारस्फङ्गज-कोटरोदरनुषा निद्राविरामे शिथ ।
प्रत्युद्बुद्धमरालवः — पन्ध्रध्वानप्रबन्धानुग
भृङ्गीमगतमापिनेव सनन प्रोत्तूजति प्राङ्गले ॥^३

मुर के शत्रु जितोनीलाय विष्णु भगवान् की नींद पूरी हो जान पर कामदेव की माना लटमी जाम उठनी है। कमल के भीतर बन्द भ्रमरी प्रभात-काल में कमल के गिरते ही पय फड़फड़ाती हुई मानो तुरन्त जागे हुए पटहादि बजाने वाले लोग के तानबन्ध (तारले व तान के पीछे) पीछे चलती हुई मंगल-गान गाने वाली नायिका के समान आगत में निरन्तर बूज रही है।

शरत्काल में प्रवृत्ति का अनुपम रूप दर्शक का मन मोह लेता है। शरत्कालीन प्रावृत्तिवद्ग्य देखने के लिये मय विष्णु भगवान् अपनी योगनिद्रा

१- प्रह्लादनन्दन कविता कविति. प्रमले पार्षपराज्य ४

२- पार्षपराज्य, २.

३- धनशय विजय ४.

को शिथिल कर देते हैं तो साधारण लोगो का क्या कहना ?

निष्कम्पा पृथिवी, मगाद्वलतना, निर्दुर्दिन चाम्बर,
मुल्लवनामततारकेन्दुसरित काशप्रभूताङ्किता ।
नोय वीत-दिष मरामि विवमत्पद्मानि शुभ्रा दिशो ।
द्रष्टु मप्रनिशारदो थियमिमा मन्ये प्रवृद्धो हरि ॥^१

“चाद नागे से जड़े आकाश निमल नदनदी, खिले हुए काश, एव निर्मल सरोवरो मे विवमिन कमलो मे मुशोभित दिग्भाभो बारी शान्त (निष्कम्प) पृथिवी का दरत्तावीन नावण्य देखने के लिये ही मानो विष्णु भगवान् जाग उठे हैं । -

यह अम उल्लेखालङ्कार का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है । ऐसी सुन्दर तथा सरस भूमिका के उपरान्त कवि वाञ्छनाचाम भगवत्वास की भवधि के पूरण होने का आशाम कराने हुए अपनी रचना का मौजग्यास बड़े कलात्मक ढंग से करते हैं ।

मृन्धार - चिरमज्जन ममभवमात्त्रोऽपि नेत्रसा निचय ।
प्रहृष्टो भवति विवम्बानेष त्रिरीटीव सनपमुत्तीण ॥
(तत प्रविशति विराटामात्येन सहार्जुन)
अर्जुन - (सोत्साहम्) अनुक्ल दैव राक्षस्ये । यत -
या नतान्विष्यते सैव लग्ना मम्प्रति पादयो ।
कुरुराजोऽभिमानव्य न्वदमेव समागत ॥^२

पारंपराक्रमकार ने भी इसी पद्धति का अनुसरण किया है । -

(तत प्रविशति यथा निर्दिष्टोऽर्जुन)
अर्जुन - ग्रहो मद्रुचित उत्प्रेष विधिरस्तावम् । यत -
पाञ्चासी - विकुराम्बराक्षर्यं दृष्ट्वमेव म्पिता
सम्भूता अपि अनुब्रामपि जने कर्माणि कुर्मोऽन्यत ।
तामचाप्यरिमन्दिरे हनपदा सहमोनुपेक्षामहे
तत्पुम्पस्व परिहृत्य हन्त चरता मुक्तं व कतीवता ॥^३

१- धनञ्जय विवय ६.

२- धनञ्जय विवय १४ १२

३- पारंपराक्रम १०.

अर्जुन - (सानन्दमात्मगतम्)

हन्त पल्लवितमथवा फलितमेव मे च मनोरथपादपेन ।

यदय नालपाशावृष्ट इव धृतराष्ट्रसूनु मम दृष्टिपथमवतरति ॥^१

अर्जुन गोरक्षा के बहाने बड़ी सुममता से द्रौपदी के अपमान का बदला लेने का अवसर प्राप्त हुआ जानकर प्रसन्न होता है । अब तक बृहन्ना के रूप में अपनी कनीयता को देख कर उसे ग्लानि होती थी । इसी प्रकार इन कवियों ने महाभारत की कथा को नाटकीय रूप प्रदान कर ध्यायोग-साहित्य की सेवा की ।

धनञ्जय विजय में दुर्योधन और अर्जुन के बीच के संवाद में एक दूसरे को सलकारने की छाते पद पर पाठक के हृदय में जोड़पूर्ण भाव उत्पन्न होते हैं । कई एक स्थलों पर भाव जैसे कवियों का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है ।

नायक - अपसर कुहनाथ धूतमन्याहस तद् -
द्रुपदनृपति-पुत्री यत्र दासीकृतासीत् ।
इह हि शरशलाकाभातपूर्वं सगर्वं
प्रति - नृपतिशराक्षं क्षत्रियदूतवैलि ॥^२

तुलना कीजिये-

घटोत्कच - अस्मान्विमुखं धनुने । कुरुबाणयोग्य
मष्टापद समरकर्मणि युक्तरूपम् ।
न ह्यत्र दारहरणं न च राज्यतन्त्र
प्राणा पणोऽत्र रतिर्यदनेक्ष्यवाणौ ॥^३

धनञ्जयविजय की टीका

शाण्डिल्य गोशोद्भव स्वामी मूरि के पुत्र लक्ष्मीकान्त ने वसन्तराजीय

१- पार्मवराहम पृ० ५

२- धनञ्जयविजय ४७,

३- दूतवटोत्कच ४६.

नाट्यशास्त्र, भारतीय नाट्यशास्त्र तथा दशरूपक का अध्ययन करके वाचनवाच्य
५ घनअपविजय व्यायोग पर टीका लिखी जो "लक्ष्मीकान्तायम्" कहलाती है।^१
इसका ज्ञान हमें तमिल एवं संस्कृत की हस्तलिखित पोथियों की तालिका को
इन्होंने पर होता है। इस टीका में सचनकलाप्रवीण वाचन-पण्डित की रचना
का यथ ममभन्ना मुखर हो सकता है। वनवाचार्य के घनअपविजय का वण्य-
विषय भी गोरक्षण वाच्य है।

सौगन्धिकाहरण

प्राप्त व्यायोग ग्रन्थावलि में कवि विश्वनाथ के सौगन्धिकाहरण का नाम
भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। माहित्यदर्पणकार विश्वनाथ और सौगन्धि-
काहरण के रचयिता विश्वनाथ के नामाश्रयों में साम्य देखकर संस्कृत प्रेमी
विद्यार्थियों के समक्ष यह प्रश्न स्वभावतः उठ खड़ा होता है कि क्या ये दोनों
एक ही व्यक्ति हैं? उक्त रूपक व प्रश्न परीक्षण से पहले इस विवादभूलक
प्रश्न पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु—

वाचस्पति शैरोला न लिखा है कि राजा प्रताप सहदेव के आश्रित कवि
विश्वनाथ न सौगन्धिकाहरण जैसे नाटकों की रचना करके अपने विद्वद्वृत्त
का परिचय दिया"। इसी प्रकार वे अनन्तर-शास्त्री विश्वनाथ को भी विद्वद्वृत्त
सम्भव बनाने हैं। वस्तुतः यह बात अन्तः साक्ष्य एवं बहिः साक्ष्य से नहीं सिद्ध
हो पाई है कि रूपककार विश्वनाथ राजा प्रताप सहदेव व दरबार में आश्रय
पाने थे। शैरोलाजी तथा डॉ. बी. वी. कवि का समय १७७३ वि. सवत् १७९५ ई.
मानने हैं। छालकारिक विश्वनाथ तथा सौगन्धिकाहरण के कर्ता का
समय वलदेव उपाध्याय १३०० से १३५० ई. के बीच का निर्धारित करते हैं।
इसमें भी उक्त प्रश्न हल नहीं होता। राजा प्रताप सहदेव की चर्चा का सौगन्धि-
काहरण में सबथा अभाव है। दर्पणकार विश्वनाथ का समय चौदहवीं

१- हट्टवा वगैरह भारतीय शास्त्र शास्त्रम् ।

व्यायोग काचनप्रोक्तम् व्यायोगं स्फुटप्रोक्तम्

शास्त्रित्व-गोत-सद्वत्-स्वामि-मुनीश्वर ।

लक्ष्मीकान्तायम् टीकाचलक्ष्मीकान्तायम् ।

(१४ वीं) शताब्दी है। दोनों विद्वानों ने जो अपने कुल का स्वयं परिचय दिया है वह एक दूसरे के विवरण में सर्वथा भिन्न है। साहित्याचार्य विश्वनाथ ने अपना परिचय साहित्यदर्पण^१ के अन्त में दिया है। उसके अनुसार यह चन्द्र-शेखर कवि के पुत्र तथा नागयणदास के पीर थे। यह मभरत उड़ीसा (उत्तर-देशीय) के थे। इसके गिरगीन मौगन्धिवारण के लेखक अपना परिचय देते हुए अपना सम्बन्ध राजा प्रतापरुद्र^२ के दरबार में जोड़ते हैं तथा अपने कुल का उगम करते समय अपने मामा अग्रस्थ का नाम आदर के साथ लेते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि कवि ने अपने मामा से ही शिक्षा-दीक्षाग्रहण की होगी।

राजा प्रतापरुद्र (द्वितीय) त्रिलोक देश का शासक था। वाराणस के भारतीय बंस में सबसे प्रभावशाली राजा गणपति हुआ। गणपति ने ११६६ ई. में साम्राज्य का शासन सुरू अपने हाथ में लिया और १२६१ ई. तक राज्य किया। उसके मरने के उपरान्त उसकी इनसौनी बेटी आम्बा राज्य की उत्तराधिकारिणी बनी। उसी का उपनाम रुद्रदेव महाराज अर्थात् प्रसिद्ध हुआ। इसके भी कोई पुत्र न होने के कारण उसका दौहित्र राजा प्रतापरुद्र राज्य का उत्तराधिकारी बना। कालान्तर में वही कार्णवीर शेरभद्रराजा प्रतापरुद्र (द्वितीय) के नाम से विख्यात हुआ। इसी ही नाम के काल में आत्मकारिक विद्वानाथ हुआ जो अग्रस्थ भी कहलाता था। मभरत ये अग्रस्थ उपनाम-धारी विद्वानाथ ही मौगन्धिवारणवार विश्वनाथ के मामा रहे होंगे।

१- चन्द्रशेखर महाकवि चन्द्रमुनि - श्रीविश्वनाथ कविराजहोत प्रबन्धम् ।

साहित्यदर्पणमु मुद्रितो विनीतः साहित्यनिरवधारितः सुखमवचितः ॥

साहित्यदर्पणविद्वाना श्रीनारायणस्याङ्गमन्त्रमुनेः ।

तावन्मनः समदत्तः कवीनामयः प्रबन्धः प्रविनीतः लोके ॥ भा. द. ६६-१००

२- मुद्रधारः राजाप्रतापरुद्रः । सर्वदुर्मानमादिष्टाप्रतिभ -

विश्वनाथ इतिशब्दः कविराजः यदुक्तः । अथाश्वत्थमरुतः च विदुषा कर्णपूषणम् ॥

वाचस्पत्यवैद्यरामायण इत्यत्र चित्रं मिथु -

पञ्चमः गुरुनामिन् मुनिः ध्यानकृत्य मुनी ।

वेपथुः प्रमुषीकराङ्गुलिदरात्तङ्गकण्डलको -

वाचोपनिमज्जति दक्षिणः श्यामः स पञ्चमः ।

मौगन्धिवारण, ४४ पृ. २

इसके अनिश्चित अन्य कारण हैं जो दोनों विद्वानों को एक दूसरे से भिन्न सिद्ध करते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ अपने ग्रन्थ में जहाँ कहीं भी उदाहरण देते हैं वहाँ वह स्पष्ट लिख देते हैं कि प्रमुक्त अंग वहाँ से लिया गया? यदि वे अपनी कृति में से ही कुछ उद्धृत करते हैं तो सर्व का अनुभव करते हुए उल्लान के साथ लिखते हैं— यथा मम नरनिहविजये ।' इसी प्रकार साहित्य-दर्पण के पद परिच्छेद में मन्थ्यज्ञा का वर्णन करने समय प्रनिबन्ध के उदाहरण में अपनी रचना प्रभावनी का स्मरण करते हैं — यथा मम प्रभावत्या विद्वक् प्रति प्रशस्त — ममे कथमिह एवाजी वतस ? इत्यादि ।

अपने पिता की कृति का उल्लेख करते हुए भी सब के साथ कहते हैं— "यथा मम शानपदानाम्" इत्यादि । परन्तु व्यायोग के नकार करने के बाद उदाहरण प्रस्तुत करने समय वह कहते हैं यथा — सौगन्धिकाहरणम् ।" यदि यह साहित्याचार्य की ही स्वीकृत कृति होती तो यहाँ भी वे स्पष्ट लिख देते जैसा अन्यत्र किया है । फिर अनुप्य का स्वभाव है कि जब अपनी कृति विद्यमान हो तो वह परीक्ष रचना में तेज़ दृष्टान्त रखना पसन्द नहीं करेगा । इतना ही नहीं, दर्पणकार विश्वनाथ पौड्या भाषा बारविलामिनी भुजङ्ग हैं । इसके अनिश्चित साहित्याचार्य द्वारा निर्मित प्रबन्धों की तालिका पर दृष्टिपात करने से भी दोनों विद्वानों के व्यक्तित्व में भिन्नता स्वतः सिद्ध हो जाती है । गैरोलाजी न भी आनन्दारिक्त विश्वनाथ के जिन ६ ग्रन्थों का उल्लेख किया है, उनमें सौगन्धिकाहरण का नाम नहीं लिया है ।^१ यह ग्रन्थ—पटल इनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है जब कि दृष्टकार का एक अकेला सौगन्धिकाहरण ही उपलब्ध है । दर्पणकार वे इन तीनों ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख नहीं हैं । श्री पी वी काणे न भी दर्पणकार की कृतियों में इसे स्थान नहीं दिया है । इन दोनों की पंजी भी भिन्न है । जहाँ साहित्याचार्य विश्वनाथ की भाषा माधुर तथा प्रसाद गुणों में भण्डित है वहाँ नाटककार की भाषा धमि-नव-शब्द-विन्यास तथा जटिल-पनस्प-पदा ने युक्त एवं व्याकरण के अनुशासन में पूर्णतया जकड़ी हुई है । इन प्रकार दोनों पण्डितों के व्यक्तित्व में भेद

१- देवए - तन्मीमीकामहित महिन्दर्पण की मूयिका और महवृत साहित्य की इति-
हास (वृत्तमस्करण) गैरोला - पृ० ६६२

स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में कालिदासों एवं विक्रमादित्यों की कमी नहीं है उसी प्रकार विश्वनाथों का अभाव भी नहीं है। इन दो विश्वनाथों के अतिरिक्त संस्कृत जगत् में प्रसिद्ध अन्य विश्वनाथों की सूचना भी मिलती है जो निम्नाद्धृत सूची में निर्दिष्ट है। सौमन्धिकाहरण के रचयिता इन सबसे भिन्न व्यक्ति है।

कवि	रचना	प्रकार
१ विश्वनाथ	मृगाङ्गुलेखा	नाटिका
२ विश्वनाथभट्ट	शृङ्गार वाटिका या शृङ्गार वापिका	
३ तत्पञ्चानन विश्वनाथ		
४ विश्वनाथ(टीकाकार)	रायवपाण्डवीय पर टीका	टीका

लक्षणकार एवं रूपकार विश्वनाथ के व्यक्तित्व में ही अन्तर नहीं है, उनके कथन में भी भेद है। साहित्याचार्य विश्वनाथ ने साहित्यद्रपण में सौमन्धिकाहरण का नाम व्यायोग के लक्षण करने समर्थ उदाहरण - स्वरूप लिया है^१। परन्तु इस रूपक के रचयिता ने इसकी प्रस्तावना और अन्त में इसे प्रेक्षणक की संज्ञा दी है।^२ अतः "सौमन्धिकाहरण" व्यायोग है या प्रेक्षणक? यह प्रश्न भी संस्कृत साहित्य की विवादग्रस्त समस्याओं में से एक बन गया है। इस प्रश्न पर विचार करने में पहले व्यायोग और प्रेक्षणक के लक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन करना अनुचित न होगा।

१- व्यासनिवृत्ता व्यापाय स्वल्पस्त्रीजननयुतः ।

“ ”

यथा सौमन्धिकाहरणम् भा ८ परि ६

२- तत् नायका प्रणीतमस्मिन् सौमन्धिकाहरण नाम प्रेक्षणकमस्मात्स्वधर्मिनिष्ठपूवमाभ्यः ।

ममाप्यभिद सौमन्धिकाहरण नाम प्रेक्षणम् । सौमन्धिकाहरण पृ० २.

व्यायोग और प्रेक्षणक का तुलनात्मक विवेचन

व्यायोग में क्या-वस्तु पुराण-प्रमिद या इतिहास-प्रमिद होती है। इसका नायक धीरोद्धत राजपि अथवा दिव्य पुरुष रहता है। इसमें पात्रों का बाहुल्य तो होता है परन्तु स्त्री-पात्रों का अभाव मा रहता है, युद्ध होता है किन्तु स्त्री के कारण नहीं। इसका विस्तृत लक्षण आरम्भ में ही दिया गया है। प्रेक्षण प्रेक्षणक का पर्याय प्रतीत होता है। इसका लक्षण साहित्य रूप में दृष्टिगत होता है। प्रेक्षणिक, प्रेक्षणीयक आदि पद अभिधानकोशों एवं विभिन्न साहित्यशास्त्रों के लक्षण-ग्रन्थों में रूपक के एक भेद के अर्थ में प्राप्त होने हैं।^१ इनके अनुसन्धान से प्रेक्षण प्रेक्षणक का ही स्थापनापन्न प्रतीत होता है। जारदातनय, भोज एवं सागरनन्दी इसे नृत्तल्लोक मानते हैं—“प्रेक्षणिक नृत्त रूपकम् ।.....”

व्यायोग एवं प्रेक्षण के लक्षणों को ध्यान में रख कर जब हम सौगन्धिक-वाहरण का अध्ययन करते हैं तो इसके व्यायोग होने में कोई संदेह नहीं रह जाता। कारण, इसकी कथा वस्तु का आधार, वन-पर्व के अन्तर्गत तीर्थयात्रा के समय की कथा का वह भाग है जहाँ स्नान करती हुई द्रौपदी को गन्धमादन पर्वत की ओर में उड़ कर आया हुआ “सौगन्धिक” नाम का कमल मिलता है। इस प्रकार के और भी, फूल लाने का आग्रह द्रौपदी धीरोद्धत नायक भीमसेन से करती है।

भीमसेन -

सौगन्धिक किमपि गन्धवहोपनीत मामोक्त्य कीलुकवताहृदयेन कृपणा ।

गन्यानि याचितवती किल तादृगानि सञ्जस्तदाहूनि-विधौ मम बाहुरेप ॥^२

इसके सहायक पुरुष पात्रों में हनुमान, कुबेर वज्रवुक्ती, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव आदि हैं। स्त्रियों में केवल द्रौपदी के ही दर्शन होने हैं। इसमें कुबेर के साथ युद्ध स्त्री-निमित्तक नहीं हैं, प्रत्युत सौगन्धिकपुष्प के कारण हुआ है।

१- देखिए - भरतकोष में प्रेक्षणक का अर्थ एवं विवरण।

२- सौगन्धिकवाहरण ८, पृ० ३

इसमें शृंगार रस से सम्बन्ध रखने वाली वैशिवी वृत्ति का आशय न लेकर आरम्भ की जा प्रयोग किया गया है। वीर एवं अद्भुत रस मुख्य-रस के रूप में विद्यमान हैं। इस प्रकार दर्पणवार द्वारा उक्ति व्यायोग के मंत्र लक्षण इसमें वर्तमान हैं।

फिर भी रूपककार विश्वनाथ के उपर्युक्त वाक्यों में सबको भ्रम में डाल दिया है। डॉ. दण्णय घोभा ने अपनी एक पुस्तक में संस्कृत में एकाकी विषय पर चर्चा करते हुए मीमंसाकाहरण की मण्डना प्रेक्षण-कोटि के रूपको के साथ की है^१ जबकि प्रेक्षण का एक भी लक्षण इसमें नहीं मिलता। कारण, इसमें नायक नीच होता है, गर्भ तथा विमिश्र सन्धियों का अभाव होता है, प्रवेशक और मूलधार को भी इसमें ध्यान नहीं दिया जाता। नियुक्त (वाद्युत्त), सम्प्रेत (मरोपभाषण) आदि के चित्र इसमें मिलते हैं तथा सब वृत्तियाँ होती हैं। प्ररोचना तथा नान्दीपाठ नेपथ्य से प्रसारित होते हैं। इस लक्षण को ध्यान में रखते हुए प्रेक्षण के उदाहरणस्वरूप वालिबध को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना अशुचित युक्तिसंगत प्रतीत होता है। डॉ. घोभा प्रेक्षणक के लक्षण करते हुए आगे एक बड़े नाटक के अन्तर्गत ध्यान वारो दूसरे नाटको को भी प्रेक्षण की मंजा देते हैं।^२ इस प्रसंग में उन्होंने राजशेखर को बाद दिया है। मीमंसाकाहरण किसी बड़े नाटक के बीच में भी नहीं खेला गया है। यह तो एक स्वतन्त्र लघु नाटक है। अतः इसे बर्टनरेजर मानकर भी

१- भास्करवर्मा का 'उत्तम रसक', लोचन चन्द्र का 'कृष्णाम्बुदय', विश्वनाथ का मीमंसाकाहरण प्रेक्षण की कोटि में आते हैं - हिंदी नाटक उद्भव और विकास पृ० ३२६

२- जब एक नाटक के अन्तर्गत दूसरा नाटक आ जाता है तो वह प्रेक्षण कहलाता है। राजशेखर के बाद रामायण नाटक के अन्तर्गत एक प्रेक्षणक पाया जाता है। . .

मीमंसाकाहरण प्रेक्षण की कोटि में आते हैं। यह एकाकी संस्कृत का एक प्रकार से बर्टनरेजर कहा जा सकता है - हिंदी नाटक उद्भव और विकास पृ० ३२५.

अप्रेक्षी में बड़े नाटकों के साथ साथ लघु नाटकों का अभिन्न होता था, वे बर्टनरेजर कहलाते थे। उन्हीं का विविध रूप आधुनिक एकाकी है। प्रेक्षणक संस्कृत बृहद्नाटका के मध्य में अभिनीत होते थे। संभव है इनका विकास वहीं से हुआ हो।

हिंदी नाटक उद्भव और विकास पृ० ३२६

प्रेक्षणक (प्रेक्षक) की कोटि में रखने में संकोच होता है। डॉ. कीय एवं कृष्णनाचारी जैसे इतिहासकारों एवं साहित्य के समीक्षकों ने भी इस व्यायोग के नाम से ही अलंकृत किया है। श्रीकृष्णनाचारी जी ने इस पुस्तक का नामान्तर 'परिचय व्यायोग' भी बनाया है। उन्होंने अन्य उत्पत्तियों की पटलिका प्रस्तुत करने समय प्रेक्षक के दृष्टान्त स्वरूप सौमित्रिकाहरण का नाम न लेकर शारदानयन एवं मागरनन्दी जैसे प्रायोगिक लक्षणकारों का अनुसरण करते हुए जिपरमदन, नृसिंह विजय और वालिवध का ही नाम लिया है। अब विचारणीय प्रश्न यह रह जाता है कि क्या मागधिकाहरण व्यायोग है तो हमके रचयिता ने इसके लिए प्रेक्षणक नामक भ्रामक शब्द क्यों चुना जिससे लक्षणकार तथा उत्पत्तार के कथन में भेद प्रकट होता है।

विविध ग्रन्थों के रचयिता होने के कारण सचनोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्याचार्य बिद्वन्नाथ का सौमित्रिकाहरण को व्यायोग कहना उनका प्रमाद था, ऐसा कहने का दुम्माहम बिना विचारे नहीं किया जा सकता। अतएव यदि हम एक मान सौमित्रिकाहरण के कता विश्वनाथ की कृति में प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से प्रेक्षणक पद आ पड़ा होगा—ऐसा कह तो दोनों विद्वानों को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुँचती। प्राचीन भारत में मुद्रण की प्रथा नहीं थी। उस युग के कवियों की स्वहस्तालिखित प्रतियाँ अब नहीं मिलती हैं। जो देखने में भी आती हैं वे परहस्तलिखित होती हैं। अतः संभव है, यह प्रतिलिपिकारों की उपमा का ही प्रमाद हो।

अभिधान कोशकारों ने भी प्रेक्षणक शब्द के विभिन्न अर्थ बतलाए हैं। उनमें से इसका एक अर्थ सामान्य रूप भी मिलता है। परन्तु यहाँ सौमित्रिकाहरण में उल्लिखित प्रेक्षणक के आधार पर इसे सामान्यत्पर मान लेने पर प्रतिष्ठापित दोष की समाधान है। अब इसे पाठान्तर मानने में कोई हानि प्रतीत नहीं होती।

काव्य सौष्ठव

इस विवादमूलक प्रश्न के समाधान के पश्चात् सौमित्रिकाहरण में प्रदर्शित कवि के कवित्व पर यज्ञों में विचार कर लेना अप्रासङ्गिक न होगा।

महाभारत की कथा का सकेत ऊपर दिया जा चुका है, उसमें कवि विश्वनाथ ने अपनी कल्पनाप्रसून प्रतिभा द्वारा आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन कर दिया है जिससे टमकी चाला एव रोचकता में वृद्धि हो गई है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही प्रस्तावना में विषय प्रवेश की सुन्दर-पद्धति को देखकर कवि की निपण्णता का परिचय मिलता है।

उनकी पवित्रता का पट कर कान्तिदाम के पात्र प्रवेश द्वारा बीमग्याम^१ की पद्धति का स्मरण हो आता है।

नवाम्बि बीमग्याम हारिण्या प्रथम हृत ।

गप राजेव दुष्यन्त मारोणानिरहमा ॥

जिस प्रकार कान्तिदाम के शत्रुनाश में देर होने का कारण नौ के मगुर गीत को बतलाया गया है उसी प्रकार विश्वनाथ ने भी कृतों के लाने में शिथिल होने का ही अभिप्राय में देर होने का कारण बतलाया है।

वृत्तं विबग्मात्रमिदं भवत्या मत्त प्रमूतान्यहमाहुरामि ।

देव्या वृत्तभी द्रुपदात्मजाया मौगन्धिकातीव ममीगमूनु ॥

‘जिस प्रकार पवननय भीम द्रोपदी के लिये मौगन्धिक पुष्प ला देता है ठीक उसी प्रकार मैं आपके लिए फूल ला देता हूँ।’ यहाँ भीम की उत्पत्ति वायु में हुई थी, इसका सकेत है। महाभारत में भी उसे पवनारज्य कहा गया है।^२

कवि ने महाभारत की कथा में परिवर्तन कर, उसे नाटकीय रूप देकर मौगन्धिकाहरण की श्रीवृद्धि की है। महाभारत में भीमसेन युधिष्ठिर के पीछे जाकर सरोवर में फूल वसपूर्वक लेते हैं किन्तु यहाँ भीम धर्मराज द्वारा रोके जाने के भय से इस कार्य के सम्पादनार्थ चुपचाप निवस पड़ते हैं, जिससे सुदृष्टता की भांति का उल्लङ्घन होने से मर्यादा का भंग भी नहीं होता और प्रिया की उच्छ्वास की पूर्ति भी निर्विघ्न हो जाती है।

१- अभिरुत काव्य

२- महाभारत - पञ्चरात्र-वि नीववाजा - १२१ - अध्याय ३.

‘ध्रुव प्रियाया प्रणय क्षति व्रजेद् विपर्यये म्याद् गुरुवागनिक्रम ॥’

नायक भीम को अपने प्रति द्रोपदी के अखण्ड प्रेम को देखकर गर्व और उल्लास का अनुभव होता है, कारण द्रोपदी प्रेम के वन से उसकी भुजाओं के बल की परीक्षा भी करना चाहती है। वीरविलासिनी पत्नी पनि को काम मौप कर तत्क्षण प्रचण्ड विरह वेदना में पीड़ित हो डबडबाई आँखों से भीम को विदा करती है। झुम पड़ी म अयुदधान म अनिष्ट होने की संभावना रहती है, इसे ध्यान में रख कर मानव जगत् के मृदमनिरीक्षक कवि ने भीम द्वारा क्षत्रियाणी को वातर न बनने का आदेश दिया है। भीम को अपने दाहवत् पर पूर्ण विश्वास है। वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये प्रस्थान करता है। मुगन्धयुक्ता वायु जिम ओर बह रही थी, उसका अनुसरण करते हुए भीम को बन्धु देखने का अवसर मिलता है। यहाँ कवि का वगन महाभारत के प्रकृति चित्रण में उसकोटि का प्रतीत होना है।

दपोंद्रिक्क शरारपानमुलसान्द्रुद्रवद्रुद्र
पाकोदगन्धकपित्तधस्मरकपित्रीडासहिष्णुमा ।
दृश्यन्ते च रतोत्सुकानुननुध्यापार—वीसादर—
स्मेरान्योन्य विपक्वदृष्टिश्चरस्त्रैणा वनक्षोणय ॥^१

नुवना कीजिये—

पुम्कोविसनिनादेपु पट्पदाभिरतेपु च
वदध्रोत्रमनश्चक्षु जगामामितविक्रम ॥
जिघ्रमाणो महातेजात् सर्वतुङ्गमुदभवम् ।
गन्धमुदामकामोऽग्री वने मत्त इव द्विष ॥^२

इसी प्रसंग में उत्प्रेक्षा द्वारा कवि बांस के अन्दर में निक्लने वाले पदार्थ वशलोचन का उल्लेख करते हुए वन की शोभा अद्भुत करते हैं। ये बांस के पेंड कांटों के समूहों में लगे हुए चमर मृगों के मुलायम बालों से ऐसे

१- मीमांसाहरण १२

२- महाभारत - अरण्यपर्वणि तीर्थयात्रा २१-२६

सुगोमित हा रह हैं माना पव जान के कारण फी गॉट के भीतर म निक्का मोती की बिरणा का व्यतिकर हा । चमरनामक जगती पशु विषय का उत्तेजक कालिदास ने मेघदूत में भी मिलता है । इस प्रकार कवि द्वारा प्रकृति के सूक्ष्मनिरीक्षण का परिचय उपलब्ध होता है ।

गन्धमादन पवत के समीप आन हा भीम को अपन भाद पवन-नय हनुमान् की धाद आ जाती है । वहा हनुमान् ब दान भी हान हैं । महाभारत में हनुमान् भीम को चारा युगा आ महत्व अनग अनग सम्मान हुए भवन-वत्सल राम के जीवन का वृत्तान्त सुनाते हैं । विश्वनाथ कवि ने यह प्रसंग सौम्यचिन्ताहरण में छोड़ दिया है । वन में भीम को आया देख हनुमान् उसकी हित में रास्ता रोक कर लोट जाते हैं और कौतुहलवश अपना परिचय गुप्त रख कर भीम से विवाद करते हैं । यहा कवि की उच्च कौटिली की भावामिव्यञ्जना का दृष्टान्त मिलता है । इस अंग को पढ़ते समय भाव हन मध्यम व्यायोग में घटोत्तच और भीम के बीच हुए सवाद का स्मरण आ जाता है ।^१ जब हनुमान् भीम की परीक्षा लन के लिए पवनतनय की बुराद करा जान है तब अकार-सम्भव के शिवजी का स्मरण हो आता है जिनका बन्ना हुआ दोषप्रदगत देव पावती का चहल क्राध से तमनमा उठना है । रहस्याद्वाग्म शान पर दो माइया के मिरन का चित्र मध्यम व्यायोग के बिना पुन ब मर म मितना-जुटना प्रतीत हाता है ।

भीमसन - आशरीकृत - मुभम् भीमसनान्निवादयत
हनुमान्-वत्न चिरनिबद्धाज्य परिरम्भणमनादय एततामस्य जनस्य ।
तुम्हा कीजिय—

भीमसन - गृह्ये हि पुन (परिष्वस्य) पुत्रापक्षीणि मनु
मिनु हृदयानि । पुन । अनिरननराक्रमा ।^२

यह कवि की भीतिक उद्भावना है । इसके अनिरनन कुदर ब माघ भीम क मुद्ध का दृश्य पाठकों के हृदय में आना-जाना क नावा का संचार

१- मर म भावार् ४३ तुम्हा कीजिय—तीगडिहाहरा - ७ पृ० १६.

२- मध्यम व्यायोग

करता है। कुछ एक सुन्दर वाक्यों में कवि का भाषा पर प्रभुत्व दृष्टिमान होता है।

हनूमान् (सम्नेह भूयः समादिनप्य पार्श्वं उन्वेक्षयन्)

अहो, सौमित्र नामसर्वानिमायिनश्चित्त-निवृत्तिनिधे प्रणयप्रसरत्स्य
पराकाष्ठा । शिव । यः कश्चिदपि भावनात्मनिर्वेशादेव लोके प्रमाणयति

— + +

कुबेर — भो किमेतावनाप्यपराधः ।

ननु मानरूचेरयं गुणः सहतेऽस्मै परवर्जितं न यत् ।

निगमय्य घनाघनध्वनिं निभृन्मिदं हि नु केसरि ॥^१

इस प्रकार सौमित्रिकाहरण में एक सफ़्त नाटक के गुण वर्तमान हैं। नीलकण्ठ कवि ने भी महाभारत की इन कथा पर आधारित “बन्ध्या-सौमित्रिक” नामक व्यायोग रचा था। ये सम्बन्ध केरल के कुनरोवरवर्मन् के समकालीन थे।

नरकामुर-विजय व्यायोग

विश्वनाथ के सौमित्रिकाहरण के बाद १५ वीं शताब्दी (ईसोत्तर) के धर्ममूरि-रचित नरकामुर वध (नरकामुरविजय) नामक एकाङ्की व्यायोग भी महत्वपूर्ण है। इनके रचयिता को धर्ममुरी और धर्ममट्ट भी कहा जाता है। कृष्णा-नदी के तट पर अवस्थित “पेडपन्निरु” नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था। कुछ एक सूत्रों में यह भी जाना होता है कि वह तेनाली के पान मद्रास राज्य के गुन्तुर जिले के वडेवेरा नामक स्थान के निवासी थे। वह हरित-गोत्रोद्भव तैलंग ब्राह्मण पर्वतनाथ और बेलम्बा के पुत्र थे। एक सम्बन्धी अवधि तक बनारस में रहने के कारण इनके अनुवर्षज वाराणसी परिवार के नाम से विख्यात हैं।^२

१- सौमित्रिकाहरण १११ पृ० ३६.

२- नरकामुर विजय पृ० ३.

हो गया। उसके दिन प्रति दिन बढ़ते हुए मत्स्याचारो से भूतल कांप उठा। कृष्णावतार में नारायण ने उसका वध किया था।

धममूरि के नरकामुर-विजय व्यायोग में इस इतिहास-प्रसिद्ध कथा का सफल नाटकीकरण किया गया है। तन्नुमार बराह के रूप में विष्णु भगवान् ने जब पृथ्वी को लीलावश अपने दाँतों पर उठाया था उस समय घरा से सम्पर्क होने के कारण कृष्ण के नरक नामक एक गत्र उत्पन्न हुआ था। सन्ध्या समय तक उन्हें इस पुत्र नरक ने राक्षसी तन धारण करके स्वर्ग तथा इह-लोके के लोग का सन्ताना शरणाग्र कर दिया। इन्द्र एवं नारद के मुख से यह वृत्तान्त सुन कर मामने उपस्थित हुए दारुण से नरक के दुराचारा की दार्ता मुनन के उपरान्त वैशव ने अपने पुत्र का भी परवाह न करके उस मारकर लोक रक्षण करने की प्रतिज्ञा घोषित की^१। प्रस्तुत एकाङ्की के इसी स्थल पर श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा के नरक नामक दारुण राक्षस का परिचय जानने की इच्छा प्रकट करने पर भगवान् कृष्ण के सारथि दारुण ने इस दैत्य के जन्म का रहस्योद्घाटन किया।^२

साहित्यिक समीक्षा

प्रस्तुत एकाङ्की व्यायोग में शास्त्रीय नियमा का सम्यक् पालन करत हुए श्रीकृष्ण द्वारा अपने ही पुत्र नरक के वध का वर्णन किया गया है। इसमें पिता पुत्र व युद्ध का तत्त्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में स्त्री नहीं है। यहाँ तो श्रीकृष्ण-नरकामुर संग्राम का कारण विद्युद्धरुपण सोव-रक्षण ही है। जब कि मांस के मध्यम-व्यायोग तथा दिग्भनाथ के सौम्यविद्याहरण जैसे व्यायोगों में प्रत्यक्ष रूप से युद्ध का तत्त्व स्त्री की प्राप्ति न होने पर भी

१- कृष्ण - धर्मवेध्यादि भक्षा ये रक्षणीया विन्दत ।

नरकामुरावपयानि भक्तस्तु तन्वा मम ३२४॥

नरकामुर-विजय व्यायोग-१४ १६

२- दारुण - पुरा धनु सख-गाराकार-मूलरिता धरिता महाबराह-रुमधलम्ब्य समु-
दरता धारुण्यतः तस्या निपादसङ्कतागमेकनर युत्वादिभ्यः, तन सध्वजमममुपत-
तया उद्गहीम् भागुषी दनुमधितम् । नरकामुर-विजय १४ १६

क्रमशः माना के लिये माम नाना एवं अपनी भार्या के लिये मीनगन्धर्व पुष्प लाना है। शास्त्र के नियम-पालन के समर्थ मनेते रहने पर भी कवि कुछ एक विचारणीय आलोचना को मस्कन वाणी बाल निज ही गद्य है। सर्व प्रथम विष्णु भगवान् की शृङ्गार-मय लीलाया से रञ्जित नान्दी-गाथ की पत्तियाँ ही वीररम प्रधान-व्यायोग के अनुबन्ध नहीं प्रतीत जानी है।

कस्तूरी परिदिग्धमुग्धममलावधोजनुद्व्या ध्रुव
नीराट्टे मिश्रण नित्यकृतकी दैव्याग्निव्यान्मन ।
प्रत्यङ्गाभरणेषु दीप्तिवपुष मयाम्बु दा स्पृष्ट
भामाभयगुरात्मना विदधत चन्द्राक्ष-वृन्दस्य ॥^१

स्मर मूर्तोदय का वधन करते समय कवि पुनः यवन प्रादम को भूत कर यवन राज्य का नालित्य दिव्यमान के लिये भगवान् भास्वर की वामुकता का चित्रण करने को मचन उठते हैं—इत्थि—(पुनश्चित्रोपय मन्त्रयम्)

उद्दिन यनु भगवान् भवन-धेयस्वरु भाम्बर । नूनधयमधुना वामपि
—आमा पश्चिमाग्नीमान्तर । यदिदानीम् —
नीनभय मवाचदध कृन्नीयनाया
रागावितम्बुहिन वाप्यमुक्ती नतिन्या ।
नीनश्रियो विगलितालिगिरो विवम्बान्
पुष्पानि पादपतनेन पुर प्रहपंम् ।^२

अर्थात्—पुर के बाहर कही हमारे स्थान पर राग विमान के कारण भयभीत मन-मस्तक रति तुहिनम्पी (ओसकस्य) अध्रु (वाध) त्याग करनी हुई अनुराग भरी नलिनी को उसके चरण पकड़ कर (क्षमा याचना करके) प्रमत्त करने की चेष्टा कर रहा है ।

ऐसे स्थला की वाक्य छग मनोहर होने पर भी मान्य नहीं मालूम

१- सरागपुर चित्रण १० १

२- सरागपुर चित्रण, ५

देती। यह भृङ्गार-प्रकरण भार तया प्रहसन के लिये अधिक उपयुक्त लगता है। इसके बचाव में यही कहा जा सकता है कि इनकी सूचना प्रस्तावना में मर्केन द्वारा दी गई है।

प्रकृति चित्रण

इसके अनिरिक्त प्रामाणिकी-वनलक्ष्मी की छवि भी प्रथम दृष्टि में तो बड़ी भली लगती है परन्तु विचार-गुला पर नौचन पर उसका एक उपमेय में मायम्य स्थापना का प्रभाव यहाँ गमक-हृदय का खेल सकता है। यहाँ निगा की कवि धूपछाँही बम्बान्विता बनाना चाहते हैं। किन्तु शक्तिनिर्माणिक ताम्बूलयोरिव दग्धादि मयनों पर द्विवचन का प्रयोग भावाभिव्यञ्जना में कवि की अशक्तता को प्रकट करना है यथा—

मृदुलान् (मकीनुक सवनं प्रलोक्य) अहो प्रमदयति मम हृदय प्रामा-
निकी वनलक्ष्मी ।

मय्याम्बर शक्तिनिर्माणिक भाति साक्षा
ताम्बूलयोरिव रमैरग्राध्रनेत्रं ।
हारं प्रमूतनिकरैरिव तारकैश्च
चूर्णं पटीरनिबहैरिव चन्द्रिकानी ॥

मय्याम्बर अर्थात् मीनादास साक्षा एक ताम्बूल के रस में लाल तथा तारकम्पी फूलों के गुच्छों, हारों और चन्दन के दृश की तरह चन्द्रिका के अश समूह में युक्त होने के कारण शक्ति एवं निगा के समान शक्ति है।

लगता है, यहाँ हमारा दार्शनिक कवि दर्शन एवं काव्य के क्षेत्र में समान योग्यता के प्रदर्शन के लिये दार्शनिक विचारों में मग्न है। ध्यान दूटने पर वह वीररत्न के अनुकूल ममत्त लोच को आलोचित करने वाले तेजोमय भावों की स्तुति में रवे से कनिष्ठ श्लोकों में अपनी कविता की महिमा एवं मनुस्मिता की भाँकी प्रस्तुत करता है। इनमें कनिष्ठ वदालम्ब एवं गद्यात्मक पंक्तियों की भाषा बालातद्धार-मण्डिता हान के कारण शक्ति स्वर प्रतीत होती है। इस एकाद्वी में अधिकतर उत्प्रेक्षा, अनुप्रास और उपमा का प्रयोग किया गया है। जैसे—

इयामोभूता सुरपथवती , शसरेष्वानपेन
सृष्ट्वा घात्रा निशि विरचितंदोहद्वैध्वन्तिधूर्प ।
मद्यस्ताराकुमुमहचिरा मण्डनेनास्य मानो
सशरयेषा भवति फलिता पल्लविन्युभिश्च ॥^१

यहाँ उपा-बाल में भूतल पर फैलती हुई मूष की किरणों की शोभा का सुन्दर चित्रण है। रात्रि में बिद्याला द्वारा निर्मित शब्दकाररूपी दोहद के फलस्वरूप उपाकान्त में तारकरूपी पुष्पों में भरी हुई यह सुरपथ की बनमाना मानो फलवती होनी दिखाई दे रही है।

जिस प्रकार दार्ढिम के वृक्षों के नाचें धूआदि द्वारा दोहद बम बनने पर फल लग जाते हैं उसी प्रकार वहाँ बनमाला ध्वान्तरूपी दोहद में प्रपिन एवं पल्लविन होनी चाहिए है।

यदि ने भगवान् विष्णु के सम्मान में बनाये जाने वाले शास्त्राधीन उत्सव में पधारे हुए अतिथियों के मनोरञ्जनार्थ अभिनीत^२ व्यायोग का इस प्रकार धीजन्यास किया है।

भीति बिभ्रन्ननतामनिता जहीहि
देवदा मुञ्च नगरी न गरीयसी स्वाम् ।
रक्षोवलेन सहसा तह साहसाम्नी
हव्य करोति नरक नरवष्टक तम् ॥^३

अर्थात् हे इन्द्र ! अपनी शौरवान्विता नगरी को मत छोड़ो। अपने विपक्ष की जनता से जनित भीति का सर्वथा त्याग कर दो। सम्पूर्ण राक्षस सेना के साथ मनुष्यों के मार्ग के कष्टक स्वरूप नरकामुर को मैं अपने बाणों की अग्नि से भस्म कर दूँगा।

धर्मसूरि पर माघ का प्रभाव

इन पङ्क्तियों के पदवाच दारुक द्वारा श्रीकृष्ण को मुनाए गए नरकामुर

१- महाभारत-६

२- नरकामुरविषय पृ० १.

३- नरकामुरविषय, १८.

के कुकर्मों से माघकाव्य के प्रथम सय का ध्यान हो जाता है, जहाँ महर्षि नारद देवकीनन्दन को शिशुपाल के दुष्टाचरण का हाल सुनाते हैं जिसको सुन कर श्रीकृष्ण शिशुपाल का वध करने का निश्चय धारित करने हुए अपना पाञ्च-जन्म फूँकते हैं।^१

“ओमित्युक्त्वनाज्य गाङ्गिरा इति व्याहृत्यवाचो
नभनभस्तस्मिन्नुत्पन्नित पुं मुरमुनाविन्दो श्रिय विभ्रति ।
सत्रूणामनिम विनाजपिनुन क्रुद्धस्य चँद्य प्रति विभ्रति
व्योनिव भृष्टिच्छनेन वदन केतु-च्छाराम्यदम् ॥

श्रीकृष्ण के छिपे हुए क्रोध को भड़काने के लिए दारुव के मुत्र में त्रिलोक के देवताओं एवं ग्रह नक्षत्रों के समाचार सुनवान के व्याज में भी कवि ने अपने कौशल का प्रदर्शन किया है जिस पर माघ एवं भारवि के महा-काव्यों की प्रतिच्छाया स्पष्ट लक्षित होती है। निम्न प्रकार माघ काव्य के शिशुपाल दैत्य से हम सूर्य, चन्द्र और अन्य देवताओं को वध्न पात हैं ठीक उनी के समान “नरकामुर-विजय के प्रनिनायक भामासुर में मुग्गणा का दुःख पाता देखते हैं। नारद के मुत्र में सुने हुए नरक के दुर्वृत्त में श्वकी पुष्टि हो जाती है। यथा-

अव्याज मुद्रावृणोति नगरीमध्याह्नो वामवी
दिव्यानि प्रमभ वनानि हरणे नव्यानि कन्यद्रुमै ।
हव्यानि ज्वलने वृनानि मुनिमि नव्यानि चात्ति स्वय
कव्याद वनकात्रिकूटकटकार् म व्याप्य नश्रीवने ॥^२

यही सरलता से बार बार इन्द्रपुरी को घेर कर नव्य वस्त्र-वृक्ष मय उपवनो से सुन्दर वस्तुओं का हरण करता हुआ अद्रिकूट पर्वत पर मुनियों द्वारा पतागि में समर्पित हुये पदार्थों और मुनिजनों के शरीरों के रक्खे भाँत का भक्षण करता हुआ अपने सहचरों के साथ क्रीड़ा करता है।

तुलना कीजिये—

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दन मुषाण रत्नानि हरामराङ्गना ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्रिषा बन्धो य इत्यमस्वास्पृशमर्हदिव दिवः ॥

१- शिशुपाल वध प्रथम सय पृ० २३६.

२- नरकामुरविजय २०

पुराणि दुर्गाणि निशातगायुध बलानि शूराणि घनाश्च वञ्चुका ।
स्वरूप गोभैरु फलानि नाकिना गल्लयमाशङक्य तदादि चक्रिरे ॥^१

नरक में प्राप्तकित मूख धीर चंद्रमा की दगा भी दयनीय है

तदादीबन् - धूमिधूसरतनुस्य प्रतापाग्निना
मनसस्तद सिलतारिनिवरं निर्मिन्न बिम्बो मृदु ।
वाराही विनिमज्जनन रजनीप्रासमानमाश्वासयन्
कान् यापयति त्विषामविपति कृच्छ्रेण भाक् ग्रहे ॥
चंद्रमास्तु तनिग्रहानुग्रहाभ्यामुपचापचपौ मृदु प्रतिपद्यत

अर्थात् पराक्रमी नरक द्वारा किए गए धात्रमणा (बागी) में तनवारा के तेज प्रहारा गव उमके तेज में मगध्न मूख रात भर ठण्डी थाह भग्ना हुआ किसी प्रकार अपना समय व्यतीत कर रहा है। चंद्रमा ने गुणस्पर्श उमकी हारा का पाव हो चुका है।

तुलना बीजिये

स्पृहन् सगच्छ समये शुचावपि स्थित करारैर्ममप्रणानिभि
अथमथमोदिकविदुमातिर्वरचकाराम्य दधुग्हस्कर ॥
कलागमप्रण बहानमुञ्चता मनस्विनीकृत्कर्मित पत्नीयसा
विलासितस्तस्य विनयता रजि न नमभाचिष्यमकारि नवना ॥^२

अमगूरि के नीलमुद्गरगिरि के बगन के प्रमग में गवन का मन्द मानने की कल्पना माघ कवि के चित्रण की मा. दिनाती है जिसके कारण वह कवि मनुष्य में घण्टा माघ के नाम में सम्मानित हुए थे। भागवि के किरातानुनीय में भी ऐसा दृष्टान्त का प्राचुष है।

उदयति विततोऽथ रश्मि रज्ज्वाद्दृष्टिमहसौ ह्रिम चाग्नि याति चातनम्
बहति गिरिरथ विलम्बिषण्टाद्वयगरिवारिण-वारणे द्रलोचाम् ॥^३

१ गिरुपान वध सग १ ५१ ४५ प० १५५

२ गिरुपान वध प्रथम मग ५० १६

३ गिरुपान वध चतुर्थ सग

चाप्येयमान्द्रवनराजिविराजमान-पार्श्वद्वयस्तुहिनपाण्डुर-तुङ्ग-भृङ्ग ।
निष्पन्दमान विततायत-हेमपल भ्राजद्वलस-मुसताक्ष्यधिय ननोति ॥^१

चम्पा पुष्प के वन से युक्त एवं बर्फ से ढंके होने के कारण पीले एवं भस्मेद भृङ्ग वाले पर्वत के दोनों पार्श्व मानो गहड़ के पैसे हुए निष्कम्भ (म्यिर) मुतहने पल ही है। तात्पर्य यह कि यह पर्वत गहड़ की शोभा पा रहा है।

इस रूपक के गद्यात्मक संवाद भी बीररसोचित तथा प्रभावोत्पादक एवं कवि के भाषागत अधिकार को पुष्ट करने में समर्थ है। इन एकाङ्किया की भाषा पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालने से संस्कृत के एकाङ्की साहित्य पर हीनता का आरोप लगाने वाले मीमांसकों का आरोप निर्मूल सिद्ध होता है। योद्धाओं के बल को देखकर आश्चर्य प्रकट करने हुए इन्द्रमुक्त जयन्त के भाषण को इसके प्रमाण-स्वरूप यहाँ उद्धृत करना पर्याप्त होगा।

जयन्त - (रथो-चलमपराधय) अहो सर्वोत्कृष्ट खल्विदमग्न्य सैग्यम् ।
तथाहि-सर्वेऽपि सिन्धुरा कुलगिरिवन्धुरा, पद्मकसमिन्ना, प्रभिन्नाश्च नित्तिलाश्च
गन्धर्वा मगर्वा आत्रानया विनेयाश्च ।

एकाङ्कियों में रस

कुछ लोग कहते हैं कि मुक्तक जैसे छिटपुट काव्यखण्डों की तरह एकाङ्की कृतियों में भी रस का परिपाक सम्भव नहीं हो सकता। तब इनका परिगणन रसकों के अन्तर्गत कैसे किया जा सकता है? यह समस्या समीक्षकों के समक्ष उपस्थित होती है। भरतमुनि एवं उनसे अनुप्राणित साहित्याचार्यों द्वारा प्रस्तुत विशद रसमीमाणा पर सूक्ष्म दृष्टिपान करने पर इस समस्या का समाधान स्वयमेव हो जाता है। सम्पूर्ण नाटको में रसनिष्पत्ति और भावुकता को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। रसविहीन काव्य का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं। दशरूपको में से नाटक के प्रत्येक रूप में किसी न किसी रस प्रगी होने की बात देखने में आती है। यहाँ तक कि लज्जप्रतिष्ठ ध्वनिशास्त्रवेत्ता

धान-दवद्धनाचाय व अन्ध-यात्रालोक में मुक्तक खण्ड काव्य धाम्प्यायिका जैसे श्रम्य काव्य एवं एकाङ्की जैसे दृश्य काव्य के लघु रूपा में भी रस का स्वाद प्राप्त कर सकने के प्रमाण विद्यमान है^१ । व्यायोग तथा मञ्जु-साहित्य में कवि वीर धीरे-धीरे रस का आभास प्रस्तुत करते हैं ।

वीर रस का शास्त्रीय विवेचन

शृङ्गार की तरह हमारे यहाँ वीर रस का भी विशेष महत्व रहा है । कदापि से इसकी उत्पत्ति होने के कारण इसका प्राचीनता भी स्पष्ट है ।^२ इस रस में डूबे हुए व्यायोग साहित्य में जो धाम्य शब्द प्रयुक्त दिखाई देने हैं वे दोष नहीं माने जा सकते । कारण अपने विपक्षियों के प्रति मानव की प्रवृत्ति जैसे की संता उत्तर देने की होती है । क्रोधादि के मुख से निकले शब्द अपशब्द होने पर भी एक सहृदय की दृष्टि में घमण्ड नहीं होता । अतः व्यायोग में रनाभास के दहन का अवसर मालों तथा प्रहमनों की अपेक्षा कम मिलता है । शृङ्गार रस के रतिभाव की तरह वीररस का उत्साह भी सदा व्यापक दिखाई देता है । जहाँ शृङ्गार रस हृदय की कोमल भावनाओं का तृप्ति करता है वहीं वीर रस हृदयस्थ भावनाओं की तृप्ति के साथ कमनिष्ठता भी जागरित करता है । शृङ्गार केवल सहृदय के आभ्यन्तर पक्ष को लुप्त करके छोड़ देता है । वीरता का प्रदर्शन केवल समरभूमि में ही नहीं किया जाता, भादश समाज की स्थापना भी धीरे-धीरे पुरुष ही कर सकते हैं । यह छोड़े दिव वाले शीर दुबल व्यक्तियों के कम का काम नहीं है ।

साहित्य शास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन एवं मनन में वीररस के साथ सब रसों की अच्छी तरह व्यञ्जना हो सकने का ज्ञान भी हम होता है ।

१. एतत् मुक्तकपु रचयामि निवेदिन कस्तदाथयमौचित्यम् यथा ह्यमरस्य कवेमुक्त-
का शृङ्गाररसस्यदिने प्रवृत्तायमाना प्रविद्धा एव । -मन्दानिधिरादिषु तु विरटनिवध-
नोचित्वा मध्यमगमाय दीर्घतमाते एव भङ्गदत्ते । प्रवृत्तायकेषु यद्योक्तप्रवृत्तौचित्यमेवा-
नुवर्तन्त्यम्, २. अन्धयात्रालोक -मृदुलम् उद्योत, पृ० १२०८-१२९

२- शृङ्गार उपभूतुषाम्नी बोरोऽभूद्विगतो ज्ञव ।

मयवेवेदो रोत्रो बोधलो मनुष्यः प्रमात् ॥ पावत्रराज तृतीय अङ्किका पृ० १४

पालयन् मे स्वचित् समानता के कारण वीररत्न से साम्य रखने वाले रौद्र तथा पद्मभुज रत्न तो दिखाई देने ही हैं, अभिनव भारती में वीर-रत्न से शृंगार रत्न की सिद्धि भी बतलाई गई है।^१ वीर की विजय में जो प्रसन्नता होती है उसमें दर्शकों को सात्विक हाम के दर्शन हो सकते हैं और प्रतिपक्षी के लड़ने के अनुचिन होंग को देखकर प्रेक्षक के मन में उमका उपहास करने की इच्छा भी प्रकट हो सकती है।

रत्नों के वरु और देवताओं का उल्लेख करके भरत मुनि ने भाव के पूर्तरूप और उनके प्रभाव आदि का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयत्न किया है। वीररत्न का वरु और और देवता भदेन्द्र बनवाए गए हैं।^२ इसमें वीररत्न की प्रवृत्ति और गुण को मुखमना से समझा जा सकता है। जिस प्रकार मोना छुड़ना, चमक एवं गुस्सा (भार) के कारण धानुओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है उन्हीं प्रकार वीर भी हृदय की शुद्धता, तेजस्विता और गुस्सा के कारण सर्वोत्तम एवं सब कार्यों की मिष्टि करने वाले माने जाते हैं। त्रिमूर्ति के स्वामी इन्द्र नीति, शक्ति, प्रताप, यग, गव आदि गुणों में सम्पन्न होने के कारण वीररत्न के देवता ठीक ही माने गए हैं। इस प्रकार भरतनाचाय ने इन रत्न के धर्मों भाव को धूर्त रूप दिया है। व्यायोगकारों ने इनका साक्षात् चित्र ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

धर्मसूरि के नरकानुर विजय में भी कहीं कहीं वीररत्न मूर्तिमान् लड़ा दिखाई देता है। नरक की दूर्गतिओं के उत्तर में श्रीकृष्ण द्वारा उन्चरित वीरोचित वाक्यावलि को सुनकर श्रोता के मन में वीर-रत्न प्रवाहित होन लगता है। यहाँ वीर एवं वीमत्सु का व्यतिकर भी देखने को मिलता है यथा-

स्वमासासनलोमुपा ध्वजशिखापर्यन्त - संचारिणः।

कङ्काद्यास्तव सूचयन्ति विहया दुष्टापसर्बान् बहून्।

मत्काण्डेर्दन्तितोऽत्र कण्ठविलुत्प्राणो रसात्प्राङ्गले

मज्जामुक्-पितितास्यभाजि नरकत्व साम्प्रत द्रश्यते ॥^३

१- अभिनव भारती अध्याय ६-

२- वीर वीरस्तु विजय

वीरभदेन्द्रदेव- स्थान

वा आ अध्याय ६, ४३-४१

३- नरकानुरविजय ७२, पृ० १२

हे नरक ! तुम्हारे मांस के सोभी घबड़ा की सिखा तक उछो हुए गिद्धादि को घपने (भावी नाश की सूचना देने वाले) अप्रत्यक्ष समझो, निकट भविष्य में मेरे बाणा में दलित तथा पिष्ट अपने मांस एवं हड्डियों की तुम इस गणक्षेत्र में गिरना देखो ।

पिता पुत्र की लड़ाई में नरकामुर द्वारा छाड़े गए बाणों के मार्ग से धीवृष्ण अपनी ही निरालों की छाया पड़न में जनते हुए माम्बर के समान भागित हो रहे हैं । वीर वृष्ण की यह शोभा इन पङ्क्तियों में देखी जा सकती है ।

प्राप्तोया स्वर्णा मुरंगोऽग्निमेन
 स्पष्टोऽश्वर्षा भानि मारायणोऽश्वम् ।
 प्रारम्भेऽनू पावक संजिमेन
 स्वीयैर्नैव जगतिषा निगमानु ॥^१

प्रस्तुत व्यायोग में प्रनव स्थली पर 'घाटी' शब्द के प्रयोग की देखकर हम शब्द-विशेष पर कवि का अग्रिम अनुराग स्पष्ट लक्षित होता है । ऊपर वर्णन की वृद्धता का चित्रण करते हुए घाटी शब्द हमें भिन्न ही चुका है । नुरमेता की प्रक्षमा करने समय भी कवि इसका मोह नहीं त्याग रहा है ।

यथा—श्राद्धमणी के समय पटुता दक्षति वाली - श्रोत्रियों के तीक्ष्ण धुरा में कठोर परिपक्वी का निर्माण करन वाली तथा एणु में ध्रुव उद्यमी हुई युद्ध-झीड़ा करन वाली घोड़ों की ये पङ्क्तियाँ मजी खदी हैं ।

ध्यायोगों में सेना की शोभावृद्धि करने के अनिरुद्धि घोड़ों को हम रथ लीकत हुए भी देखते हैं । पुरातनकाल में भारत में दुतपायी वाहन के रूप में रथ का प्रयोग होता रहा है । वैदिकसाहित्य में आत्मा को रथी जनतादर आद्य

१- नरकामुरविजय ८८ पृ० २७.

२- नरकामुरविजय ३३, पृ० २१.

मन्त्रदृष्टाओं ने भी इसमें अपना परिचय वतनाया है। इसके अतिरिक्त इनके खींचने वाले घोटों का स्वाभाविक चित्रण भी वेदों में देखा जा सकता है। लौकिक साहित्य में माग एव कालिदास की नाट्यकृतियों में नायक तथा उनके महायन्त्र उच्चरय के पात्रों को हम अश्विष्ठ के लिये बन जाने अथवा रणभूमि के लिये प्रस्थान करते या वनिताहरण के समय यन्त्रिनेत्रियों को रथ का उपयोग करते देखते हैं। इस प्रसंग में हवा में घाते करने वाले धूल उड़ाकर अपने सामने की चेतन-अचेतन, सुन्दर-असुन्दर वस्तुओं को पीछे छोड़ कर दौड़ने वाले स्वस्थ घोटों से युक्त रथ-वेग का स्वाभाविक चित्रण करके इन कवियों ने बुद्धलता प्रदर्शित की है। धनञ्जय-विजय, नरकासुर-विजय आदि एकाङ्की व्यायोगों में भी हम नाट्यकारों को रथवेग का चित्रण करते देखते हैं जिसके तुलनात्मक वाचन में विदित होगा कि इन कवियों ने एक ही भाव को भिन्न-भिन्न ढंग में चित्रित किया है। रथवेग का वर्णन भी कवि जगत में नगर-वर्णन, ऋतु-वर्णन आदि की भाँति रूढ़ हो गया था, ऐसा भासित होता है।

भान - (रथवेग निरूप्य) अहो नु खलु रथवेग । एते ते
 शुभा पावन्तीव द्रुतरयगतिस्तीक्ष्णविषया
 नदीबोद्धृताम्बु निपतति महीनेमिविवरे ।
 वनव्यतिर्नष्टा स्थितमिव जवाश्वक्रवलय
 रजश्चाश्वोद्धूत पतति पुरतो नानुपतति ॥^१

माधव-भट्ट वि. चिन्ति 'मुमद्राहरण' नामक थीयद्रिप्त में रथवेग का ऐसा वर्णन तो नहीं मिलता परन्तु उसके अतिथय वाक्यों में रथ की तीव्र-गति का सङ्ग प्रचुरमान किया जा सकता है।^२

१ प्रतिभा - मद्र ३, २, १४ ७१. इससे तुलनात्मक अध्ययन के लिए मिलाइए -
 अभिलानशाकृत बद्ध १, ८, विक्रमोर्वशीय, प्रथम मद्र ३, ३७ प्रथम विजय
 (व्यायोग) - २३, ४, नरकासुर-विजय - पृ० १६, वही श्लोक ३६-३७, पृ० १७.

२- मुमद्राहरण - पृ० ३२.

वत्सराज

भाणों तथा ग्रहयन्त्रा पर विचार करते समय काश्मिर नरेश परमादिदेव के अमात्य महाकवि वत्सराज तथा इनकी कृतियों से हमारा परिचय हो चुका है। इस महाकवि का महीधर के पुत्र तथा राजा कीर्तिदेव के मन्त्री अथवा सन् १२१२ में विष्णु भगवान् के किसी मन्दिर के निर्माता परमादिदेव के मन्त्री सनअल के निनामह वत्सराज से भिन्न व्यक्ति समझना चाहिये। अन्य कविता की मूलिया की तरह कवि वत्सराज का भी एक श्लोक जहल्लु की मूर्ति मुक्तावली में मिलता है।^१ परन्तु शायकवाड ग्रारियण्टल सीरीज के अन्तर्गत 'राजराज' के नाम से प्रकाशित छै वत्सराजीय रूपकों में से किसी भी नाटक में यह श्लोक प्राप्त नहीं होता। इनके छै रूपकों में एक व्यायोग भी है। अन्तर्गत में वर्णित किरानार्जुनीय व्यायोग नैनायवमदेव तथा शेष पाँच नाटक उनके पिता परमादिदेव की भाषा से संले गये थे।^२

इन कृतियों में उल्लिखित राजा परमादिदेव का शासनकाल सन् ११६३ ईसाब्द में लेकर १२०३ ईसाब्द तक माना जाता है जबकि इनके पुत्र नैनायवमदेव का राज्यकाल तरफकी शताब्दी का पूर्वार्ध था।

वत्सराज के आश्रयदाता परमादिदेव मिहिराज द्वारा पराजित गुर्जर-नरेश मदनवर्मा के उत्तराधिकारी थे। परमादिदेव 'परमाल' और 'राजराज' नामक जगदिस में भी विभूषित किए गए थे।^३ प्रसन्न चिन्तामणि और चन्द्रवरदा के रामा (महोवा समय) में इनके पृथ्वीराज द्वारा पराजित होने की घटना का बरान मिलता है। पृथ्वीराज की भाषा में उनकी पराजय का विवरण छोट छोट मिलानरथा में गुरुक्षित रक्वा गया था।^४ इन दरबारी कवि वत्सराज की कृतियों से इनकी विलान प्रियता, दशरता तथा विद्या-

१- बालदेववासनावर्षिताय काश्मिराजिहिरानायवमदेव कवि, वत्सराजाचित किय-
तत्रुनदम् नाम व्याख्यायितम्भाजित । किरानार्जुनीय १०. १.

२- हर्षचरितम् ११८, कपूरचरित भाग १०. २३.

३- अथ परमादिदेव नाम । चन्द्रवरदावर्षिताय
का. का. का. का. इति विरुद्ध बरान ।

४- प्रसन्न चिन्तामणि १०. २२८-२९.

विलासिता की सूचना भी मिलती है ।^१

इन सूत्रों से व्यक्ति होता है कि हमारे कवि का समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा १३वीं शती का पूर्वार्द्ध रहा होगा । अपने नाटकों के लिये कवि ने पुराणों एवं लोक-जीवन में विषय का चयन किया है । भाण एवं प्रहसन का विषय लौकिक है और श्यायोग, डिम, या ईहाभृग की कथाएँ नियमानुसार पुराण-प्रसिद्ध ही हैं ।

भारविहृत निरानार्जुनीय के पन्द्रह भग म लेकर अष्टादश भग तक भी वर्ण्यवन्तु ही यस्मराज के निरातानु नीय का विषयाधार है ।

इसके प्रारम्भ में शक्तिदायिनी शम्बिका की स्तुति के साथ अन्य रतिपय वीररमातुनिद्धपदों का गाठ किया गया है जिनमें कवि की रमिकता प्रतिबिम्बित है ।

सा पातु वस्त्र्यम्बकबुम्बिकाया

कपोल-पाली चिरमम्बिकाया ।

प्रमल्ल - रोमाञ्चभरेण यस्या

पुणा मुनोऽभूत्क्षण - मङ्कुराम् ॥^२

इनकी इतिया में महादेव के स्तुति-परक श्लोकों के शायुय को देख कर इनकी अद्भुत शिव-भक्ति का सहज अनुमान किया जा सकता है ।^३ कवि का परिचय देते समय इनके साधपदाताओं के जीवनवृत्त पर ऊपर प्रकाश पड़ा जा चुका है, प्रस्तुत ध्यायोग की रतिपय पङ्क्तियों से नैलोक्यवर्मनृपति के प्रति इनकी श्रद्धा का भी सामान मिलता है ।^४

१- अनामिकादिनगरम्भराजिकिर्देवमायानि कदाचिदुक्तं ।

विमति त-पूर्वमत्र ग्रहं मुहुः प्रदर्शय । परमहिराजः । विजुराह भट्ट १. ४

दुपता कीर्ति-ममुद्रमयन ५० १२० हास्यचूडामणि - १४,

२- निरातानुनीय १

३- निरातानुनीय ६, पृ० १

४- निरातानुनीय ३ पृ० २

श्रीगोचारिक कवि-कर्म के उपरान्त पाशुपत अस्त्र-प्राप्ति के हेतु इन्द्र-कीलपर्वत पर शीघ्र तपस्या में लीन अर्जुन के प्रवेश के साथ इस व्यायोग की मुख्य कथा का श्रीगणेश होता है ।^१

व्यायोगों में मनोविज्ञान और अन्तर्द्वन्द्व

मनोविज्ञान और अन्तर्द्वन्द्व के दर्शन भी व्यायोगों तथा अन्य एकाङ्कियों में किए जा सकते हैं । इनके विशद चित्रण का अनुसर संस्कृत के नाटक, प्रवरण मृदुक अथवा नाटिका में मिल सकता है । भाग्य प्रहसन एवं अन्य एकाङ्की रूपकों में आकार-मकोच के कारण तीव्र अन्तर्द्वन्द्व और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिये विशेष अवकाश नहीं होता । इन सीमाओं में बँधे हुए अन्य भाषाशास्त्र के एकाङ्कियों में भी, जिन्हें हम पाश्चात्य साहित्य में प्रभावित भारतीय प्रादेशिक भाषा के एकाङ्की कहते हैं, बड़े नाटकों की अपेक्षा मनोविज्ञान एवं अन्तर्द्वन्द्व की तीव्रता आसानी से नहीं दिखाई जा सकती । आज के एकाङ्की केवल मनोरञ्जन एवं शिक्षण के लिये ही नहीं रचे जाते । अब उनकी रचना बड़े नाटकों के म्यानापत्र के रूप में होने लगी है । कारण, आज के नाटक-कार का उद्देश्य स्वल्पकाल में जनता को प्रमत्त करना है । आज के गिट्ट नागरिक मनोरंजन में अधिक समय नष्ट नहीं कर सकते ।

संस्कृत नाटकों में रसनिष्पत्ति एवं भावुकता की विशेष महत्ता होती है । अतः भिन्न भिन्न रसों के प्रकरण के अनुसार उनके चित्र बदलते रहते हैं । ईर्ष्या, हर्ष, क्रोध आदि जिन मानवीय संवेदनाओं की चर्चा आधुनिक साहित्य में आती है वे संस्कृत साहित्य शास्त्र में अद्विक्त 'भावों' के अनिरूप और कुछ नहीं हैं । रस-विवेचन का आधार मनोविज्ञान ही है । बीर-रस में मिला व्यायोगों में गुड निपुण का बखाना हुआ करता है । दर्शकों के हृदय में मानसिक संघर्ष तथा विस्मय के प्रदर्शन के लिये नायक और उनके प्रतिद्वन्द्वी छद्मवेश में प्रदर्शित किए जाते हैं । दोनों एक दूसरे को न पहचान सकने के फलस्वरूप कभी-कभी क्रोधावेश में किसी सम्मानित पात्र के माथ अनुचित फोंग करते

भी देखे जाते हैं।^१ पुन रहम्योद्घाटन होने पर सहृदय पाथ अपने किए पर पश्चात्ताप भी करते हैं और दशक आनन्दमग्न होते हैं।

अनुन - (सहस्रोत्थाय शिरमि वदाञ्जलि ।) भगवान् पीयूष-मयूखसेनर ।

नमस्ते, नमस्ते-

भवसि मुकृतपाकं स्तेनकस्यापि साक्षात्

नहि नहि तव रूपाख्याननीलोर्गस्त कश्चित् ।

किमिति निकृन्मिना नाय । कृत्वा विचित्रा

क्षणमनुचितवार सेवको वञ्चितोऽहम् ॥

युद्ध के प्रसंग में जोध एव ईष्यानि में जनते हुए योद्धाओं की बर्चोक्ति पर जहाँ वीर रस की सरिता बहाती है, वहाँ खदले हुए वेप में भक्तवत्सल भगवान् द्वारा प्रवृत्त एक अप्रकट रूप से बढोर तप में खीन भाकों की की गई रक्षा आनन्द की वर्षा करने वाली भी होनी है। तब की इस अवधि में आशा और निराशा के मागर में पड़े लगते हुए तपस्वी के प्रति प्रेक्षणों की सहायुभूत भी समझ पड़ती है। पुराण, तथा रामायण एक महाभारत पर आचारित वीर-रमान्वित व्यायोग-साहित्य में प्राय ऐसा ही बिज मिनेगा। तेरहवीं शताब्दी के हरिहर कवि का सङ्क्षपराधन नामक व्यायोग अवश्य अपवाद है।

वासवीर पूज्य जनों के प्रति अपना पराक्रम दिखाने में प्राय सङ्कोच करते हैं और उत्साह-प्रेमी वृद्धवता का वर्ण उनका बल देखने ॥ आप्रह्व करता है। इसकी पूर्ति के लिये वे शिशुओं ने सुपुत्र-उत्साह को नाना प्रकार से उभाड़ने का मत्न करते हैं।

हरकिरात - (स्वगतम्) कय सावश पावों न प्रकाशयति मयि 'भोरूपम् ।

न चाविज्ञात पीछ्यनिकयाय देवमिद महास्रम् तदह । दुर्योधनरूपमा-
स्याय परोक्षे पोषमस्य । (इति दुर्योधन-रूप नाट्यति)

×

×

×

×

×

अर्जुन - (स्वगतम् सञ्जोधम्) आ कथमयं दुरात्मा कुहवदा-पामन ।
किं कुतोऽपि राक्षसादे शिशिनमायाक्रम विरानत्रेषज्ज्यपना
दुर्योधनो मा द्रष्टुमायात ? तत्किमत्रोचिनम् । (प्रकाश सोपहामम्)
रे रे कुर कुलकलङ्क ।

दुर्योधन । भवानेव जानान्युचितभात्मन ।

यत्प्रातःकमय रूप कंरातमुररीकृजम् ॥^१

कभी कभी पापियों के अत्याचार से पीड़ित जनता के रक्षणार्थ भगवान् के त्रोग
को जगान का प्रयत्न किया जाता है, जिसका उल्लेख धर्मसूरि के नरकामुर
विजय में किया गया है । शत्रु हो या मित्र, सच्चे वीर सदा वीराकृति के
दशनमात्र से प्रसन्न होने हैं ।^२

“हरणिरात - (स्थान निरूप्य) अहो माहारम्य क्षात्रस्य श्रेष्ठम् । तयाहि
एक वर कनयति स्फटिकाक्षमालाम्”

संस्कृत नाट्य साहित्य में ऐसे बरानों का बाहुल्य है । भास के सीगन्धि-
बाहरणादि में हमकी सायबता हम देख ही चुके हैं । बत्सराजीय ध्यायोग में
भी इन कोटि के चित्र दुष्प्राप्य नहीं हैं ।

शङ्खपराभव ध्यायोग

मन्दिर निर्माण और मूर्ति स्थापन, जैन धर्म का एक मुख्य अंग समझा
जाता रहा है । इन मन्दिरों में (विशेष कर गिरनार पर्वत पर निर्मित) बड़े
बड़े लेखों के साथ प्रशस्तिपत्र भी खुदवा दी गई थी, जो इतिहास की दृष्टि में
बड़े महत्व की हैं । ऐसे ही मन्दिरों में स्थित किसी शिलालेख से विक्रम मवत् की
सेरहवीं दाताध्वी के गुजरात के अणहिलपुर (वर्तमान पाटण) नगर के बालुव-
यक्षीय राजा वीरवर्धन के चरित्र पर कुछ प्रकाश पड़ता है । कुछ एक लेखकों
द्वारा इसकी कृतियों के उल्लेख से उसके सुकवि एवं पण्डित होने का भी
पता चलता है ।

१- किरातार्जुनीय ४७ पृ० १६

२- किरातार्जुनीय ३६ पृ० १४.

विक्रम संवत् १२८२ के एक शिलालेख में वस्तुपाल की दानशीलता का उल्लेख मिलता है ।^१

शान्द'धर-पद्धति में भी वस्तुपाल के नाम से कुछ पक्तियाँ मिलती हैं ।

सप्रति न कल्पतरवो न सिद्धयो नापि देवता वरक्षः ।

जलदत्वयि विश्राम्यति मृष्टिरिय भुवनलोकस्य ॥^२

(वस्तुपालम्)

हमके प्रतिरिक्त हरिहर द्वारा नैषधीयचरित की एक प्रति के वीरधवल के दरबार में लाए जाने पर धवल के महामन्त्री वस्तुपाल की ही सहायता से इस महाकाव्य का गुजरात में प्रचार हुआ और वही इस पर विद्याधर द्वारा 'साहित्यविद्याधरी' तथा चण्डु पण्डित (धोलका के एक विख्यात नागर ब्राह्मण विद्वान्) द्वारा टीकाएँ लिखी गईं । अध्ययन के प्रति वस्तुपाल के गाढागुराग का यह भी एकप्रमाण है ।

धवल का प्रधान मन्त्री वस्तुपाल दानी और शानी बनि था । खिस्तान्द १३०६ के मेरुतुग के प्रबन्ध चिन्तामणि एव राजेन्द्र मूरि के प्रबन्ध कोश के कतिपय प्रबन्धों में गुजरात के राजालवरणप्रसाद तथा वीरधवल के तेजपाल और वस्तुपाल नामक मन्त्रियों का विवरण प्राप्त होता है । राजेन्द्र मूरि के प्रबन्ध में विद्यानुरागी वस्तुपाल के सहवासी कवियों में जैन भाचार्य हेमचन्द्र एव श्रीहर्ष आदि के साथ हरिहर कवि का नाम भी उल्लिखित है । उसी विवरण से यह भी ध्वनित होता है कि गौडदेशीय हरिहर श्रीहर्ष के ही वराज थे ।^३ शङ्खपराभव व्यायोग से भी उनके गौडदेशीय होने की बात प्रमा-

१- निरवा मानु बीडराजे प्रभाते श्रीभुज्वेदपि स्वर्गसाध्याज्यभावि ।

एक. १. सप्रत्यपिनां वस्तुपालसिद्धयुत्पन्ननिष्कटनाय ॥४॥

पुरापादेन दत्तारम्भुवनोपरिचित्ता

अधुना वस्तुपालस्य हस्तेवाप्य कृतो बनि ॥८॥

२- श्रीर. अमर. ३७६ पु. ११६

३- "श्रीहर्षवरो हरिहरो गौडदेश्यः ।"

नैषधीयस्य प्रथमं पुस्तक हरिहरो गुजरातेतिथ्यावदेशं वीरधवलनामनि रावनि वस्तुपालौ शासव्यानयत् । तत्पुस्तकञ्च वीरधवल प्रधानाभ्याम्बो वस्तुपालो नामाज्यदेक पुस्तकमद-
तारयामास ।" इति प्रथमकोश (हरिहर प्रबन्ध)

मित्र हाती है ।^१

उपर्युक्त प्रबन्धकोश में ही यह भी ज्ञात होता है कि हरिहर कवि का पुत्रर दश में पहिले वर दीखवन तथा उनके मन्त्री बन्धुगुप्त द्वारा घोरका (ग्रहमदावाद) में उचित स्वागत किया गया । चानुक्य वग के परम्परागत राजपुत्रोक्ति मोघेश्वर का उनके माय अल्ला बर्ताव नहीं रहा, परन्तु पीछे दाना के मित्र बन जाने की बात भी कवि मोघेश्वर की उक्तिों में ही साबूत होती है । अतः एनिहामिष काव्य कीर्ति-कांमुदी के प्रथम मग में उन्होंने इस कवि को 'कवीना पाञ्चानन' कहा है और मुरयोन्व नामक महाकाव्य में दृतागद नामक छाया-नाटक के निर्माता मुपट एष हरिहर को कविप्रवर वर का सम्मानित किया है । शाङ्गधर-तद्धति म हरिहर के नाम में विषय दूण श्लोक । में तथा प्रबन्ध कोश^२ में हरिहर के काव्य के समूह में भी मयूर का ज्ञान में तत्कालीन काव्यसमार में इनके पीछे दृष्ट कीर्तिरापका महत् अनुमान किया जा सकता है । पुत्रजन प्रबन्ध-अष्ट क दशम में मदन कवि व माय उनकी प्रसिद्धिना की कथा भी ज्ञात होती है ।

"१ की ज मदनरा द्वारा मन्नादिन तथा योग्यिष्टन उम्मीदपूत बड़ीदा म मय प्रकाशित हरिहर व "मङ्गपरामव व्यापान" का दश का गुण-रान के इस व्यापिप्राप्त कवि की स्तुति पुन साबी हा गई है । कवि की मौनितना तथा कवित्व-गति इनमें स्पष्ट बनती है ।

एकनैव दिनेन न स्वस्तिं नर प्रबन्धयु य -
 द्वाय कवचनन-आगुनिशितादिदन्ति वंशविहान् ।
 यनातेव नरेन्द्रवन्दितपद - इन्द्रेन बन्दोक्त्या
 विज्ञान, नुवर्तकभावममागम्भिन् प्रकमे कवि ॥^३

१ - मङ्गपरामव पृ० ३

२ - दृष्टा मङ्ग मुषा स्त्रीय दृष्टा कांति लघारम ।

अन्वर्तिन मागुनि कवि हरिहर वर ॥ प्रवर्तमान पृ० २८

बदल की श्रुति - मुन्नाकति म भी इसका दश दश है मित्त के
 "बन्धुगुप्त-वर्ति" में भी हरिहर कवि की कविता है ।

३ - मङ्गपरामव ६ ॥ ३॥

शङ्खपराभव का ऐतिहासिक महत्व

तेरहवीं शती की यह रचना प्राचीन शान्सीय नदियों से युक्त होने पर भी इस कोटि की अन्य रचनाओं में कुछ भिन्न प्रतीत होती है। इसकी कथा-वस्तु एक ही प्राचीन व्यायोग की तरह पुराण या महाभारत में नहीं ली गयी है। यह गुजरात की एक विख्यात ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। इसमें लाट देश (गुजरात) के राजा मिथुराज के पुत्र शङ्ख और वस्तुपाल (वीरचवन के मंत्री) के बीच हुए युद्ध में शङ्ख का पराजय वर्णित है। इसमें शीर्षक का सादिक अर्थ भी यही है।

स्मृतीय नामक वन्दरगाह पर लाटनरेश का बहुत पहने से अधिकार था परन्तु जब शङ्ख देवगिरि के यादवराव सिंहण से सड़ने में व्यस्त था तब वीरचवन द्वारा यह अपहृत कर लिया गया। अतः जिस समय उस पर वस्तुपाल का अधिकार था (राज्यपाल के रूप में) उसी क्षण गुजरात पर उक्त आरोप करते हुए शङ्ख ने स्मृतीय (वन्दर) की ओर सिया।

राम्य के पास स्थित वटवृक्ष अथवा बड़वा नामक स्थान पर दोनों पक्षों में बीच युद्ध हुआ। अन्त में शङ्ख की हार हुई और उसे लाट की राजधानी भड़ोच की ओर भागना पड़ा। प्रस्तुत व्यायोग की प्रस्तावना सूचित करती है कि इसी विजय समारोह के उपलक्ष्य में वस्तुपाल की आज्ञा में इसका अभिनय किया गया था। एवंनाक्तिमान् गिव की मूर्ति तथा नान्दी पठ के अनन्तर वीर-रम एवं विजयसमारोह के समयानुसून गद्यपद्यमय वर्णन से इसका प्रारम्भ होता है।^१

इसी प्रसङ्ग में कवि ने अनुशास की छटा दिखाने हुए यह बतला दिया है कि जिस प्रकार श्रीमन् शत्रु की प्रचण्ड तपन के बाद ही समृत-सा वर्णन होता है, उसी प्रकार युद्ध की भयकरता के दशन और उससे उत्पन्न कठिनाइयों को सहन कर बिना ही विजयी जनता को महोत्सव मनाने का अवसर मिल जाता है।

द्वार तोरलमानिकातरलित, नदभित्तमविचित्रिता,
सम्पूज्यन्तविवरेषु साविदलने कामध्रुवा नीतव ।
धूमसंन्यविपावसौरभधुमै प्रत्यालय दीव्यते,
तत्किं नाम महोत्सवोऽयमभितो येनैष शङ्खध्वनि ॥^१

हरिहर बाबू (व्यायोग) का विशेषता यह है कि इसमें वणि ने प्राचीन कवियों की भोंति कविता का शृंगारमय मनोहर रंग देवताओं की स्तुति का और किमी व्याज से आरम्भ में ही न करके युद्धविराम के बाद गीतनर्तनादि में मग्न जनता का चित्रण करते हुए उपस्थित किया है जो विचारशील रसिक की प्रसन्नानुबूल होने के कारण बड़ा भगा लगता है ।

इसके अतिरिक्त आसमनोरथ नावरिक एरल्लवीरा नामक पुरदेवता की पूजा के प्रसङ्ग में भी संगीत-नृत्यादि का आयोजन करते दिखलाए गए हैं । इस महोत्सव की समष्टीयता के चित्रण भी बड़े काव्यमय एवं सालङ्कार हैं । यहाँ विजयीपक्ष का हर्षोन्माद देखते ही बनता है ।^२

श्लोष्ठिक (मानन्दम्) दिष्ट्या वर्धामहे । प्रसन्ना भगवतीयमस्मात् क्षेत्रदैवेन
दुर्गा, मदय भूजेंराधोश्वरस्य वीरघवत्तस्य सचिवशेखरेण वसन्तपालेन
शङ्खपराभवो निर्वाहित । तदेनामचयितुमुपस्थितोऽयं मानन्दपरवशो
मृतमनुन्मदिभ्युरिव वीरसोव ।

वीरसोक - (निरुध्य) अहो ! महोत्सवस्य रामणीयकम् ?

मानन्द विभोर जन-समुदाय के बीच कुलटाओं का नर्तन भी सोगा की देखने को मिल जाता है । उनकी क्रीडाओं की ओर जनता आकृष्ट तो होती है परन्तु समाज में उनका पद माननीय न होने की बात के ध्यान में आते ही वह शास्त्रीय नृत्यगीतनादि में पारङ्गन नर्तकियों की ओर बरबस खिंची खली जाती है ।

१ २ इस वरुण में कर्षि की शुद्ध-नियोजित एवं वरुण की शक्ति द्विती है ।

यह कंशिकी वृत्ति को स्थान देकर कवि ने व्यायोग के नियमों का उल्लंघन प्रदर्शित किया है, परन्तु उनके समर्पण में यही कहा जा सकता है कि इसकी सूचनामात्र दी गयी है और वह भी युद्ध-समाप्ति के बाद विजयोत्सव के प्रसङ्ग में। यत्र यहाँ केवल 'सात्वत्यारमटी' वृत्ति से धुन रहे वाले व्यायोग में कंशिकी की छाया मात्र दिखना देना अस्थाने न होने के कारण आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होता। दुर्गा के मन्दिर के निकट पहुँचने ही सब लोग भगवती की नानाविधोपचार पूजा में लग जाते हैं, त्रिमयी कृपा से गुर्जंगाधिर श्रीवीरधवल अपने वसन्तपाल एवं तेजपाल नामक मन्त्रियों के साथ राज्य करते हैं। जीर्णोद्धार किए गए जैन मन्दिरस्य शिलामेखों में उल्लिखित ऐतिहासिक पात्रों के नाम इस व्यायोग में भी यत्र-तत्र मिलते हैं। यथा—

मादु जैतल्लदध्या सबलयपि म्माकोसमुल्लामयन्त्या
 राज्य निष्कम्पकोर्वीमरमुपनतया वस्तुपालेन साकम् ।
 तज पालेन च श्रीवरण - परिणतजाति - भेनानुयातो
 पत्ता श्रीवीरराज क्षिनित्रनयमय यादशम्भोजभानु ॥^१
 (इति सर्वे नानाविधोपचारं प्रविश्य भगवतीपूजा नाटयन्ति ।)

कुछ सङ्क्षेपव्यायोगतर व्यायोगों में पौरुषप्रदान के पञ्चमरूप नाटक के घट में विजयीकुल को कोई कन्यारत्न पुरस्कार के रूप में देने के दृश्य प्रस्तुत किये जाने हैं, परन्तु यहाँ भगवती के प्रसाद को ही पारितोषिक समझ लिया गया है, जिसमें निबहण रुग्णिका भी सुन्दर निर्वाह हो गया है।^२ धूप-दीप पूत-फल तथा मोदकों से भरी पूजा के प्रसाद की थाली देखकर एक दार दत्ताको का मन सन्न हो उठता है और युद्ध का गम्भीर वानावरण सरल हो जाता है।

इस स्थल को देखकर कालिदास की यह पद्धति 'क्षेत्र' पक्षेन हि पुनश्च विधत्ते' कानों में घुंरने लगती है। इस पाकर भक्तवत्सला देवी के चरणों में भाव-भक्ति के फूल चटाने वाली भक्त-मण्डली के दर्शन कराकर कवि ने अपनी सहृदयता का परिचय दिया है जो भारतीय सस्कृति के सर्वथा

१- महर्षिभाष्य, ७६, पृ० २२

२- धनञ्जयनिबन्ध ८२, पृ० २७,

३- महर्षिभाष्य पृ० २३

अनुवृत्त है। शेष दोहों में उस व्यायोग की रचना ऐसी परम्परागत व्यायोगों के समान की है : व्याघ्रान्ना के अन्न में, बन्दिराज नामक प्रजापति नामक वस्तु-पान के सेवक माधव-वृन्द के साथ प्रवेश करना है। उसही बातों ने हम विदित होना है कि जल द्वारा आक्रमण की तैयारी की बात सुन कर वस्तु-पान ने उस युद्ध के विषे सन्नगर दिया है।

+

+

+

बन्दिराज - हे रत्नमाला मदनप्रापिनी। सत्वर परिहृयन्ताम् मदनमस्माकं
स्वामी महाराजश्रीवीरवदनसुषिको वसन्तपाल -

पृष्ठे कृत्वा स्तम्भतीर्थं, विदित्वा चाप्यागं गच्छवीरामिषोदम्।

आह्वातु तान् सत्वर सपरोन्व शत्रून्स्नान् प्रेषयामास भट्टान् ॥^१

इनके ही शब्दों से वस्तुपान तथा वीरवदन की इतिहास-प्रतिष्ठा वीरता तथा दामोदरता की बात भी पृष्ठ होनी है।

नेपथ्य में शोर-गुल के बीच से मुनाई देने वाले मोड़ा खट्खट का स्वर शत्रुओं के प्रति लम्बी प्रणेष भावना को प्रकट करता है। चट्ट का सदैम बन्दिराज स्वामी वस्तुपान (वसन्तपाल काव्यवत नाम) को मुना दिया जाता है। इस प्रकार दोनों पक्षों में युद्ध आरम्भ हो जाता है। संस्कृत के नाट्य शास्त्र के नियमों के अनुसार युद्ध के हृद्य मञ्च पर प्रदर्शित करना बर्जित है, अतः इस रूपक के पात्रों के द्वारा युद्ध भूमि का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उनका सजीव चित्र प्रेक्षकों के समक्ष उद्भवित हो जाता है।^२

इस प्रसंग में कवि ने भोजकान्तिमयी शोडीया रीति का प्रयोग किया है। मध्याह्न में भोज का चित्रण करने के बहाने कवि ने दोनों सैन्य-दलों द्वारा निर्मित श्रेष्ठ के वातावरण का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।^३

भुवनपाल और चट्ट के बीच हुए भोजपूर्ण संवाद में श्री वीररत्न की बूँद टपकती है।^४ भगवित शत्रुओं की हत्या के उद्योग भुवनपाल के मा-

१- मद्रास ६, १०, ११, १४ - पृष्ठ ४६

२- मद्रास १२-२० पृष्ठ ७

३- मद्रास २६-३० पृष्ठ १०

४- मद्रास २०-२२, पृष्ठ १४

जाने के समाचार के थवण और शङ्ख द्वारा प्रेषित नुवनपाल के हस्तक्षेप के दशन से शोकविह्वल वस्तुपाल की हृदयद्रावक मनोदया देखकर प्रेक्षकों की नायक के प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ती है। यहाँ करण रम की धारा में बूझा हुआ भी वस्तुपाल मृतवीर की वीरता को भूल नहीं पाता।^१ उनकी वीरता की झलक कहानी उसके हृदय-मटल पर स्वर्णक्षरों में घड़ित है। शोक-विह्वल वस्तुपाल के मन में शत्रु के प्रति उद्दाम क्रोध भड़क उठने के कारण मल्ल की पराजय के घासार स्पष्ट दिखाई देने लगने हैं। कुछ ही क्षणों के युद्ध के उपरान्त शङ्ख (सम्राटसिंह) के रणभूमि में आग लगे होने के समाचार भी शान्त हो जाते हैं।

इसी प्रसंग में देवपिर के यादवरज सिंहण पर धीरवदन की विजय का खोलक धूँक भी मुनाई देता है।^२ तदनन्तर श्रेष्ठिक एवं अन्य नागरिक उत्सव की तैयारी का दशन करते मुनाई देते हैं। इसका उत्सव ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका है।

जिस प्रकार पारंपराक्रम व्यायोग में भरत-वाक्य का प्रयोग नायक प्रजुन से न करवा कर नाट्य के अन्त में मञ्च पर प्रविष्ट होने वाले वासव (इन्द्र) से करवाया गया है उसी प्रकार शङ्खपराभवकार ने भी अपने व्यायोग का भरतवाक्य नायक वस्तुपाल के मुख से उद्धरित न करवा कर श्रेष्ठिक से करवाया है, जो नाटक के अन्त में दर्शकों के सामने उपस्थित हुआ है।^३

श्री विमललाल डी. दयाल द्वारा सम्पादित पारंपराक्रम-व्यायोग की भूमिका में हमें ज्ञात होता है कि संस्कृत में लगभग ११ को नाटक लिखे गये थे। इस नाट्यकोश को पूर्ण करने में गुजरात के नाट्यकारों का भी योगदान रहा है। इन कृतियों में व्यायोगों की संख्या गुजराती नाट्यकारों की लेखनी से

१- शङ्खपराभव २६-२८ पृ० १७-१८

२- शङ्खपराभव ६३-६४, पृ० १८

३- शङ्खपराभव ८१ पृ० २३.

नुनता कीटिए -

पारंपराक्रम ६१ पृ० २४.

निःसृत अन्य नाट्यभेदों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है। इसके प्रमाणस्वरूप यद्यपि उदाहरण दिये जा सकते हैं, इनमें प्रह्लादनदेव के 'पार्यपराक्रम' तथा हेमचन्द्राचार्य के परमप्रिय शिष्य रामचन्द्र के 'निर्भय भीम' के नाम प्रमुख हैं। गुजरात-भूमि के कवियों के परिश्रम से प्रसूत व्यायोगों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मध्ययुगीन गुजरात में दोस्तरसाक्षित व्यायोग साहित्य का अच्छा प्रचार था।

भीमविक्रम

तेरहवीं शताब्दी में मोक्षादित्य ने भीम-विक्रम नाम वीररासदाञ्जन एकाङ्की की रचना की। इनके स्थिति बाल एवं निवास-स्थानादि के विषय में इस एकाङ्की नाटक की प्रस्तावना से जितना कुछ परिचय प्राप्त होता है उसमें अधिक प्रामाणिक नामों की अभावधि और कहीं से उपलब्ध नहीं हो सकी है। अनुमान भीमविक्रम के रचयिता भीम के पुत्र तथा कवियों में व्यास-प्राप्त हरिहर कवि के शिष्य थे। उनके पिता श्री भीम का परिचय भी अज्ञात है। ईसापूर्व १५ वीं शताब्दी में रचित बरतभवेव की मूर्तिमुक्तावलि में भीम के नाम से कनिष्ठ श्लोक अवश्य मिलते हैं परन्तु उन्हें बिना किसी ज्ञानमीन के निश्चयपूर्वक मोक्षादित्य के पिता भीम की पङ्क्तिगत मान लेना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। यहाँ एवं प्रदत्त स्वभावतः उठता है कि क्या मोक्षादित्य के गुह हरिहर और साहचर्यभक्त-व्यायोग के प्रसिद्ध अभिन्न व्यक्ति हैं?

मौराष्ट्र के प्राचीन पारवन्दर राज्य में स्थित विक्रम संवत् १३२० के जिसी शिलालेख में अङ्कित महाकालेश्वर प्रशस्ति के अनुसार वस्तुपाल तथा उत्तामराज कीर्ति - कौमुदी आदि कृतियों के कर्ता गुजराती कवि हरिहर के पिता का नाम भी मोक्षादित्य व्यास था किन्तु डॉ. बी. जे. सदेसरा के अनुसार यह भौंडेशीय एवं नैपथ्यकार श्रीहृष के ही अनुवर्षक थे। गुजरातियों का व्यास उपनाम अति परिचित है। उक्त महाकालेश्वर-प्रशस्ति में मोक्षादित्य के साथ भी व्यास उनके पुत्रनाम के रूप में युक्त हैं। दूसरे, भीमविक्रम व्यायोग के सम्पादन श्री जमाकान्त प्रेमानन्दभाहू डेप्युटी डायरेक्टर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, एम. एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा की इस रचना की दोनों पाण्डुलिपियाँ (Manuscripts) गुजरात से ही उपलब्ध हो सकी है जिनमें से एक ओरि-

मण्डल इन्स्टीट्यूट से और दूसरी प्रति विक्रम संवत् १४७३ (सन् १४१६ ईसोत्तर में तैयार की गई थी) दक्षिणी मुबराक के बरतसाद^१ से मिल पाई है। इन बातों के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि भीमविक्रमकार गुजरात के निवासी रहे होंगे। यह भी संभव है कि वस्तुशत के समकालीन कवि हरिहर सन् १२७१ (ईसोत्तर) में जीवित रहे हों और तरण मोक्षादित्य हरिहर की वृद्धावस्था में उनके शिष्य बन गये हों। ऐसी अवस्था में महृपराभवकार हरिहर और कवि मोक्षादित्य के गुरुदेव का एकही व्यक्तित्व प्रमाणित हो जाता है। इसी प्रकार में हम बात का उल्लेख करना अनुचित न होगा कि मोक्षादित्य ने हरिहर को 'कवि-निवह-धुरन्धर' और हरिहर के समसामयिक कवि सोमेश्वर ने उन्हें 'कीर्ति-कौमुदी' में 'कवीना पारभासन' कह कर सम्मानित किया है।

श्री दलाल न मोक्षादित्य के व्यायोग का संक्षेप 'भीमपराक्रम वस्तु-सामा' है, परन्तु इस नाटक की प्रकाशित प्रति में यह भीमविक्रम नाम न अभिहित है। इसी नाम का वीररत्नप्रधान एकाङ्की यतानन्द शूनु ने भी लिखा था जो त्रिवेन्द्रम-संस्कृत ग्रन्थ-माला (स. १७३) के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुका है। यह भव अनुपलब्ध है। दोनों रचनाओं का अर्थ-विषय (भीम द्वारा जरा-सन्धका वध) एक होने पर भी अनुविधान (प्साद) की दृष्टि से इन दोनों रूपकों में महदन्तर है। महाभारत के समा पर्व के १५ में २४ अध्यायों में वर्णित विषय का सहारा मोक्षादित्य ने प्रस्तुत व्यायोग में लिया है। नाटककार न व्यायोग के सहायों के अनुसार महाभारत में कथित लम्बी कथा को संक्षिप्त-

- १- सन् १४७३ वर्ष ईके १३४७ प्रवर्तमाने यादश पुंड १० दशम्या त्रिषो मोक्षदित्य मुनिसन्ने वनस्ये शत्रे प्रभ (है) द वरसाया (दया) महाराजविकार श्री जादिव-विदपराव्येप्रभाष थी वारवजेस्यस्यकृतप्रतिपत्ती कायमन्मा (११) तंय महनुनामुन माहकाहर्नवा अयमनार्थ पुस्तिका भीमविक्रम महानटकस्य व्यायोगो निधिः ॥ . .
 मोक्षदित्य इन्स्टीट्यूट के प्राप्त पाण्डुलिपि में इसका परिषय इस प्रकार दिया गया है।
 इतिरिष व्यास भीमोक्षादित्यस्य ॥ १ = ३ १
 दण्डराजमगोतासी विक्रमदित्य-वन्दरे ।
 व्यासेन मोक्षादित्येन व्यायोगोऽयं विनिर्मित ॥

कश्चित्कृच्छ्रानिकृच्छ्रव्रतकरणकृत् शुक्लचंचल दधान
 स्नानानिक्लिन्नकेस्य करयुग्म - विलसद्भ्रमकोजर्मकोज्यम् ।
 धीर्तमन्त्रैश्च जुह्वन् ज्वलति हृत्तवहे हव्यमव्याहतेच्छ
 स्वस्थोऽयं धनपुत्रा यजति यत्सुखस्त्र्यम्बक साम्बुनेन ॥^१

यहाँ कवि की वरान शक्ति भी देखने को मिलती है। जरासन्ध ने उसे पुष्पनेत्र में बलिदान के हतु बन्दीगृह में बन्द कर रखा था। इस राजकुमार की माता और पत्नी मन्त्र पर आकर भीम से क्रमशः अपने पुत्र तथा पति को घातमहत्पा करने में रोकने के लिय बिनय करती हैं। भीम ऐसा ही करते हैं और राजकुमार को धन्य बन्दिनी को मुक्त करवाने का वचन भी देते हैं। इस स्थल पर भीम का उदात्तचरित्र निखर उठा है।^२ मरन को तैयार राजकुमार क रक्षणार्थ उद्यत भीम को देखकर भास के मध्यम-व्यायोग के आह्वान कुल के चक्षुष्य मध्यम-गण्डव भीम की याद आ जाती है। थोड़ी देर के लिए करण रस का आनन्द लेन का अवसर भी सहृदयों को मिल जाता है।

(प्रविश्य भवपूक्य)

जयश्री - (उपसृत्य पुत्र करेष्ट्वा) ताद ।

वीर (धम्ब^१) मयेह बहु तपस्तप्त तन्मोघ्रणाय ।

जयश्री - ता वहि भताणय वाश (द) यसि ?

वीर निष्कलतपस्त्वात् । किञ्च । प्रात किल

निम्नितनियतनरपतीना हरतोपाय होमो भविता ।

जयश्री - (मायम्) हा वज्जराय कुलणदन । हा सत्त्व (त्त)

गुणरयण भण्डार । हा महाराय जयवम्भ । हा भज्जउत्त ।

कहिंसि देबु मे किं करीए णदिदयए ।

(इति मूर्च्छा नाट्यति)^३

पुत्र-प्रेम-विह्वलता माता पहले अपनी मौन चाहती है और पतिव्रता भार्या पति से पहले स्वयं मरना चाहती है। इस दृश्य को देख कर भी दर्शकों का हृदय

१- भीमविजय २१, पृष्ठ ६

२- भीमविजय २३, पृष्ठ ७

३- भीमविजय पृष्ठ ८

द्रवित हो जाता है। इनके वार्तावाप के प्रसंग में कवि ने प्राकृत पर भी अपने अधिकार का प्रदर्शन किया है।^१

नान्दी-स्तोत्र में ही पुराणप्रसिद्ध भक्त प्रह्लाद और भीमाकृति बाणे भरसिंह के रूप में घबड़ोखें भयवान् विष्णु की लीलाओं के बखाने के ब्याप से युगत कवि ने इस आशय में जरासन्ध के भत्याचारों से पीड़ितों की रक्षा करने वाले धीरोद्भूत नायक भीमसेन का गुणगान भी किया है।

देवत्याश्रुचरो विरश्चिजरूपा भूमाकभूद वानवः
पटुभैः सह पूर्वदे (दे) वतवृत्तो यो विष्णुना वरकृत्
तम (यो) विस्वविषु हिरण्यकशिपु हन्ति स्मदीर्घमया
भूमाद्वो नरकेसरी ममवधवती स भीमाकृतिः ॥^२

इसके प्रतिरिक्त कवि के कवित्व के द्योतन, भीम और जरासन्ध के भवाद तथा एक ओर से जरासन्ध को एवं दूसरी ओर से श्रीकृष्ण तथा बाण की सम्मिलित बातों में किए जा सकते हैं।^३

कवि ने वहाँ भी एक नया चमत्कार दिखलाने का यत्न किया है, जहाँ श्रीकृष्ण मजुन और भीम सहित गिरिव्रज में प्रविष्ट होकर हृदयभेद (मदोत्कष) की सहायता से भगर की रक्षिका, जरा राक्षसी का हरण करने का विचार करते हैं। इस स्वप्न पर भद्रमुत और भीमत्स का व्यतिकर भी देखा जा सकता है।^४ जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज में पहुँच कर श्रीकृष्ण के मुख से जो उस नगरी की क्षोभा का वर्णन कराया गया है वह भी मोक्षादित्य की काव्य-कला का परिनायक है।^५

भीमार्जुनौ - कृष्ण ! पश्यपश्य, निजस्त्रिपुनपत्म् ।

१- भीमविजय २८-२९ पृ० ८६.

२- भीमविजय, पृ० १.

३- भीमविजय ६३-६४, पृ० १६-२०.

४- भीमविजय, पृ० १० (जी. जी. एन.)

५- भीमविजय, ३४-३५ पृ० ११-१२. (जी. जी. एन.)

वृष्ण - तदिदं समकलधवलगृहव्रजं गिरिव्रजम् । पश्य
युवनागा कलघोर्तनिर्मित-महा-प्रासादपङ्क्तिम्

पितृभक्त घटोत्कच के प्रताप से जरा जैनी भयवराकृति वाली राजसी क्षण भर में हमारे दूरवर्ती पर्वत पर पहुँचा दी जाती है ।^१ उस वीर के वाक्पटुता से वीरता टपकती है । इस नाट्य में प्राचीन-पद्धति का अनुसरण करते हुए कतिपय विस्मयोत्पादक स्थल भी दिखलाये हैं जिसमें डपकी शोभा बढ गई है । यथा -

राजशेखर - चक्रघरघवलीपश्यतम्

रम्याहावयवो दुबूलसकलो मुक्ताफलैरुज्ज्वलं-
हरिरग्निमम सुगन्धिकुमुम श्रीखण्डकस्तूरिव ।
मञ्जुमनाशि निशाणयन् क्रियिदुर्लभाभिभ्यश्च काम ददत्
धीरो वीर इवापणं कलकलस्युन्मत्तलोर्ज्वत् ॥

गिरिव्रज पहुँचकर भीम आचार्य राजशेखर के वेश में भगध की समृद्धि का वर्णन करते हैं । वहाँ के बाजार की किसी वीर से तुलना की गई है ।^२

श्रीकृष्ण और धर्जुन भी चक्रघर और घवल का नाम घर घर नगर में प्रवेग करते हैं । वे तीनों ब्राह्मण के रूप में मार्ग में आने वाली दूकानों को लूटते भी जाते हैं । इस प्रकरण में उनके मुख में 'सर्वेस्व ब्राह्मणम्येदम्' इत्यादि कहलवान्तर मोलादित्य ने हास्य की सृष्टि करके काव्य के गान्धीय को कुछ हल्का करने का यत्न भी किया है ।^३ ब्राह्मण वेशधारी अपने शत्रु-पक्ष के तीन सदस्यों को भूल से अतिथि समझ कर जरासन्ध उनका खूब सत्कार करता है ।^४ परन्तु उसका यह भ्रम बहुत समय तक स्थिर नहीं रहता । उनकी पहचान करते समय उसकी तर्क वितर्क पूर्ण मनोदशा का भी कवि ने स्वाभाविक चित्रण किया है ।

१- भीमविजय, ३१-३२ पृ० १०

२- भीमविजय, ३६, पृ० १२

३- भीमविजय, ३७, पृ० १२

४- भीमविजय ३४-३६ पृ० १४.

जरासन्ध - (सखेदम्) तत्रभवन् के युग्म ?

राजसेन - द्विजातयो वयम् ।

जरासन्ध - (सर्वान् सम्यद् निरूप्य स्वजनम्) नूनमपी न

(न) बाह्यणा मयि विषयदृष्टयश्च । (प्रकाशम्) ओ ! द्विजातय ।

के युग्म मत्थमेव प्रवदत न मृषावादिन क्षत्रिया हि ॥^१

रहस्योद्घाटन के पश्चात् तनावनी के माथ इन्द्रयुद्ध आरम्भ हो जाता है । संस्कृत - नाट्य के नियमों के अनुसार यहाँ भी यह युद्ध मंच पर नहीं दिखलाया गया है । नपथ्य में युद्ध चलता है और दर्शकों को धीकृष्ण तथा धर्मुन के मुख से इसका विवरण सुनवा दिया जाता है । प्रस्तुत व्यापोगकार ने इन्द्र-युद्ध का इतना सूक्ष्म चित्रण किया है कि उससे उनका इस कला में पाण्डित्य स्पष्ट भासित होता है । इस प्रसंग में भोज गुण ने युक्त गौडी घंटी घननाई गई है ।^२

इस स्थल पर दृष्टि पड़त ही मास के प्रसिद्ध उत्सृष्टिवाङ्क "उरुभय" की याद प्र. जाती है । इस अङ्क में जैसे यदायुद्ध के समय धीकृष्ण ने अपनी जघा को हाथा से धपधपाते हुए भीम को सकेन दे दिया था वैसे ही इस क्लृप्त म भी इन्द्र-युद्ध के प्रसंग में केशव ने योद्धातायक को सवेतारमक वचनों द्वारा जरासन्ध को भ्रान्ते की चाल बतला दी है । यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि महाभारत के महापर्व में इस घटना के समय धीकृष्ण ने स्वयत् एव गुन-भाषा में इस काम को सम्पादित किया जबकि भीमविजय-व्यायोग में अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट-भाषण हुआ है ।

तुलना कीजिय -

तं राजान तथा क्वान्त दृष्ट्वा राजन्जनार्दन ।

उवाच भीमवर्माण भीम सम्बोधयन्निव ॥

क्वान्त प्रकुलान्तेय तस्या पीडयितु रणे^३

पीडयमानोहि वार्त्तनेन जह्याज्जी वितमात्मन ॥

१ भीमविजय ४०, पृ १६

२- भीमविजय ७२ अ. ५० २२

३ महाभारत, महापर्व अध्याय २१ १८-२१ अध्याय २२, ११८-२०

बेली-महार में भीमनेन की मृत्यु के झूठे समाचार न राक्षस द्वारा बलिना द्रोणदी अपने पति के पराक्रमों को याद करते रोती है। यहाँ भीमनेन ने जिन न भी वीरनायक कायें किये थे उनका मङ्गल-रस भट्टनारायण ने द्रोणदी के मुख से प्रस्तुत करवा दिया है।

इन व्यायोगों में लक्ष्मण बाला की पारम्परिक दण्डित्यां भाम की कृतियां तथा बेली-महार के खोडाओं द्वारा प्रस्तुत रोपमनी-गाली में मिलती जुलती है।

भीम - धने ने भरतकुलनद्ध^१

दुर्गोत्तम - दृगत्तमन् भरतकुलनद्ध धनदानराण्डवपनी ।

नाह भवानिह विररन्ना प्रयत्न । किन्तु—

पश्यन्ति न विराजुन्त शान्तिवान्वा रणायणे

मद्गदाभिन्न-वशोऽन्यवत्किञ्च-भीमभूषणम् ।^२

भाम के व्यायोग में हमारा परिचय हाँ ही चुरा है।

तुलना कीजिये •

जराकथ - मा भीम । (मृग प्रणि) भो यादवकुलनामन ।

गतयो विन्तिनोमि मनुगे नह पुरै गह मीर्यागिना ।

प्रसिन्धु कुरी पारयिन पग्गिनीनोमि पदम्बु बारिने ॥^३

इन शब्दों को देखने में एना भावित होता है कि परवर्ती व्यायोगकारों ने महाभारत के किन्हीं एक पात्रों का चरित्रचित्रण करने वाले भाम एवं भट्टनारायण जैसे नाट्यकारों की कृतियों में प्रेरणा लेकर अपनी कृतियों में इनके कर्मकलापा का विराजुन करते या प्रयत्न किया है। इनके प्रशङ्गुल्लस्य उपर्युक्तलिखित मीर्यागिना, भीमविजय इत्यादि व्यायोगों के पात्रों का सम्मेलनमान पर्वान्त होता है।^३

मीर्याग की मूल महानता न “भीम-विजय” व्यायोग के नाटक इन्द्र-

१- बेलीमहार प्रबु ३ ३३ २४, पृ० १२४ (एक घात करने द्वारा मर्यादित)

२- मीर्याग २२-२० पृ० १८

३- बेलीमहार प्रबु १, पृ० १८४

युद्ध में विजयी होते हैं और पराजित बरासन्ध का सम्पूर्ण राज्य उनके हाथ में सहदेव द्वारा सौंप दिया जाता है। साथ ही सहदेव की अनुजा भी उन्हें सौंप दी जाती है। भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमानुसूल मञ्जुल-गीत-वाद्य ध्वनि से गुञ्जित वातावरण में श्रीकृष्ण के आशीर्वाचनों एवं कल्याणकारी भावनाओं में ओतप्रोत भरत-वाच्य के साथ एकाङ्की का अन्त होता है जो कवि के भाषा-सौन्दर्य का सुन्दर नमूना है।^१

एतलाताय के पुत्र कृष्ण कवि ने विक्रान्त राघव (जिसमें संस्कृत छाया के साथ प्राकृत का प्रयोग है), नैय्यायिक सदाशिव ने प्रचण्ड भैरव व्यायोग (जिसमें हिरण्यगर्भ और पुण्डरीक का रम्यान में युद्ध वर्णित है, इसी में भैरव के मन्त्र पर आ जाने से यह युद्ध भयंकर रूप धारण कर लेता है) और महा-भारत का आध्याय लेकर गोदावरी नदी के तट पर स्थित नन्दपुर में उत्पन्न गोविन्द कवि ने विनतानन्द व्यायोग (जो प्रचण्ड गरुड भी कहलाता है) लिख कर इस परम्परा को आगे बढ़ाया। श्रीदत्तात्रेय ने पाथपरक्रम की भूमिका में गोविन्द कवि के विनतानन्द तथा प्रचण्डगरुड को पृथक् पृथक् कृतियाँ माना है परन्तु श्रीयुक्त कृष्णमाचार्य ने करने गोविन्द (संस्कृत) साहित्य के इतिहास में दोनों रचनाओं को एक ही समझा है। गोविन्द कवि के पिता शेषदेवदेवर थे जो अनन्तसुत नाम से विख्यात थे। गोविन्द ने इस व्यायोग में गरुड द्वारा अपनी माता विनता के लिये दमृत का लाना दर्शित है। यह कृति अभी प्रकाशित नहीं हो पाई है। इसके उपरान्त कौण्डिन्य गोत्र के आद्य - सूर्य के विजयविक्रम व्यायोग का नाम भी सुना जाता है। इसमें अर्जुन द्वारा जयद्रथ के वध का दण्डन है। भारद्वाज गोत्रोद्भव नामशास्त्री पद्मनाभ के पुत्र कवि पद्मनाभ के त्रिपुरविजय का उल्लेख प्राप्य है। इनमें शिव और त्रिपुर का युद्ध अङ्कित था।

प्राचीन एवं मध्ययुगीन कवियों की कृतियों के पर्यवेक्षण से मालूम होता है कि प्राचीन कविवृन्द कविता के वाह्य सौंदर्य की अपेक्षा अन्तरिक सौन्दर्य के चित्रण में दक्ष हैं किन्तु उत्तरकाल के रसिक कवियों की कृतियों

में कला एवं विद्वता अरिक्त प्रदर्शित की गई है। उनकी वाक्यकृतियाँ चाहे वे श्रव्य हो या दृश्य, अचरकारो, छ रो तथा वाग्वाक्य में जगहों में दिखाई देती हैं। उनकी नाट्यकृति भाणुओं या प्रहसना, अथवा व्यायोग, भाषा प्राकृत हो या संस्कृत, मगधे कवि की पाण्डित्य प्रदर्शनों की प्रकृति पाई जाती है।

प्राकृत भाषाओं का नाटकीय प्रयोग संस्कृत के अभिनेय वाक्यों में उपलब्ध होता है भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में धीरोद्वन एवं धीर प्रशान्त नायक, राजा रानी, गणिका, श्रोत्रिय ब्राह्मण आदि के लिये संस्कृत तथा श्रमण, तपस्वी, मिथ अरुणर भागवत, तापस, उग्रसत, बाल, नपुंसक तथा नीच जाति के लोगों के लिये प्राकृत बोलने का निर्देश किया है। एकांकी रूपकों में भी भाणु, बीषी, प्रहसन आदि में प्राकृत बोलने वाले पात्रों का वाहुल्य होता है। परन्तु व्यायोगों में स्त्री पात्रों की तरह ही प्राकृत भाषियों का भी प्रायः (लगभग) अभाव-सा रहता है। अब यहाँ प्राकृत साहित्य के रसास्वाद लेने का पाठकों को बहुत कम अवसर मिलता है। फिर भी प्राचीन और पश्चात्कालीन कवियों की रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से विदित होता है कि वे अपने बौद्धिक-प्रदर्शन में ही प्रेक्षकों अथवा पाठकों को मुग्ध करने का यत्न करते हैं। अतः ऐसे कवियों के रूप-काव्य अधिकांश कृत्रिम, कठिन एवं जटिल बन गए हैं। समाज में ऐसी कृत्रिम वस्तुएँ आज की भाँति पहल भी हास्य की सृष्टि करने में समर्थ थी। कठिन एवं समस्त वाक्यों के उच्चारण में वक्ताओं की असफलता देश श्रोता को हँसी आए बिना नहीं रहती। चर्ममूरि ने नदी के मुख से यह तथ्य निकलवाया है।^१ इसका खण्डन करते हुए कवि न चन्द्रमा का दृष्टान्त दिया है।^२ वास्तव में इनकी भाषा जटिल होने पर भी हमके कतिपय अंश बड़े ही प्रभावोत्पादक हो गए हैं। इनकी भाषाभिन्नता की पद्धति स्तुत्य है।

हम पहले ही कह आए हैं कि ११ वीं शती के अन्तिम तथा १२ वीं

१- नदी - कवयम्भारुचननिमात्रसमीचीन व्याकरणिय एतेषा महामना श्लाघा-
भविष्यति।
नरकाशुरविजय

२- नरकाशुरविजय (प्रभावना)

शताब्दी के आरम्भ में दि० दि० (मुस्त्मानो स) के आह्वान से अस्त एव पतनोन्मुख भारतीय जनता को पुनरुत्साहित करने तथा समाज का सुधार करने के लिये ही व्यायोग तथा अथ सामाजिक रूपको (एकाङ्की) की रचना का प्रारम्भ किया गया था। प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय के अवलोकन से विदित होगा कि राज भी पत्र पत्रिकाओं में इस प्रकार के एकाङ्क रूपक प्रकाशित होने रहते हैं। यथा श्री बैलामनाथ विजय व्यायोग।

पञ्चम अध्याय

उत्पट्टिकाङ्क तथा बीथी

उत्पट्टिकाङ्क

स्व निर्देश

भरत तथा उनके अनुगामी नाट्यालोचकों के अनुसार उत्पट्टिकाङ्क कदापि प्रयत्न एकाङ्की नहीं होता है।^१ इसके अन्तर्भावना सारदाश्रित्य द्वारा उन्निमित्त कोटाचाने तथा आश्रित्यभाव^२ जैसे कुछ साहित्याचार्यों के अनुसार इनमें कनका दो और तीस अङ्क होते हैं। मुख्य रूप तथा अन्ती तथा वस्तु के विषय में नाट्यालोचकों में मतभेद है। शान्त्र-सम्पन्न लक्षण के अनुसार अङ्क का इतिवृत्त प्रमाण भी हो सकता है और अन्त-भाव भी। इसमें दिव्य पुरुष नहीं होते। भरत के पञ्चाङ्गवर्ती नाट्यमीमांसकों ने भी अपने लक्षण ग्रन्थों में 'पुञ्जामी' 'पुञ्ज' आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा इसमें देव व्यतिरिक्त

१- ना. भा. अध्याय १८, २४-२६, पृ० ४४१-४४३.

२- अन्तर्भावना अथवा अन्तर्भावना-शब्द ।

आश्रित्यभावः आश्रित्यभावः अथवा ।

मानव के नायक होने का विधान किया है ।^१

विभिन्न आचार्यों के मत

वृत्तियों के प्रयोग के सम्बन्ध में भी विचारकों में थोड़ा मतान्तर दृष्टिगत होता है। भरत एवं सागरनन्दों के अनुसार इनमें भारती ही प्रयुक्त होनी चाहिये शेष वृत्तियाँ वर्जित होनी हैं - "नाना व्याकुलचेष्ट सात्वायार-भटी कौशिकीशेन । भावप्रसाज को देखन से पता चलता है कि अङ्क रूपक में कौशिकी वृत्ति निषिद्ध है और ना की एक भारमयी प्रयुक्त होती है। शारदा-तनय के अनुसार कभी कभी इसमें भयानक रस भी रहता है ।^२

अरु में भाण्डव न समान ही मुख तथा निवहण सन्धियाँ होती हैं और इन सम्पादक भी होते हैं^३, परन्तु इसमें भाण्डव, ग्रहसन एवं बीबी में उपलब्ध शृंगारमय जीवन का चित्र दुष्प्राप्य ही रहता है। यहाँ तो संसार का प्रतियम और दुःसाक्षात् रूप ही चित्रित होता है। मानवजीवन के यथार्थ दर्शन यही होते हैं। मुद्रोरामन म्त्रियों के मुख में वैराग्योन्मेषिणी वाणी गुनने को मिलनी है। दैत्यों उगलम्भ, आत्म-विन्दा, अनुसोचन रूप, स्त्रियों के विलाप आदि का इनमें आधिक्य मिलता है।

मान् विपत्तिया म पढ जान पर भी उत्तम तथा मध्यम लोगो की पुन

१- प्रदग्ग-वन्तु विपयोऽप्युक्तानिष्य कशाविदेव ।

विश्वपुत्रैर्द्विपुत्रै र्देवैर्यभवेत्पुत्रि ॥

कल्याणप्रसाद, प्रबुद्धपुत्रोऽप्युक्तप्रहारश्च स्त्रीपरिवर्तनादुक्त

नानासाधुनचेष्ट भारमयी कौशिकीशेनोक्त ॥

ना ६ ८२ ६३ पु० २३६ सागरनन्दी । (भरतयोग के)

२- कौशिकी वृत्तिहीनश्च स्यात्सात्वायारभवेत्पुन ।

अविज्ञानकथा

.. भा० प्र० अष्टम अधिहार - पु० २२१-५३

३- उत्सृष्टिकाष्टे प्रदग्गत् वृत्तं बुद्ध्या प्रपद्येत् ।

रतस्तु कर्तु स्यादीदृशेनार प्रवृत्ता वरा ॥

भाण्डवमधिपुत्रैर्द्विपुत्रै स्त्रीपरिवर्तितै ।

भावा पुन विपत्तय तथा जयसारजो ॥ दशरूपक, प्रकाश ३, ७० ७१ पु० ७६.

उन्नति हो सकती है। इसलिये मानव को हर परिस्थिति में धैर्य एवं वित्त की स्थिरता का परिचयान नहीं करना चाहिये। उत्सृष्टिकाङ्क्ष में उपर्युक्त बिनापादि से परिपूर्ण क्या विपादग्रस्त लोगों को उत्साह प्रदान करने के लिये ही प्रस्तुत की जाती है। युद्ध भी वचनों द्वारा ही होता है। यहाँ रणकारों को बरपना वे वस्तु से प्रयास दृतिवृत्त का विस्तार करने की दृष्टि है। विद्वन्नाथ भी इसमें जयपराजय, वाक्पल्लव तथा निर्वेदवचनों का प्राधान्य स्वीकार करते हैं।^१

ग्रन्थ रूपक के अग्रान्तर विभागों का चोतक भी होता है। रूपकाङ्ग के पर्यायवाची और रूपक विशेष के चोतक शब्द में वर्णसाम्य से सभावित भावित के नियारणार्थ दशरूपक के टीकाकार धनिक^२ तथा विद्वन्नाथ ने इसे ग्रन्थ के स्थान पर उत्सृष्टिकाङ्क्ष कहा है। शोक-ग्रस्त उत्सृष्टिकाङ्क्ष नारिणों के उत्क्रम-शान्मुख जीवन का चित्रण होने के कारण हेमचन्द्र^३ तथा रामचन्द्र^४ ने अपने नाट्यशास्त्रीयग्रंथों में दस रूपक को उत्सृष्टिकाङ्क्ष ही कहा है और प्राचार्य विद्वन्नाथ ने भी प्रकारान्तर से इसकी पुनरावृत्ति की है।^५ साहित्य दण्डकार के मतानुसार इसमें सृष्टि उत्क्रान्त भयवा विपरीत रहती है। इस प्रसङ्ग में उनके द्वारा प्रयुक्त 'विपरीत' शब्द से यह व्यञ्जित होता है कि संस्कृत साहित्य में प्रचलित नाट्य मिद्धान्तों के अणवादस्वरूप उत्सृष्टिकाङ्क्ष का अन्त दुःखमय भी हो सकता है। भारतीय एवं पाश्चात्य रूपक-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि प्राच्य काव्य-लोक में पश्चिमी दुःखास्त नाटक का स्थानापन्न विप्रलम्भ-शृंगार प्रधान प्रेक्षकाध्य माना जाता है, संभोग शृंगार के विपरीत विप्रलम्भ शृंगार में नायक नायिका से मिलने में असफल रहता

१- भागवतसिद्ध-गुण्यज्ञानस्थित्तिन् जयपराजयी ।

गुह्य च वाचा कर्तव्य निर्वेदवचनं बहू ॥ सा ८ १, २४०-२४१ पृ० ४४०.

२- उत्सृष्टिकाङ्क्ष इति नाटकाद्वयनाद्व्यवच्छेदार्थम् ।

दशरूपक, सुतीय प्रकाश, धनिकावलोक - पृ० ७६

३- उत्क्रमेणो मुखा सृष्टिर्जीवि प्राणा यासा ता उत्सृष्टिका शोकान्त्य स्तिवसागिरिर्द्विप इति तयोक्त । हेमचन्द्र काव्यानुशासन (टीका) अध्याय, ८, पृ० ३८८

४- उत्क्रमेणो मुखा सृष्टिर्जीवि प्राणा ता उत्सृष्टिका शोकान्त्य स्तिव तागिरिर्द्विप इति उत्सृष्टिकाङ्क्षः । ना ८ पृ० २१७

५- .. उत्क्रान्त विनोमरुत मूर्ध्न्यैर्ज-युत्सृष्टिकाङ्क्षः । सा ८ १ पृ० ४४०.

अब तब के मोव के अनुसार जिन उत्पत्तिकारुको वा पता पत सका है उनका उत्पत्त्य प्रथम अध्याय मे हो चुका है ।

उनमे से प्रथम तीन (उरुमङ्ग, कशमर एव दूतपटोरकच) तो प्रादि-नरटककार भाग कवि की रचनाएँ हैं और येप व प्रगेनमो के नाम अगत हैं । इनके प्रणयन का भी निश्चित ज्ञान अब तक नहीं हो पाया है । शमिष्ठाय यानि की आचार्य शिवनाथ न शङ्क के जडाहरणस्वरूप ग्राहित्य-दर्पण मे तथा 'कहण कुम्भा' को शिङ्गमूनान ने रमारुज मुवाकर मे उद्भूत किया है । दपणुकार का समय चौदहवीं शताब्दी माना जाता है और शिङ्गमूनाल भी इनके ही समभावविक जनताय जात हैं । इन अनुमानन य इन प्राचार्यों से पूव की कृतियाँ रनी हागी । इन उनका मध्ययुगीन होना स्पष्ट है ।

महाभारत की उरुमङ्ग कशमर और दूतपटोरकच इनतीन एकाकियों का उपजीव्य है । इन एकरंगर का वर्गीकरण भी सूक्त्र साहित्य की एक शिवावमूनाल समझ रहीं है । श्री बाबुनानि ती गैरीना इन तीना ग्रन्थो को व्यायोग की कोठे मे रखते हैं । कारण इनमे सब के भी तमल घटित होने हैं और व्यायोग प्रवका व्ययाम के भी । एत एररो की व्यायोग की बका करने समय सामयिक (सदिग्ध) रूपका की बोटि म रखने का मुम्कन दिया गया है । अब एव व्यायोग के मगला वा गुवात्मर अध्ययन करने हुए जामुल्लिखित रचनाप्रा के सम्भवबनोहन से ज्ञान होगा कि बाट्य रचना विवात की दृष्टि से य सब उत्पत्तिकारु के अधिन निवट प्रतीत होने हैं ।^१ श्री पुमालकर जैसे बहुत स घाय निद्वाना ने भी इन सदायप्रद रूपको को व्यायोग न मान कर सब ही माना है ।^२

१- ध्वजेनदुर्गा-शाला स्वरासीजनसमुत्त ।

हीनामभक्तिगाम्या नरैवदुष्टिराहित । का २ ६ २२५ ३३, पु० ३३४

२- उत्पत्तिकारु एकाकी नेवार प्राहता मय ।

मुद्र व बाबा मनव्य निर्वैरवचन बट्ट ॥ का २ ६, २२०-२२ पु० ३२८

व्यायामस्तु विविधैः काय प्रध्यातनायकरीर

वायानुवाचन, अध्याय ॥ पु० ३८६ (हेमचन्द्र)

उरुमङ्ग

भास का ऊहमग उत्सृष्टिकाद्ध का सर्वोत्तम दृष्टान्त माना जा सकता है। इसकी कथा महाभारत के सन्ध पर्व के धनञ्जय महायुद्ध पर्व से ली गई है। इस रूपा में अर्जुनजनय अमिमन्वु के वध के प्रतिशोधरूप की गई प्रतिज्ञा के अनुसार महाभारत युद्ध में भीम द्वारा गदा प्रहार में दुर्योधन की जङ्घा को चरुनाचूर कर देने की घटना प्रदर्शित की गई है। इसका आरम्भ सूत्रधार के शतविंशत शौरसङ्गा रणभूमि के वर्णन में होता है^१ और यही दुर्योधन-भीम के गदायुद्ध का सकेत भी मिल जाता है। उक्त गदायुद्ध का वर्णन तीन सैनिकों द्वारा किया गया है जिसे हम विष्णुसूक्त^२ की सजा दे सकते हैं। यही युद्ध-क्षेत्र तथा दायिनों के विभाग का विस्तृत विवरण भी सुनने को मिलता है। यह घटना सामन्तक^३ पञ्चरु नाम स्थान पर घटित है जिसका प्रमुख पात्र दुर्योधन है।

सर्वे - ग्रहो नृपतु निहत पतिव-गज - सुरग - नर-रधिर - कसिलभूमि-
प्रदेशस्य विभित्तवर्गवर्मानन - चामर - तोमर - शरकु-त कवचकन्यादि-
पर्याकुलस्य - शक्तिशालहाटवभिष्टिपाल शूनमुसलभुरगरवराहकण - कणप-
कणैः शङ्खुवांसि गदादिमरायुधैरासीलं-य समन्तरश्चरत्य प्रतिमया ।
यहा तरकातीर प्रतिद्विष्टता की छविराटपूर्ण बातों का चित्रण है, जिन्हे भीम अपने दाव-पैचों द्वारा सफलतापूर्वक नष्ट कर देता है।

महाकवि भास ने अपने कवित्व के बल से महाभारत की गदायुद्ध की कथा को परिवर्तित कर दिया है। प्रस्तुत नाट्यान्त परिवर्तनों पर एक दृष्टि डाल लेना अप्रासङ्गिक न होगा। महाभारत में संध पर्व के समय अर्जुन छल से भीम को उरुमङ्ग करने का सकेत देते हैं। वहा दुर्योधन^४ भगवान् कृष्ण को अर्जुन की इन बातों की सूचना देता सुना जाता है परन्तु एराट्रो में इस

१- उरुमङ्ग पृ० ४

२- उरुमङ्ग पृ० ८

३- उरुमङ्ग पृ० २४

४- प्रतिज्ञात हि शूनकोने धनञ्जय । उरुमेत्यादि ते युद्धे गदयेति सुपोषनम् ॥

महाभारत - अन्तर्गत - गदायुद्ध पृ० ४०६

रहस्योद्घाटन का पूरा उत्तरदायित्व श्रीकृष्ण पर छोड़ दिया गया है। इस महान् व्यक्ति को कोई कुछ कह नहीं सकता। श्रीकृष्ण का सचेत पाकर भीम अपने मनोरथ की पूर्ति करता है।

भूमौ पाणिनल निवृत्त तरमा बाहू प्रमृग्याधिक
मन्दष्टोष्टुटेन विरमवलान् क्रोवाधिन भजता ।
रयन्त्वा धमष्टणा विहाय नमय कृष्णस्य मत्तासम
गान्धारीनयस्य पाण्डुनयेनोर्धोविमुक्ता गदा ॥^१

प्रस्तुत नाटक में हम द्वैपायन (व्यास) और विदुर की गदायुद्ध के दशक के रूप में पाते हैं। इन पात्रों को यहाँ रश्मि में कवि का मुख्य उद्देश्य था, इनके द्वारा भीम की निर्दोषता मिट्ट करवाना। ये गुरुजन इस सम्बन्ध में मौन रहते हैं। व्यास दुर्योधन के घायन होते ही घटनास्थल त्याग देते हैं। और विदुर लोह-सुहान मस्तक वाले भीम को देख अपनी आँखों में आँसू भर कर उसके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं।

तृतीय — एष रघिरपतनद्योतिताङ्ग निहतन्त कुरुराज दृष्ट्वा
लमुत्पतितो भगवान् द्वैपायन ॥^२

महाभारत में इस प्रसङ्ग की कही खर्चा नहीं मिलती। युद्धोपरान्त रूपक में गान्धारी, धृतराष्ट्र और धन्तपुर के अन्य सदस्य बालक दुर्जय के साथ सामन्तपञ्चक पहुँचते हैं। महाभारत में श्रीकृष्ण के आदेशानुसार पाण्डव कौरवों के सन्तप्त परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करने के लिये हस्तिनापुर जाते हैं।

इस उत्सृष्टिकाङ्क्ष रूपक में शोकातुर कौरवों एवं पाण्डवों के गुरुजनों तथा क्लियों के घटनास्थल पर पहुँच जाने से कवि को उनकी स्वाभाविक मनोभावनाओं के अनुभव का अवसर मिल जाता है। क्लियों की स्वामिभक्ति, दुर्जय जैसे शिशुओं की मृन्मुसी भयङ्कर वस्तु से अनभिज्ञता, पुत्र की मातृ -

पितृ भक्ति, धायन दुर्योधन की पुत्र को मोद म बैठने में कल्याणजनक अस-
मयना के वरान म कवि की प्रतिभा फूट पड़ी है। कल्या प्रधान कृति होने के
कारण यहाँ काव्य के मधुर रूप के दर्शन होते हैं। इस दृश्य में दुर्योधन के
प्रति प्रेक्षक की सहानुभूति उमड़ पड़ती है।

दुतराष्ट्र - भो कष्टम् ।

वञ्चना निहत श्रुत्वा सुतमद्याहवे मम ।

मुखमन्तगतस्वाक्षमन्धमन्धतर कृतम् ॥

+

+

राजा भो कष्टम् । कष्टम् । यन्मयापि स्त्रियो रुदन्ति ।

पूर्वं न जानामि गदाभिघात रुजामिदानीं तु समययामि ।

यन्मे प्रकाशीकृत - मूर्धजानि रण प्रविष्टान्यबरोधनानि ॥

+

+

+

बलदेव --- अये इयमत्रभवती गान्धारी ।

या पुत्रपीड - वदनेष्वकुतूहलाक्षी

दुर्योधनास्तमित - शोकविपत्ति - धर्म्या ।

अस्त्रैरजस्रमधुना पतिघ्नं - चित्तम् -

माद्रीवृत्त नयन - वन्धमिद दधाति ॥

+

+

+

धृतराष्ट्र - एहि पुत्र । अभिवादयस्व माम् ।

दुर्योधन - अयमागच्छामि (उत्थान रूपमित्रा पतति)

हाधिक् । अय मे द्वितीय प्रहार । कष्ट भो ।

हृत् मे भीमसेनेन गदाघात - कचग्रहे

समूहद्वयेनाद्य गुरो पादाभि - बन्धनम् ॥

दुजय ताद । अह गच्छामि (जामृत्य) ताद । बहि सि ।

दुर्योधन अये अयनप्यागत । सर्वविस्थाया हृदय सतिहित

पुत्र स्नेहो स दृष्टि । हुन

दुःखानाम - नभिज्ञोयो ममाङ्क - अयनोचित ।

निजित दुःखो दृष्ट्वा त्रिभु मामभिजास्यति ॥

दुजय सह वि सु दे अन्व उववित्तामि (अङ्कमारोहति)

दुर्योधन (निवाम) दुःख । दुःख । भो कष्टम् ।

हृदय - प्रीतिजननो यो मे नेत्रोत्सव स्वयम् ।
सोऽयं वास - विषर्वाञ्छिन्द्रो वह्नित्वमायत ॥^१

महाभारतगत वक्ता के अनुसार युद्ध के प्रसङ्ग में किये गये छल को पार करके दुर्योधन श्रीकृष्ण पर उद्यत पड़ता है। परन्तु भास में उसका चरित्र यहाँ विस्फुल्ल बदल दिया है। महाभारत में अक्षयपामा रात्रि में पाण्डवों का विनाश करने की घोषणा करता है तब दुर्योधन खूब प्रसन्न होता है। किन्तु नाटक में वह उस इस कारण बम से रोयता है। उसका ऐतिहासिक महाकाव्य में दुर्योधन रात्रि युद्ध के परिणामस्वरूप द्रौपदी के पञ्चपुत्रों के वध का समाचार सुन कर मर जाता है। इस दृश्य काव्य में रात्रि-युद्ध के दिये अक्षयपामा के प्रधान करने से पूर्व ही वह अपने प्राण त्याग देता है।

दुर्योधन को हम उद्यम-ज्ञ वा नायक तो नहीं कह सकते, परन्तु यहाँ यह महाभारत एवं भट्टनारायण के देखीसहार के वीरोद्धत नायक के रूप में प्रकट तब नहीं रहता।

पटले हम दुर्योधन की प्रतिनायक के वध में तन मन में पाते हैं, परन्तु भीम द्वारा उदरकन के साथ साथ उड़का मिथ्या दण भी भूल हो जाता है और महाभारत का घट कुक्किनीत तथा अहङ्कारी दुर्योधन नाटककार की प्रतिभा के प्रकाश में नितात उदात्त एवं शीघ्र तथा पराक्रम के जीते जागते प्रतीक के रूप में उपस्थित होता है।^२

मृत्यु से पूर्व वीरमति की प्राप्ति करने वाली एक आवत योद्धा की तरह यह भाषण करता है।

राजा - मावि । मानवि । त्वमपि शूरु ।

मिना मे भृकुटी गदा निपतितैर्व्यामुद्ध - वालोरित्तै—
नक्षत्रान्तरितैः प्रहारैर्मिरैरपिनाशोद्धत ।

१- उद्यम-ज्ञ ५७ ४३ पृ० १०-११

२- भाषापर प्रकाशपत्रकेन्द्राहणभूमि १,

कामभायानिरतो धीरवीरोद्धत वक्षित ॥ सा २ कृत्य परिलेख पृ ३३

३- अक्षयपन क्षमायानिवन्धीरो महाकाव्य ।

स्वेयान्निभूताको धीरोदात्तो हृदयत वक्षित ॥ सा ३ कृत्य परिलेख पृ० ३३

पश्यमी शृणुकाचनार्जुनधरो पर्याप्त - सोभा - भुजो
 भर्ता ते न पराद्मुखो युधि हत कि क्षत्रिये । रोदिवि ॥^१
 राजा पौरवि । त्वमपि धृष्ट
 वेदोक्तैर्विविधै - मंसैरभिमतैरिष्ट धृता वान्यवा
 शत्रुणामुपरिस्थित प्रियशताश्रो शत्रव सश्रिता
 युद्धे ऽष्टादश बाहिनी नृपतय सन्तापिता निग्रहे
 मान मानिनि । वीर्य मे नहि रुदन्त्येवविधाना निग्रहः ॥

अपनी माता के प्रति उसकी भक्ति के उद्गार प्रशंसनीय हैं । क्रोध में पाण्डवों का नाश करने को उद्यत बलराम को शान्त करने के लिये उसके हृदय में निकले हुये भाव भी मार्मिक हैं । इस प्रकार दुष्ट दुर्पोषण एक सज्जन का रूप धारण कर प्रेक्षकों के हृदय में अपने लिये दया का भाव जागरित करने में पूर्ण सफल होता है । उसका वैर भाव पश्चात्ताप में परिवर्तित हो जाता है ।

बलदेव - अहो वैर पश्चात्ताप सवृत ॥^२

दुर्योधन के प्रतिरिक्त धृतराष्ट्र गान्धारी, भालवी, पौरवी, कुजय आदि अन्य पात्रों के चरित्र विन्यास में भी नाटककार ने पर्याप्त कौशल प्रदर्शित किया है । इन मुख्य पात्रों के सिवाय युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, द्रुपद्यन, विदुर आदि पुरुषों का स्थान-स्थान पर नामोल्लेख - मात्र आता है । ह्रीं, बलराम एवं अश्वत्थामा का व्यक्तित्व भी अंग्रेजों में महत्वपूर्ण दिखलाया गया है । अश्वत्थामा का चरित्र एकाङ्गी विदित होता है । उनमें केवल शौर्य प्रदीप्त है ।

स्फुटित-वमत-मन-स्पष्ट विलीख-दृष्टी
 श्विर-जनक-पूष - व्यापनालम्ब-बाहु
 सरभम भगमुय काभुंक कपन्नाय
 सदहन इव मेरु शृग-सग्नेन्द्र-बाण ॥^३

वैरागि अभी तक उसके हृदय से शान्त नहीं हो पाई है । वह महा-

१- उद्भक्त २१-२२ १०७-११०.

२- उद्भक्त १० ११४

३- उद्भक्त २९, १० ११६.

भारत-युद्ध के यत्न में पाण्डवों की अन्तिम आहुति जान कर इसकी इति करना चाहता है। उसकी बातों से अविनय टपकता है। दुर्योधन के विग्रह समाप्ति की राय देने पर भी वह अपने निश्चय को नहीं छोड़ता और उसकी भर्त्सना करता है।

राजा मा भवानेवम् ।

सद्युगे पाण्डु-पुत्रेण गदा-भात वचनम् ।

समभूस्त्वयेनाञ्जद्वर्षोऽपि भवतो हत ॥^१

बलराम का रूप अपेक्षाकृत अधिक प्रशस्न है। वे भी दयाहीन, क्रोधी बनलाए गए हैं परन्तु उनका क्रोध कपट-युद्ध के कलस्वरूप भडका है। यत इससे उनकी न्यायप्रियता में कमी नहीं आती। उन्हें अपने शिष्य के युद्ध-जीसात पर अभिमान है। उनके कुछ रूप का कवि ने उपमातकार की सहायता से निम्नांकित पदित्या में स्वामाबिक चित्र खींच कर रख दिया है।

प्रचरामलितमौलि क्रोधताम्रायताशो

भ्रमरमुखविदलां किञ्चिदुत्कृष्य बासाम् ।

असित - अनुविसम्बिसस्त-बलानुकर्षी

जितितनमनीषु पारिवेपीव चन्द्र ॥^२

अर्थ —

देखो ये बलराम खले धा रहे हैं। क्रोध के कारण इनकी लम्बी लम्बी आँखें सात हो गई हैं, और सिर तेजी से हिल रहा है। इनके गले में पड़ी माला की सुगन्ध से भँवरे उनके घाम पास मँडराकर उसे चाट रहे हैं। भँवरों को हटाने के लिये माता की इन्होंने कुछ टेढ़ा कर लिया है। ये अपने नील वस्त्र को जो जमीन पर लग्न रहा है समेटने हुए चले धा रहे हैं। ऐसा दिनाई देता है जैसे परिवेष (मण्डप) से युक्त चन्द्रमा ही धृत्वी-तल पर उतर आया हो।

प्रस्तुत कथणाप्रवण एकांकी में कवि ने दूत वीरा के मुख से दर्पोन्तियाँ निवर्तवाकर वाक्य के भाव भाव वीररम की धारा भी प्रवाहित की है। इस

१- उम्भट्ट ६१ ६२ पृ० १३२

२- उम्भट्ट २६ पृ० ६०

माट्य में आए हुए वरुण दूधों का अवनोक्त हम उभर कर चुके हैं । माटक के आरम्भ में युद्ध-भूमि के चित्रण के समय भयानक एवं वीरमय रम के भी यव-तन दशन होत है जिनका पट कर, वशीमहार के प्रतिपद दृश्या की पाद द्या जानी है ।

एन परस्पर — शरैहृतजीविताना
देहे रणजिरमही समुगाधिनानाम् ।
शुबन्ति चान पिशिताद्रमुद्या विहङ्गा
राजा शरीरविधिवानि विभूषणानि ॥^१

घोर भी —

प्रथम — रथिग्नरितो निस्तोयन्ते हतद्रिसङ्क्रमान्
नृतिरहितं सतै मूर्खवहन्ति रणान् हया ।
पतितशिरस पूर्वाभ्यामाद् द्रवन्ति कवन्वता
पुरुषसहिता भक्ता नागा भ्रमन्ति यतस्तात ॥^२

प्रस्तुत उत्सृष्टिकाङ्क्ष का सारा कथार-सूत्र केवल एक ही घटना पर केन्द्रित है और वह है भीम द्वारा गदायुद्ध में दुर्योधन का उद्धमजन । उद्धमग-क्रिया से पूर्व के सारे सवाद एवं क्रिया-कलाप इसी दृश्य की ओर बढ़ने में सहायक हैं । एक ही भङ्क में अष्टासठ श्लोकी तथा गद्यमय भाषा में कवि ने महाभारतीय कथा को परिवर्तित कर निजी कल्पना-शक्ति से प्रतिपाद्य विषय को चारुतर बना दिया है । डॉ सुशील कुमार दे के शब्दों में इसके एक ही भङ्क में श्लोकी का बाहुल्य भी इसका वैशिष्ट्य है ।^३

इसके अतिरिक्त भास ने ही “ कर्ण-भार ” नामक एक साहित्य-पूर्ण एकाङ्की की रचना करके संस्कृत में भङ्क-साहित्य को सम्पन्न किया है । इन

१- उद्धम २५, पृ० १६ वहा-१० पृ० २६

२- उद्धम के द्रव अथ के तुलनामक अष्टासठ के लिये देखिये बेपीउहार - भङ्क
४, १-३ पृ ४२-४३

३- and the play is also remarkable in having as many as six* six stanzas in one act alone

De and Das Gupta, History of Sanskrit Literature Vol I.

[page. 113,

उत्सृष्टिवाङ्मू में कण-द्वारा ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को कवचकुण्डल देना वर्णित है। यहाँ कण के ठग्ग्वलचरित्र एवं उसकी दानप्रियता का प्रभावोत्पादक निरूपण किया गया है। महाभारत के धादि पर्व में इन्द्र को कवच-कुण्डल बाँट कर देने का वृत्तान्त मिलता है जिसके कारण उसका नाम वंशतन पड़ गया।

तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा पुत्रार्थं भूतभावन ।
कुण्डले प्राशयानाम कवचं च महाद्युति ॥
उत्सृष्ट्याविमनास्त्वाङ्गान् कवचं स्थिरम्वयम् ।
कणपाशो च द्वौ ह्येतरा प्रायच्छतम् कृताञ्जलि ॥^१

इस कथा का सञ्ज्ञित वन-पथ धीर शान्ति-पर्व के कुछ स्थानों में भी प्राप्त होता है। महाभारत के विभिन्न पर्वों में विचारी हुई कयालों को कवि ने इस नाटक में सङ्कुलित करके मनोरम रूप दे दिया है। महाभारत के वन पथ में इन्द्र द्वारा भिक्षुव के रूप में कवच कुण्डल की याचना का वर्णन है। इस समय पाण्डव वनवास की स्थिति में थे। मूसदेव यहाँ कर्ण को स्वप्न में कवच कुण्डल दान न करने का परामर्श देते हैं।

सूय - यद्येव शृणु मे वीर वर ते सोऽपि दास्यति ।
शक्तिं त्वमपि याचेथा मवशास्त्र-विवाचिनीम् ॥^२

तदनुसार कर्ण ने शक्ति-साध के बिना कवच न देने का निश्चय कर लिया था। वह शक्ति की याचना स्वयं करता है। परन्तु नाटक में स्थिति सधया भिन्न है। प्रथम तो वह घटना युद्ध-क्षेत्र में सम्पटित होती है वनवास में नहीं। यद् में ही इन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे अवसर पर दानी सब कुछ दे सकता है किन्तु कवच कुण्डल को वह भत्तग नहीं कर सकता। महाकवि भास को इन्द्र द्वारा कर्ण की दानप्रियता की कठोर परीक्षा करवाने के लिए यही स्थल उचित लगा। द्वितीयतः अहाँ महाभारत में कर्ण शक्ति की याचना स्वयं करता है, वहाँ कर्णभार में वह बढ़ने पर भी माँपना नहीं चाहता। इस प्रकार इस स्थल में कवि ने कर्ण के चरित्र को ऊँचा बना दिया है।

१- महाभारत आश्विपर्व (समय पथ) अध्याय १०२, ३७, ३८, ५०, ६८२,

२ महाभारत आश्वि पथ (समय पथ) अध्याय १०२, ३७, ५०, ६८२

इच्छामि भगवद्दत्ता दत्तित शत्रुनिवहिणीम् ॥^१

इसके अतिरिक्त महाभारत के अन्त्य एव नाट्यरस्य शत्य में भी पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है। दोनों ही वाक्यों में शत्य, वरुण के सारथि हैं, परन्तु इनका चरित्र एक-सा नहीं है। नाटक के शत्य, महाभारत की तरह कटुभाषी, उत्साह-विनाशक तथा वाचास न होकर सयमी, उदार-हृदय तथा रघी के शुभचिन्तक के रूप में द्रैक्ष्यो के सुख प्रबट होते हैं। कवि ने अनेक नाटकीय तत्वों का सम्मिश्रण कर उसे 'वरुणभार' नाम देकर सत्कृत नाट्य-सत्तार की एक अनुपम कृति बना दिया।

इस एकाङ्कीरूपक के नामकरण पर भी भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने पर्याप्त चर्चा की है। वरुणभार में प्रथम दृष्टि में 'वरुण' और 'भार' ये दो पद प्राप्त होते हैं। अभिधान-कोशों में प्राप्त कण-शब्द के विभिन्न धर्मों में से यहाँ इसका अर्थ वीरव-सेनापति कौन्तेय (राधेय) है। भारत के अनेक अर्थों का उपयोग विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से किया है। डा० जी० भट्ट के अनुसार वरुण की मानसिक चिन्ता ही उसे भारस्वरूप होकर कष्ट-दायिनी हो रही है। कौरवीय सेना के सञ्चालन के महान् उत्तरदायित्व के भार से वरुण लदा हुआ था। वरुण-भार का सकेत इसी 'भार' की ओर है। इसी बात को ध्यान में रख कर श्री गणपति शास्त्री ने यह मत व्यक्त किया कि इन लघु रूपक में सेनापति कर्ण का रूप पूर्णरूपेण निखर नहीं पाया है। वे इसमें एक मझू और बढाने की महती आवश्यकता बतलाते हैं। मेरे विचार से अपने वर्तमान रूप में भी इसमें साहित्यिक सुषमा तथा कथा-सूत्र का सम्पक् निर्वाह हुआ है।

डॉ० पुत्तालकर, वरुणभार को इसी रूप में पूर्ण मान कर इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं —

“वरुणयोः भारभूतानि कुण्डलानि दत्त्वा कर्णेनापूर्वा दानश्रुता प्रकटी कृता। तामधिकृत्यकृत नाट्यम् ॥” इसके शुद्धपर्यं वह भागे कहते हैं कि वाचिक दान एव क्रियात्मकदान के अन्ध की अवधि में कर्ण के कानों को वे कुण्डल मारभूत प्रतीत होने लगे।

पुत्तालकर महोदय की व्याख्या में कवियों का उत्प्रेक्ष न होने में प्रो० सी० भार० देवघर, नाटक की विषयवस्तु का पूर्ण उद्घाटन न हो पाने के

कारण उक्त वचन को समूह समझते हैं। सेनापति के रक्षणार्थ कुण्डों की घेरेक्षा कवच का महत्व वही अभिहित होता है। डा. मैक्नल्लिषडेन्सू "भार" का प्रथम कवच करते हैं। एवं महानुभाव इस नाटक का नामान्तर "कवचाङ्क" भी बताते हैं। किसी की यह स्वामान्वित उक्ति है। कवच के कारण ही यही कण के चरित्र में अ-नन्द दिव्य देता है। अतः यही कवच प्राधान्य प्रतिनिधित्व प्रकट है।

डॉ. विन्टरनित्ज ने कर्णभार की विवेचना में कण के कठिन काम की ओर ही संकेत किया है। "The difficult task of Karna" viz His vow that he would not refuse anything to a Brahman." प्रो० जी० सी० भाना, "भार" का सम्बन्ध भाम के ही पञ्चरात्र नाटक में कर्ण द्वारा प्रयुक्त "भार" से जोड़ते हैं।

कर्ण - भारमं मृगमुद्यतेरिह हयैरुक्तो रथ स्याप्यताम् ॥^१

उनका कहना है कि पञ्चरात्र रचते समय कर्णभार की घनेकार्यता की दान भास के ध्यान में थी। कतिपय विद्वान् मनीषियों के मत में कर्ण का युद्ध-कौशल ही उनके लिये भारभूत हो गया था।

परमुराम के शाप, कुन्ती को अर्जुन के अनिरिक्त दोष पाण्डवों को न मारने के वचन-दान तथा इन्द्र को कवच कुण्ड के दान के कारण कर्ण की अस्त्रविद्या समय पर विकसित सिद्ध हुई थी। उक्त कारणों में इसका कोई भी कारण रहा ही, नाटक के सीपक की जटिलता प्रत्यक्ष है। दानवीरकर्ण ने विपरीत परिस्थितियों में फँस जाने पर भी युद्ध के लिये अत्यावश्यक वस्तु कवच को रण-क्षेत्र में ही ब्राह्मण-वेद्यधारी इन्द्र को प्रदान १. अपनी गुरुता (भार) को समुपलब्ध बनाए रखा। भास ने कर्ण के चरित्र को ऊँचा उठा कर, उसके दानकर्म के शौर्य को किसी प्रकार की शंका नहीं आने दी। कर्ण दान का प्रतिफल भी नहीं चाहता। यह बात इन्द्र द्वारा पीछे से भेजी गई शक्ति को लौटाने के कृतान्त से पुष्ट होती है। दानशीलता के अनिरिक्त कर्ण की एक और विशेषता इस रूपक में निश्चयी है और वह है उसकी अपूर्व ब्राह्मण-निष्ठा। वह ब्राह्मण के लिये अपना सर्वस्व

दान करने को उद्यत रहता है। इन्द्र ने भी, सुवर्ण आदि दान लेना अस्वीकार करने पर वह निरस्येद कर अपना मस्तक उस देने को तैयार हो जाता है। इस प्रसङ्ग में ऋण एवं कैतवी इन्द्र के सवाद को पढ़ कर बठोपनिषद् में स्थित यम एवं नचिकेता के बीच के दार्तालाप का स्मरण हो आता है, जहाँ यम उसे वरदान के रूप में बहुत सी कमनीय वस्तुएँ देने की बात कहता है और वामन नचिकेता उन सबको क्षणभङ्गुर समझकर अस्वीकार करता जाता है। यथा -

यम - य ते कामादुक्ताभा मर्त्यलोके सर्वान्भामादित्यन्त प्रपद्यस्व ।
इमा रामा सरथा सत्पथा नहीदृशा सम्मनीया मनुष्यै ।
आभिमतप्रताभि परिचारयस्व नचिकेतो भरणु मानुप्राप्सौ ॥

नचिकेता -

इवोभावा मर्त्यस्य यदन्तर्कैवत् सर्वेन्द्रियाणाभरन्ति तेज ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तर्धैव बाह्यास्तव नृत्परीते ॥

वरुणभार के इन्द्र के चरित्र में कोई विलक्षणता सक्षित नहीं होती। वह अपने स्वार्थ के प्रति एकनिष्ठ है। ऋण द्वारा बहुमूल्य लुभावनी वस्तुओं के देने पर भी नचिकेता की तरह उनकी ओर आकृष्ट नहीं होता और जैसे ही कवच-कुण्डल का नाम सुनता है, उसे भट स्वीकार कर लेता है।

वरुण - गुणवदमृतवत् क्षीरधाराभिर्वपि,
द्विजवर ! रचित ते वृक्षवत्सानुयात्रम् ।
तरणमधिवमधि प्रार्थनीय पवित्र
विहितवनवश्रृङ्ग गोसहस्र ददामि ॥

शक्र - यो सप्तसति मृदुत म खिर पिबामि । रोच्छामि कथम् ।

वरुण - किं नेच्छति भवान् । इदमपि श्रूयताम् ।
रवितुरग-समान साधन राजलक्ष्म्या,
सप्तजम्भूतिभावा नाभ्यपान्धोज्ज्वालिभू ।
मुगुणमनिलवेग युद्ध-दृष्टापदान
सपदि बहुसहस्र वाजिना ते ददामि ॥

कण - न मेनव्य न मेनव्यम् । प्रसीदतु मयान् । धन्यदापि धूमताम्-

अङ्गै सहैव जनित मम देहस्या
देवामुरंति न मेवमिदं सह्यम् ।
देव तथापि नञ्च सह कृण्वताम्या
प्रीत्या भया भगवते रचिन यदि म्यान् ॥^१

इसके धनन्तर इनका अन्ततः रूप सामने पाना है। आत्मगन्तवि की प्राप्ति में लाने के बाद वह कण के निचे देवदूत द्वारा विभवा नामक एक धर्मांध शक्ति को भेजकर धर्म लिए हुए स्वर्णिङ्गल जनपद क्रम का परिष्कार करता है।

कणमार में धन्य का चरित्र पूर्ण विकसित नहीं हो सका है। वे पांडुरंग के सामने मजजी, नम्र एवं धरने स्थायी के त्रिचिह्नरूप के रूप में प्राटे हैं। धन्यराज कण के चरित्र से उदारता के माध्यम हैं। वह धन्य तक कण की मुक्त-मुक्ति का विचार करने वाले एक महदम मारपी बन रहते हैं। अङ्गैद्वय कौरव-ननारति कण, कर्णमुक्त सत्य एवं इन्द्र उन तीन मुख्य पात्रों के अनिरिक्त भट, मूकक आदि पात्रों के नाम भी इन एकाकी में धाने हैं। उक्त मुख्य पात्रों का तो मर्याद भी मुक्त को विवश है। धन्य स्वर्णिङ्गल मुनीलकुमार के^२ का यह कथन कि "यह एकाकी ही नहीं, बल्कि मैं यह एकाकीय रूप ही है" उचित नहीं प्रतीत होता। कर्णमार लघु-रूप होता हुआ भी धरने विचार में पूर्ण है। जिस घटना को अहाँ लिया गया है उसका धन्य तक सकल निर्वाह किया गया है। बहुत से मुख्य विषय कथो-कथनो द्वारा ही सूचित कर दिने गये हैं जैसे-धारप्राप्ति का वृत्तान्त कुन्ती की अर्जुन के अनिरिक्त धन्य पाण्डव भाइयों को न मारने का आश्वासन आदि। इसकी घटनाओं के आरोहोहारी में भी निमित्तता नहीं धाने पाई है।

काव्यरस के परिष्कार एवं नाटकीय विधानों के निर्माण की दृष्टि से भी यह उत्तम मोटि की रचना है। इसका कान्धन मगर-वेर होन के कारण इसका सीधा सम्बन्ध तो वीररस में है, परन्तु रस में प्रयोजन कदापि रस की ही है। उदमङ्ग एवं कर्णमार में तथा भाग के धन्य नाटकीय कथन रस की अभिव्यक्ति बड़ी मजबूत दिखाई पड़ती है। मङ्गल की भाँति "एतेत्य

१- कणमार - १६-२१, पृ. २२

२- it is not only a One Act Play but really a one Character play

करुण एव" के समर्थक न होते हुए भी अपनी रचनाओं में करुणा के हृदयग्राह्य चित्रण द्वारा भास ने इस रस विशेष के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित कर ही दिया है ।

कारुण्यपूर्ण वातावरण के आधिक्य से सम्भावित नीरसता के निवारणार्थ कवि ने इसमें हास्यको स्थान देना आवश्यक समझ कर बाह्य वेशधारी इन्द्र के मुख से नाट्य निदानों के विरुद्ध मार्गधी एवं अर्थमार्गधी प्राकृत का प्रयोग करवाया है ।

धी बुलन्तर महोदय के अनुसार कण्ठभार एकदुःस्वान्त रूपक है । परन्तु यहाँ मृत्यु मन्त्र पर दिखलाई नहीं गई है और न ही कण्ठ के भर जाने की सूचना दी गई है । शाय से बार-बार अर्जुन के पास रथ ले जाने को कह कर कण्ठ मृत्यु के पास जाना अवश्य चाहता है । परन्तु उनकी मौन हो गई — ऐसी सूचना दशको को नहीं दी जानी । मुझारम्भ होने का मकेन देकर भरतवाक्य द्वारा रूपक का उपसंहार किया गया है ।

भल शत्रो की योजना भी अतुलनीय है । अन्तुन अवनारितान मे कण्ठ की प्रति सुन्दर उपमा निहित है —

एव हि —

मृत्युप्रदीप्तिविशद समरेऽग्रगण्य
शौचं च सप्रति मशोकमुपैति शोमान् ।
प्राप्ते निदायममये घनराशिबद्ध
मूनं स्वाभाववृचिमानिव भाति कण्ठं ॥^१

कवि की वर्णन शक्ति भी सराहनीय है । परशुराम के दण्डन को पढ़ कर उनकी भाभाई मूर्ति पाठकों के सामने आ जाती है ।

कण्ठ — तन

विद्युत्लता — कपिलतुङ्गजटा — कलाप —
मुद्यत्प्रभावलयिन परगु दधानम् ।
सत्रान्नक मुनिवर भृगुवशक्तु
मदका प्रणम्य निवृत्ते विभूत विस्तरोस्मि ॥^२

१- कर्ण-पार ४, पृ० १.

२- कर्ण-पार ६, पृ० ६.

दशों के माध्यम से चतुर ब्रह्म ने समार की धनारता तथा धर्म एवं दान की महत्ता बताई है।

धर्मो हि दानं पुनरेव नाप्यो भुज्जगिह्वा-चक्षता नृपधिपः ।
तस्मात्प्रजापातनमात्रमुद्ध्यता हनेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥^१
निष्ठा धनमच्छति ज्ञान-ययसान् मुक्कमूना निपतन्त्रि रादपाः ।
अस जलमानगत च शुष्यन्ति हन् च दन् च तर्धैव निष्ठन्ति ॥^२

नीति-मुक्त की मायवता के सम्बन्ध में वनवीर दशों का दान है कि इस संग्राम में लड़ते हुए बीरमति को प्राप्त हो जाने के भी शरीरी की विजय ही है। इन वाक्यों में भगवद्गोता की छाया स्पष्ट है।

हृतोऽपि नमते स्वर्गं जित्वा तु तन्मते यथा
उभे बहुमते लोके नारित निष्कसता रणे ॥^३

तुलना कीजिए —

हृतो वा प्राप्स्यन्ति स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कीन्तेषु युद्धाय हृतनिश्चयः ॥^४

दूतघटोत्कच -

संस्कृत के उत्सृष्टिकाव्यो में महाकवि भास के 'करा-भार' के घटि-रिक्त दम्ती के 'दूतघटोत्कच' का नाम भी धातर के साथ लिया जाता है। इसका कथानक भी 'दृष्टमङ्ग' की कथावस्तु की भांति महाभारत में द्रुपद धर्मज-पुत्र अभिमन्यु के मरण के उपरान्त घटित घटनाओं से सम्बद्ध है। पुत्र के वध के पश्चात् धर्मज द्वारा जयद्रथ के वध तथा कीरवो के नाश की प्रतिज्ञा करने पर धीवृष्ण द्वारा पटोत्कच को इसकी सूचना देने के लिये घृतराष्ट्र के पास भेजना भीरु धन्त में दारण युद्ध का वृत्तान्त ही इसका विषय है। उद्धव-वीर घटोत्कच के दुर्गोचन तथा अपने साथियों के साथ हुए दातांवाप में घटो-

१- कर्णभार, १०, पृ० १८.

२- यही-२२, पृ० १३.

३- यही-१२, पृ० १३.

४- गीता २-३३

रोना-गाना मुताई देने लगता है । इस शोक-ग्रस्त वातावरण में श्रीकृष्ण द्वारा प्रेषित घटोत्कच उनके इस बन्धेन के साम दुर्योधन की शमा में पहुँचता है ।

धृतराष्ट्र - कथं नु भो ।

वेनंतच्छ्रुतिपथदूषणं कृतं मे

कोऽयं मे प्रियमिनि विप्रिय इवेति ।

कोऽम्माव निभुवधपातवाङ्मिनावा

वशस्य क्षयमवधोपयस्यभोतः १

गान्धारी - महाराज । अति उल्लुखित जाणीयदि केवलं मुनममप्रकारणो
कुलविग्नहा भविष्यति ।

+

+

+

धृतराष्ट्र - गान्धारि शृणु -

मद्याभिमन्यु - निमनाऽब्रवीत् प्रतीत

सामपेक्ष्य धृतरास्मिगुह्यप्रबोध

पाथं वरिष्यति तदुपयुक्तं सहाय

क्षान्तिं गमिष्यति विनाशमवाप्य लोकः ॥

+

+

+

धृतराष्ट्र - वरुणे धनं धनं रुद्रेण । पश्य,

भर्तुष्वे नूनमत्यन्तमवेग्यं न रोक्ते ।

येन गान्धीविवाणामात्मा मञ्जीरुन स्वयम् ॥ १

दुःशला - अयम् । कुशे मे एति भागि माप्रयेयाति । जो जलद्वारा-

सहायस्य धनुश्च अस्मिन् विनिश्च वरिष्ये कीदृशं जीविष्यति ।

१- द्रुपदोक्तं पृ० ४,

२- द्रुपदोक्तं ३-७ पृ० ४-६

घृतराष्ट्र - सत्यमाह तपस्विनी दुःखता । कृत

कृष्णस्याष्टभुजोपधानरचिते योऽङ्गे विवृद्धश्चिर,
यो यतस्य हृतायुवस्य भवति प्रीत्या द्वितीयो मद ।

पार्श्वानां मुरकुच्य विक्रमवता स्नेहस्य यो भाजन,
त हत्वा क इहोपलप्स्यति चिर स्वर्दुःकृतैर्जीवितम् ॥^१

इस प्रकार बीरवकुल की शोकाकुल अवस्था के चित्रण के साथ दून-घटोत्कच की वया क पूर्वाह्न की समाप्ति के उपरान्त इसका उत्तराध घटोत्कच तथा ज्येष्ठ - बीरव दुःखावन की गर्वोन्नियों से पूरा वाद-विवाद से भारम्भ होता है । यही नाटक के नेता घटोत्कच के दशन होते हैं, जिसकी नस-नस में बीररस बूट-बूट कर भरा है । साहित्य-शास्त्र कोविदों के बीरों के रस के अनुसार बीररस के तीन वर्ग निर्धारित किये हैं—युद्ध-वीर, धर्म-वीर एवं दयावीर । यहाँ पहले कृष्ण का भागी अनय की आशका से बीरवों को समझाने के लिये भेजा हुआ त वेस दयावीर का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है । परन्तु दुर्योधन के उन हितकारी वचनों को न मानने के कारण शत्रु की सभा में प्रदर्शित घटोत्कच की बीरता युद्धवीर की कोटि की है । श्रीकृष्ण का दून हैडिन्ग किसी भी अवस्था में धवमानना सहन नहीं कर सकता । दुर्योधनादि को पाण्डवों का तिर-स्कार करते देखकर, वह मुट्ठी बाँध कर क्रोध में भरा हुआ युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाता है । यहाँ कवि की लेखनी से क्रोध का स्वाभाविक चित्राकन बन पड़ा है ।

घटोत्कच — (सरोपम्) किं दूत इति मा प्रश्नयं वसि । मा तावद् भो ! न दूतोऽहम् ।

अतः यो व्यवसायेन प्रहरण्य समाहता ।

ज्याघ्नेदाद् दुर्बलो नाहमभिन्नुहि स्थित ॥

महानेप कंजोरकोऽयं मे मनोरथ

अथिब -

शरीर्यो मुष्टिमुत्तम्य निष्ठरय धरोत्तच

उत्तिष्ठतु पुमान् वस्त्रिद्वयमुत्तिष्ठेत्तमात्रम् ॥^१

एक मूर बोर के पहुँचते ही उसके मूर से भवनान् इष्टा के मन्देन को सुन
क्षयिषा व गिनाय-नाम को निवट भावा दस धनराष्ट्र दु खी होते हैं ।

धरोत्तरय - पितामह । श्रूयताम् । हा वत्स अभिमन्यो ।

हा पात कुरमुत्त प्रदीप । हा वत्स बहुदुःखप्रसन्न । तव जननीं
मातुल च मामपि परित्यज्य पितामह इष्टुमानाया स्वयमभिमन्योऽपि ।
पितामह । एव-पुत्रविनासादुर्गन्ध दासदीदृशी खल्ववस्था,
या पुनश्चकतो नृदिप्यति । उत क्षिप्रमिदानीमात्मवत्तायां कुरत्व ।
यथा ते पुत्रमौलसमुत्तिष्ठतोऽर्जुनिरनं दहेत्प्राप्तमय इविरिति ।^२

हा मूर के दसव भास के मध्यम-व्यावर्गादि मय दसवों में भी होते हैं ।
यह मन्देन रासत होता हुआ भी शालीनता, वाचस्पता, मयदि भादि मानवीय
दुखों का प्रवृत्त करता ही पाया जाता है । मन्देन कटने से पूर्व वह धनराष्ट्र
को प्रशान्त कर पाण्डवों का भी मादरपूर्वक स्मरण करना नहीं भूलता । पूर्वोक्त
द्वारा जैम भगवन्त से सम्बोधित धरोत्तरय बोरवों को दसवों से भी निम्न
शक्ति के व्यक्ति निष्ठ करता हुआ विपक्षियों के प्रति व्यंग्य करता है-

धरोत्तरय - जानत जानत पापम् । रासमेभ्योऽपि भवन्त एव कुरतरा ।

मुठ -

न तु जतुशे मृष्टान् भ्रातृन् दहन्ति निशाचरा ।

मिरति न तथा भ्रातु पत्नी सृष्टानि निशाचरा ।

न च मुठवष सखे वरुं स्पर्शन्ति निशाचरा

निवृत्त - यपुपोपुषाचरा घृणा न नु वक्रिता ॥^३

१- दूतशरीरय ४६-१७, पृ० ४०

२- दूतशरीरय - पृ० ३२

३- दूतशरीरय ४०, पृ० ३८

दुर्योधन, शकुनि तथा दृष्टासन आदि का चरित्र बहुत कुछ समान-कोटि का है। वे सब क्रूर अतिमानी तथा पापमय के रूप में दशको के सामने आए हैं। वे निहत्थे बालक के वध में प्रयत्न होकर स्वयं अपनी क्षुद्रता का परिचय देते हैं। इसके विपरीत बृद्ध धृतराष्ट्र दृष्टबलह से बड़े दुखी हैं।^१ वे एक आदरा ग्रहण हैं अपने दन्त्वा को आपम में नडने बटते देख उनकी आत्मा रो उठती है।

शकुनि - शकुनिरहमभिकादये ।

सर्वे - कथमाशीवचन न प्रयुज्यते ।

धृतराष्ट्र - पुत्र । कथमाशीवचनमिति ।

सौमदेनिहते बाले हृदये कृष्णपायंभो ।

जीविते निरपेक्षणा कथमाशी प्रयुज्यते ॥^२

×

+

धृतराष्ट्र - तेन निल बरविदायेन कृदा पाण्डवा

दुर्योधन - आ, तेन कृदा । बहुभि खल्वन्य ।

धृतराष्ट्र - भो बभूम् ।

बहूना समवेतानामेकस्मिन्निर्घृणात्मनाम् ।

काले पुत्रे प्रहृता कथं न पतिता भुजा ॥^३

वह अपने प्रियजनो को आशीर्वचन भी नहीं कह सकते, कारण, अब उनका कोई आशा प्रभाव नहीं फल सकता। सौ अनाथों के जनक के इस सौम्य रूप तथा इनकी गन्भीर आकृति को देख घटोत्कच को आश्चर्य होता है। अपने पौत्र हैदम्ब को देख कर उनका वास्तव्य उमड़ पड़ता है —

धृतराष्ट्र - एहं हि पुत्र ।

न ते यिय दुःखमिदं मयापि यद् भ्रातृनाशाद्व्यथितस्तवात्मा ।

इत्य च ते नानुगतोऽयमर्थो यत्पुत्रदोषात्कृपणीकृतोऽस्मि ॥^४

१- दूर्योधन ३५, पृ० ३०

२- दूर्योधन १५, पृ० १६

३- दूर्योधन १३, पृ० १३

४- दूर्योधन १०, पृ० ३६

उनके हृदय में अपने पराए की भेद-भावना नहीं है। निन्द्य कर्म करने वाले पुत्रों की वे बारबार भर्त्सना करते हैं। वे शान्ति के पुजारी हैं। घटोत्कच के उत्तेजित होने पर उसे भी शान्त करते हैं।

घृतराष्ट्र - पोत्र घटोत्कच । मपयतु मपयतु भवान् । भद्रवचनावगन्ता भव ।

शास्त्रधारी तथा वीरव-भूमिनी दुश्मना का खरिब कोई विशेष महत्व नहीं रखता। वे आदर्श भारतीय नारियाँ हैं। अपने परिवार के भावी विनाश की आशङ्का से डरी हुई इन कियों का सर्वप्रथम कारण क्रन्दन ही सुनाई देता है। इस रूपक में वीर तथा वरुण राम का सम्मिश्रण पाया जाता है। एक भोर अभिमन्यु की मृत्यु में चारों ओर शोक के बादल छाए हुए हैं तो दूसरी भोर घटोत्कच तथा दुर्योधनादि के वाक्यों में वीरत्व भरा हुआ है। डॉ. गणपति शास्त्री के वचनों में यह न तो सुखान्त ही है और न दुःखान्त। डॉ. कीर्ति, बा. गौरीला आदि इसे व्यायोग मानते हैं और पुसासकर महोदय इसे उत्सृष्टिकाङ्क कहते हैं। व्यायोगों की चर्चा करते समय पिछले पृष्ठों में हमने इसे भ्रष्ट ही माना है क्योंकि इसमें दीर्घतत्त्वान्वित व्यायोग के लक्षण कम दिखाई पड़ते हैं और बुद्धि प्रपञ्चित प्रदयातवृत्त वरुण रस, वाक्वत्तह, जयपराजय, स्त्रियों के विषय रहस्य इत्यादि उत्सृष्टिकाङ्क के शास्त्रमन्मत सब लक्षण इसमें चटित होते हैं। व्यायोग की तरह वीरता तो इसमें कूट कूट कर भरी है परन्तु स्त्रियों का अभाव नहीं है। ऐसी स्थिति में इसे उत्सृष्टिकाङ्क मानना ही ठीक होगा।

यह एकाकी श्रीकृष्ण के सन्देश के प्रत्युत्तर में दुर्योधन के वाक्यों तथा घटोत्कच द्वारा उद्धृत जनार्दन के अङ्गसमय पश्चिम मन्देश के साथ समाप्त होता है।

दुर्योधन - आ कस्य विज्ञाप्यम् । भद्रवचनादेव स वक्तव्य ।

किं व्यर्थं बहुभाषसे न खलु ते पारुष्यसाध्या वयं
कोपान्नाहीति किञ्चिदेव वचनं मुदयदा दास्यसि ।

निर्णाम्येव निरन्तरं नृपशतच्छत्रावतीमिवृत्त -

स्तिष्ठ त्वं सहपाण्डव प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैः ॥

घटोत्कच - भो भो राजान ! धूम्रता जनादेनस्य परिचयः सन्देशः ।

धर्म समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षा

यत्काङ्क्षित मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ ।

जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी

सूर्याग्निं सममुपैष्यति व कृतान्त ॥^१

इस प्रकार कवि ने दुःख एवं सुख का सुन्दर समन्वय प्रदर्शित करते हुए यह बतलाया है कि दुःख के बाद सुख आता है । कुकर्मों का फल पारियों को मिल कर रहना है अतः विनितियों से सज्जनों को घबराना नहीं चाहिये ।

भरत वाक्य के बिना एकाएक इस रूपक की समाप्ति देख कविद्वय आलोचक इसे अपूर्ण वा आशिक कृति मानते हैं । भरतवाक्य का अभाव तो भ्राम की मौलिकता है, जो उनको अन्य रचनाओं-मध्यम व्यायोग और उल्लङ्घन में भी पाई जाती है । यह बात दूसरी है कि इनमें कुछ मञ्जुतकारी वाक्य भरत-वाक्य का काम दे देने हैं । दूतघटोत्कच में कृष्ण का परिचय सन्देश ही इसका भरतवाक्य है । केवल इसी बात के कारण दूतघटोत्कच को अपूर्ण कृति समझना युक्तिपूर्ण प्रतीत नहीं होना । इसमें घटोत्कच का दौत्यचित्रण करना कवि का ध्येय है, इस कार्य में कोई व्यवधान नहीं पड़ता । इस दृष्टि से यह रूपक पूर्ण सफल है ।

प्रायः भात के सब एकाकी महाभारत की किसी न किसी कथा पर आधारित हैं । वे या तो व्यायोग वर्ग के हैं अथवा उत्पटिकाङ्क के । मूर्त नाट्यसाहित्य के प्रायः प्रवर्तक महाकवि भ्राम की नाट्यकृतां एवं उनकी काव्य-गन विशेषताओं पर एक दृष्टि डालने का एक अवसर हमें व्यायोगों की चर्चा करने समय मिल चुका है । यहाँ भी हम इनके ही तीन उत्पटिकाङ्कों का मञ्जित किन्तु सूक्ष्म अध्ययन कर चुके हैं । तदनुसार नाट्यकला के सब नाटकीय तत्वों के दर्शन इनके एकाङ्की-साहित्य में होते हैं ।

इनके रूपनमुद्राय की कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । पुण्य, इतिहास, रामायण, महाभारत, आख्यायिका एवं लोक-कथाओं का उनमें भ्राम ने अनेक नाट्य-साहित्य में किया है । संस्कृत रूपक वाङ्मय में किसी

दूसरे रूपरकार ने इनके वृत्तों में सचरण नहीं किया है। इन ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधारों के साथ साथ कवि ने निजी कल्पनाओं की प्रपूर्वता का भी पर्याप्त प्रदर्शन किया है। प्रणिमा, उद्भव, मन्वन्-व्यासोऽ, दून-रात्रि, घटोत्सव वगैर आदि इसके पोषक हैं।

विस्तृत क्षेत्र में क्या-वस्तु के संग्रह करने के परिणामस्वरूप निसंगत पाना की सरया एवं इनके वर्गों में विविधता दृष्टिगत होती है, किन्तु अधिक पात्र होने पर भी वे सत्र मानव-जीव के जीने जागने प्राणों हैं चाहे वे देव-योनि के हो अथवा मरुत। दर्शक को यह कभी आभास न होगा कि ये काल्पनिक पात्र हैं या कृत्रिम अथवा धराय समारी। इन सत्रके चरित्राङ्कन में कवि ने सचित्र एवं समान उदात्त आदर्श बनाये रखता है।

मातृ के रूप में जिस काल में रचे गये थे उस समय तत्र नाट्यकला का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। इस कारण कुछ त्रुटियाँ भी इनके रूपों में पाई गई हैं। कहीं कहीं शब्दों का परिमेलन प्रयोग दुर्लभता उत्पन्न कर देता है। आकाशभाषिणों के प्रयोग से 'निष्क्रम्य प्रविश्य' जैसे द्रुत नाटकीय निर्देशों से तथा असूचित पात्रों की उदात्ति से दर्शकों के मन में कृत्रिमता का भाव अवश्य होता है। यथा 'कर्णमार' के प्रारम्भ होने ही कर्ण, शत्रु से धर्म के समीप से चलने को कहता है। फिर कुछ काल तक कर्ण द्वारा अपनी शत्रु शिखा की प्राणिक कथा तथा छल से प्राप्त शत्रु-विद्या की निरूपणा आदि घटनाओं को कह चुकने के उपरान्त अभी एवं भारवि रथारोहण करते हैं। ऐसा ही रङ्गमञ्चीय निर्देश हम नाटक में कम से कम तीन बार किया गया है।

अथ .. अत्यराज । यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यता मम रथः
यद् वाक्य इसी रूपक के पृष्ठ १५ एवं २६ में दोहराया गया है।

कण - अहो नु ललु -

अन्योन्यशस्त्र-विनिपात-निकृताश्व -

योधाश्च - वारसुरयेषु महाह्वेषु ।

कुडान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि

वैधुयमापानति चेतमि युद्धवाते ॥१॥

भो कटम् ।

पूर्व कुन्त्या समुत्पन्नो रामेय इति विश्रुत ।

युधिष्ठिरादयस्ते मे यवीयांसस्तु पाण्डवा ॥

अथ स काल क्रमसम्बन्धोभनो मुखप्रवर्षो दिव्योऽप्यमागन् ।

निरधमम्ब च मयाहि शिक्षित पुनश्च मातुवचनेन कारित ॥^१

यह नाटकीय निर्देश की एक ऐसी छूटि है जिससे ठीक पता ही नहीं चल पाता कि कण कब रथ पर चढ़ना है और कब उतरना है। इससे अनिश्चित प्ररिष्ट कालिय कात्यायनी देवी, कृष्ण तदा देवी के आयुधा का भास के नाट्य म मन्त्र पर प्रवृत्त होना एवं शाप का मानवीय रूप में आना भी कुछ आश्चर्य को अक्षर मक्ता है। इनकी सूचनामात्र देन से काम चल सकता था। इतना ही नहीं, दुर्योगन एवं अन्य पात्रों का वध सम्भवन कनिष्य भावुक समीक्षरों एवं दर्शकों को बुरा लग सकता है परन्तु उनके नाट्य में ऐसी हृदयशांति दर्शकों के बाहुल्य एवं धीनपुन्य को देख ऐसा लगता है कि प्रथितमस्तु कधि भास की दृष्टि में पापी, क्रूर एवं खलजना की मृत्यु को मन्त्र पर प्रदर्शित करना बुरा नहीं था, क्योंकि उससे सामानियों पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। उन्मृष्टिकाङ्क्ष के लक्षणों पर विचार करते हुए हम देख चुके हैं कि नाट्यश्रीभासका न भी दुष्टों के वध को दिखलाना हेतु नहीं बतलाया है। अतः इस छूटि के लिये भास को दोषी ठहराना न्यायममत नहीं। इन छूटिपूर्ण दृश्या में भी उदार-हृदय आलोचन आवश्यक परिवर्तना के उपरान्त इन महाकवि के रूपका को अभिनेय बना सकने हैं। भद्राम से प्रकाशित होने वाले “दी सम्कृत रत्न” नामक बाणिक पत्र को देखन से विदित होगा कि इन का अभिनय आज किया भी जाता है।

भास के नाट्य-चक्र में परिगणित रूपको की शैली की अपनी विशिष्ट महत्ता है। इनकी रचनाओं में भावाभिव्यञ्जनात्मकता एवं प्रभावोत्पादकता पर्याप्त है। इनके लघु-अनवार-विहीन वाक्या में भाद-शाम्भीय एवं सरमता आदि गुण पाये जाते हैं। इनकी भाषा में प्रमाद-गुण के प्राच्य दो देख कर विदित होता है कि सस्कृत इस काल में अवश्य ही लोप-नाश रही होगी - अन्यथा तब इनका प्रमाद नहीं हो सकता था।

भास अपने वर्ण्य विषयों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करते हैं। भासारिक बातों का कवि को सम्यक् ज्ञान था। वे मानव जीवन तथा प्रकृति में सूक्ष्मानुसूक्ष्म अन्त भी कुशलता पूर्वक उपस्थित करते हैं।

करिवरकरूपो दाणु — निम्बन्तदभौ
हनगवचदनोद्धो वैरवह्नि प्रदीप्तः ।
स्वजडितनविमान निहनादोच्चमन्त्र
पतित-पद्ममुद्य सन्धितो युद्धज ॥^१

गौर भी — द्वितीय — इदमपर पश्येता भवन्तीः एते—

गृध्रा मधूकमुकुलोन्नतः पिङ्गलाक्षा
दापेन्द्र — वृज्जगन्नाकुम्भीक्षुरतुण्डाः ।
भाग्यम्बरे विततसम्बविकीरणपक्षा
भाग्यं प्रवालरचिता इव नालवृन्ता ॥^२

इनकी कृतियों के दस खण्ड, मध्याह्न एव सारण्य के खण्ड आदि में महाकवि की निरुपमा लक्षित होनी है। उनकी शैली में प्रसाद, भोज और माधुर्य की “गुरागमी” सबन दिखाई पड़ती है। इनकी शैली का एक गुण मौन-भाषण भी है। आप शब्दों के द्वारा अतिशायिक भाव-व्यञ्जना के अतिरिक्त मौन आचरण में भी अर्थ-बोध कराया गया है। यह विशेषता सम्बर शब्दों के प्रयोग से भी अधिन प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है। एव रस तथा भावों की प्रतीति में सहस्रिका बनी है। अन्त इन्हें “मौन भाषा” कह कर भी बहुत से पण्डितों ने सम्मानित किया है। इनकी शैली का परवर्ती साहित्यकारों पर भी प्रभाव पड़ा है, फिर भी, भास की लेखन-शक्ति एवं भाव प्रकाशन शैली की अपनी उत्तम महत्ता है।

बहुत से लोगों ने भास पर बहु-विकार-समर्पण, आह्वानों की महत्ता का प्रतिपादन, वर्णाश्रमव्यवस्था का गुणगान आदि का दोषारोपण किया है। आदि नाटककार होने के कारण इन पर वैदिक संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। भास के युग पर विचार करते हुए इनकी कृतियों की अन्तर्लक्ष्यता करने पर कवि की दोषहीनता स्वयमेव प्रमाणित हो जाती है।

१- उदयङ्ग ६, पृ० १७

२- उदयङ्ग ११, पृ० २६

इसके अतिरिक्त कही कही भास ने समस्तपद-युक्त दीर्घ-वाक्यों का प्रयोग किया है। कुछ लोगों के अनुसार वह भी उनका एक दोष है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन्होंने वही ऐसी शैली अपनाई है जहाँ मुझ या उत्साह प्रदर्शन का प्रसंग होता है। इस दृष्टि से विचार करके इसे भी उनके गुणों में ही गिन सकते हैं। हाँ प्राधुनिक युग में इन्हे अभिनेय एवं लोकप्रिय बनाने के लिए मस्त्रानुरागी विद्वान् इसकी भाषा को आवश्यकानुसार सरल बनाने का यत्न कर सकते हैं और कर भी रहे हैं। पुरातन कृतियों को कतिपय कृतियों से युक्त होने के कारण त्याग्य समझ लेना उचित नहीं। इन दोनों से तो उनका महत्त्व और बड़ जाना है, जिस प्रकार आकाश में चन्द्रमा कलक-धारी कहला कर भी अपनी छुति छे हीन नहीं होता और रात्रि के अन्धकार को दूर कर उत्तरी शोभा में वृद्धि करता रहता है, उसी प्रकार भास भी संस्कृत नाट्य जगत के शरावर हैं, जिनकी ज्योति सदा विद्वज्जगत् कर शान्ति प्रदान करती रहेगी। रतना ही नहीं महाकवि भरवधोष और कालिदास ने भास किसी भी क्षेत्र में नम नहीं प्रणीत होने। भास के नाटकों में भावों और रचना-विधान की दृष्टि से पर्याप्त मीठव को देकर श्री मुनीलकुमार दे महाकवि भास को भरवधोष और कालिदास के बीच की कड़ी मानते हैं।^१

बीषी

व्यावहारिक भाषा में बीषी शब्द भाग्य या पति का पर्यायवाची होता है, किन्तु नाट्यशास्त्र^२ के अनुसार बीषी रूपक का एक भेद है। इसमें एक

- १- From the dramatic fragments of Asvaghosa it is not unreasonable to assume that between him and Kalidasa a period of cultivation of the dramatic art which we find fully developed in the dramas of Kalidasa has passed.

History of Sanskrit Literature (Vol. I Page 101) De and Das Gupta.

- २- बीषी स्थादेकाष्टा तदैकहासो द्विहासो ॥
 अथभोतमध्याविदुं त्वा स्थाप्रकृतिभिस्तिष्ठतिः
 उद्भास्यतावनदितावस्वन्दितास्वत्तु प्रवसत्तु ॥
 वासनेताय प्रपद्यो मुदुवाचिबने ह्यत्र त्रिपद्यम् ॥
 आहारो यन्त्रश्च त्रयोदशानुद्विगुल्यन्त्राः ॥

ना० डा० अन्वय १८, पृ० ११३

आ तथा भागवत् वविकल्पित नयानक होता है । एक या दो पात्र रहते हैं । उत्तम, मध्यम अथवा अधम बोटि का पुरुष इसका नायक होता है । सामान्यतः यह शृंगार रस की सूचक नाट्य-रचना होती है ।^१ किन्तु विषय-वस्तु के अनुसार उसमें अन्य रसों की भन्व भी मिलती है ।^२ इसमें केवल मुख और निवर्णन मधिया तथा पाँचों अक्ष-प्रकृतियाँ होती हैं । इस बीधी मजा देने का कारण यह प्रतीत होता है कि उसमें उद्घाटन में मार्व तत्र १३ बीध्य पङ्क्ति बद्ध होकर आता है । अन्य रसों का सम्बन्ध गुण्यन होने के कारण उत्तरी मृगना माला में भी की जा सकती है । नाट्यदृष्टिकोण से इसका लक्षण इस प्रकार वर्णन है— बहोनिर्माणेण समनाद् बीधीव बीधी ।^३ यह भाष्मी वृत्ति के अन्तर्गत म परिगणित बीधी में मिल जाती है । अरब मुनि के अनुसार इसमें बोटि भी सम्मिलित है । बीधी के सम्बन्ध में प्रायः सब आचार्य एक बात पर ध्यान देने हैं कि इसमें तेज दृश्यवाचा नियोजन अनिवार्य रूप में होना चाहिए । मागरीन्दी के कथनानुसार यह रूपक विशेष तीन पात्रों में मिलती जाती है ।^४

शास्त्रान्तर्गत के बीधी के लक्षण को देखने में जान होता है कि कोहलाचार्य के अनुसार इसमें तत्र तत्र आम्नागो वा होना आवश्यक नहीं है ।^५ रामचन्द्र गुणचन्द्र द्वारा नाट्यदृष्टि में उद्घृत काहल की पत्तियों पर ध्यान देने में यह मालूम होता है कि नाट्य बीधी के लिए अक्षमबोटि का नायक वाह्यतीय नहीं समझते ।^६ उनका द्वारा बीधी में होने नायक का बहिष्कार भागादि एकाङ्कियों से इनका

१- सूत्रवेदमुद्रितान्तर किञ्चिदभ्यासमात्र प्रति ।

मुच्यते इति तयोर्धर्मश्रुतवाच्यता ॥ सा० ६०

२- त्वं सूत्रानुसारं शुनेदपि रमानम् । दशमपत्र तृतीय प्रकाश-१८ ६६

३- सा च विमि वार्त्ति प्रवातया यथा मकुनबीधिका ।

उत्तमाधममध्यमनायकमुच्यते प्रकृतियुता बीधिविदुवाचैरथ ।

प्रकृतिभिर्बुक्ता सान्निध्ययुक्ता मुच्यते वृत्तान्तानामसंवाचकता अङ्गप्रवादका ।

उद्घाटनवादीनि बोध्यन्ताते त्वुच्यते ॥ उदाहरणम्—राजाय बीधी-मागरीन्दी (अलकोत से)

४- इत्तास्माद्बीधीषु त्वं सम्यग्दृष्टवान्निमि ॥

भवतुर्वा न वेत्यस्या सान्निध्यमाह कोहल । सा० प्र० अ० ११-विचार - पृ० २२१-

५- पदार्थ बीधे -

शास्त्रोक्तप्रथमप्रकृतनायकत्वमनिरुद्धं प्रहसनभाषादी हास्यरसप्रधाने विगर्हयन्त्र प्रतियोग्यं कल्पपादव स्यादिति ? द्वितीयादृष्ट-दृष्ट पृ० २४१

अन्तर बतलाने के लिए ही किया गया होगा, ऐसा आभास होता है। दो पात्रों की उक्ति प्रत्युक्तियां ये वैचित्र्य के योग से वीथी की बिपयवस्तु का विस्तार होता है। यह द्विपात्रीय कथोपकथन आवाश-भाषित पद्धति से एक ही पात्र के द्वारा सम्पन्न होता है। काव्यानुशासन में हेमचन्द्र भरत द्वारा प्रयुक्त एकहास और द्विहास (एक या द्विपात्रीय अभिनय) के प्रसंग में कहते हैं कि भाषा की तरह इसमें उक्ति प्रत्युक्ति के माध्यम से संवाद की गति बढ़नी चाहिए।

उपयुक्त आचार्यों के लक्षण-ग्रन्थों में वीथी के सौदाहरण लक्षणों का देख कर प्राचीन भारतीय नाट्यजगत में इस प्रकार के एकावियों के प्रचलन का अनुमान अवश्य होता है। परन्तु अन्य एकाकीरूपों की तुलना में वीथी रचनाओं की संख्या अत्यल्प है। अभी तक निम्नाविध वीथी रूपों के ही नाम ज्ञात हो सके हैं—१ माधवी २ इन्दुलेखा ३ सकुन्तलीयिका ४ राधा ५ लीलावती और ६ चन्द्रिका। इनमें से भी १८ वीं शताब्दी के दक्षिण भारत के प्रकाण्ड पण्डित रामपाणिवाद की लीलावती तथा चन्द्रिका—ये दो रचनाएँ ही उपलब्ध हो सकी हैं। श्री दे और दास गुप्ता^१ अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में भास-प्रणीत दूत-वाक्य की भ्रान्तशब्दों में वीथी भी मानते हैं। वस्तुतः दूत-वाक्य में वीथी का एक भी लक्षण घटित नहीं होता। अतः इसे स्पष्ट शब्दों में वीथी न कह कर व्यायोग कहना ही ठीक प्रतीत होता है।

श्री रामपाणिवाद का नामो लेख ग्रहसन रचना के प्रसंग में मदनकेतु ग्रहसन के लेखक के रूप में किया जा चुका है। यहाँ उनकी अन्य रचनाओं की समीक्षा के प्रसंग में कुछ विशद परिचय दिया जा रहा है—

रामपाणिवाद का परिचय.—

ये दक्षिण भारत के केरल दश वासी महाकवि रामपाणिवाद विष्णु के अनन्य भक्त थे। मत्तावार प्रान्त में पाणिवाद अथवा नन्दियार नामक एक

१- In the Duta Kavya a Scene from the Udyoga parva is depicted. It is either a vyayoga or a Vithu.

विशेष जाति है। इनका काम चावधार अभिनेताओं को वाद्यसंगीत द्वारा अभिनय में सहायता करना होता है। पाणिवाद जाति ने लोग भुरज बजाते थे। हमारे विवेच्य लेखक का सम्बन्ध उक्त पाणिवाद परिवार से ध्वन्य रहा होगा। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पिता से प्राप्त करने के पश्चात् नारायणभट्ट बाद नामक एक विद्वान से आगे भी अध्ययन किया। इनके गुरुदेव "नारामणीय" और "मानभयोदय" आदि के रचयिता नारायण भट्ट से सवया भिन्न व्यक्ति हैं। इन्होंने अपने गुरु का ग्रन्थों के अन्त में सादर स्मरण किया है। इनका जीवन कटु अनुभवों से भरा था, जिनका उन्होंने बड़े मनोविनोद पूर्ण ढंग से वर्णन किया है। इनकी चन्द्रिका (बीधा) से ज्ञात होता है कि ये वेदुनाडु के राजा वीरराज के दरबार में रहे।^१

रामपाणिवाद राजा वीरमानन्दवर्मन् के भी आश्रित कवि घन कर रहे थे। ये राजा आधुनिक चावनकोर के संस्थापक माने जाते हैं। इन्होंने १८ वीं सताब्दी में चम्पकेश्वरजी पर विजय प्राप्त की थी। समय समय पर आश्रयदाताओं के बदलते रहने पर भी रामपाणिवाद की माहिष्यसेवा के मार्ग में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आ सका। अन्तिम आश्रयदाता राजा वीरमानन्दवर्मन् की छत्रछाया में इन्होंने "सीता-राघवम्" नाटक लिखा। संस्कृत के अतिरिक्त मलयालम और प्राकृत भाषा में भी इनकी रचनाएँ मिलती हैं। "कस वही" तथा 'उसरणिरुद' लण्ड काव्य के रूप इनकी दो प्राकृत रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, जिन पर कवि राजशेखर की प्राकृत-रचना 'कर्पूरमञ्जरी' का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। संस्कृत में काव्य एवं नाट्य रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने वरुचि के 'प्राकृतप्रकाश' नामक ग्रन्थ पर टीका लिख कर प्राकृत-व्याकरण पर भी अपना पूरा अधिकार सिद्ध किया है।

इनके मदनकेतु चरित, जिनकी चर्चा ग्रहसनो के अध्याय में हो चुकी है ग्रहसन की प्रस्तावना तथा सीतावती के आमुख से जो सूत्रधार व नटी के वार्तालाप के रूप में प्रस्तुत है, इतना स्पष्ट हो जाता है कि ये दक्षिण के मङ्गल-ग्राम^२ के निवासी थे। इसी से यह भी पता चलता है कि इनके मामा का नाम

१- चन्द्रिका-पृष्ठ १

२- मूलग्रन्थ- भारवि । अग्निभूमीनि मयनवायवास्तव्येन राघवाभिवादेन विरचित मदनकेतुचरित नाम ग्रहसनमस्मद्वये वर्तत इति ।-मदनकेतुचरित

“राघवपाणिष” था ।^१ पाणिष भी वादक होते हैं । नांदीपाठ के अनन्तर सूत्रधार के वाक्यों में यह भी प्रमाणित होता है कि रामपाणिपाद विद्याविलासी राजा देवनागयग की सभा के माने हुए विद्वान् थे । राधाज्ञा में ही इन्होंने सीतावती बोधी का^२ अभिनय करवाया था । इसकी वृत्तिपद ग्रामुपस्थ पङ्क्तियों से बरि हा पाण्डित्य एवं अपने आश्रयदाता^३ के प्रति आदर भाव भी प्रकट होता है । उसका अभिनय काल पावम मान्य होता है ।^४

बोधी के लक्षणगुण विभिन्न मनो ही वर्णों प्रारम्भ में ही हो चुकी है । नाट्यकार रामपाणिपाद न स्वयं भी चन्द्रिका में इसके लक्षण किये हैं । तदनुसार यह भाण के समान शृंगार एवं रङ्गिकी वृत्ति प्रधान एकाङ्की होता है । इसी ‘सीतावती बोधी’ में ये सब लक्षण घटित होते हैं ।

सीतावती

‘सीतावती’ में बर्नाटक नरेश की एक मुन्दरी लम्बा सीतावती की कथा वर्णित है । किसी परपुरुष द्वारा अपहृत हो जाने की आशंका में राजा

१- शृंगारम् । अभित मगनदामशामन्य राघवपाणिषम् भाषितेषी रामो नाम पाणिपादः

सीतावती - पृ० २

२- मय दक्षमशस्तनेन रामपाणिपादेन विरचितपाण्डित्याय बोधीमपिनेतुमभित्याम ।

अत्रिग पृ० १

३- आतापितोर्मम निविनशास्त्र - पुराणवाटकप्रचयनतत्परिशीलन विज्ञानारामने निरपत्तितिरणम्बरपुनीनाथ - परिचरणशायकस्य महाराजदवारायणस्य पदपद्मोर-
जोविनाय महीगुप्तमात्रे । सीतावती पृ० १

४- त्रिय नृराजि कश्चनाम रमानारुहे स्वयं भारती
चित्ते यस्य अकामने नुरपुनीनाथो रथाद्वापुष ।

य भूमी बहुमन्त्रे नररतिः श्री देवनागयग ।

सोम मे हृदये अस्तु सनन भूदेव-बुद्धमणि । सीतावती २, पृ० ३

अदभुताभोजनपुष्ट्यविहारिणी ।

कविचोक्षाश्रिते । देवि । सरस्वति । नमोऽस्तुते । सीतावती ४, पृ० ३

४- ... अत्रि । तदवशिष्टानीं कान्तपरिहासेन ।

अमुपेव प्रादुक्षानपञ्चिहृत्य गोवतीं तापम् । अत्र हे सीतावती - पृ० ३.

उत्ते कुन्तलराज वीरपाल की रानी कलावती के सरसण में रख देता है किन्तु राजा वीरपाल उस बन्सा व नादण्य को दखकर काम-बिह्वल हो जाता है। पनत वीरपाल एव लीलावती के बीच प्रणयलीलाएँ होने लगती हैं। लीलावती के राजा के नाम भेजे गये प्रेम पत्र के रानी कलावती की परिचारिका केनिमाला के हाथ पड जान स कह रह-व रानी को मानूम हो जाता है। इन्हे इस प्रकार प्रेम में रन देव रानी के मन में नारीमुखम ईर्ष्या जाय उठनी है। इन्हीं समय बिदूषक मिद्धवती नामक योगिनी की सहायता से रानी को मांपन डेंसवा कर स्वयं ही उसे बचा भी लेता है। योग-बल के प्रभाव से उत्तम आकाशवाणी के अनुसार महारानी वीरपाल एव लीलावती के विवाह का प्रबन्ध करती है। और इन दोनों प्राणिपों का पाणिग्रहण सम्भार सम्पन्न होता है। सत्कार के पट्टेन राजनाथ मन्दिर की ओर जाती हुई लीलावती को ताग्रयज्ञम हार से जाता है। परिग्रामम्बरूप वीरपाल का उसमें युद्ध होता है। इस वीथी में लीलावती को कुन्तलराज वीरपाल की रानी के पाम न्यास के रूप में रखने का प्रमग भाम कवि के प्रतिज्ञा-योगन्धरायण और स्वप्नवामवदत्त नामक रूपकों की याद दिलाना है। रामनाथिदाद ने इसकी प्रेरणा यही में ले ली होगी। फिर यह छोटी-सी सरल-बधा कवि की लेखनी के चमत्कार से चमत्कृत हो उठी है।

रामपाणिदाद और भास

योगन्धरायण—मुक्तोद्भिन्न एव त्रिष्योद्भवावस्था । नात्र विन्ना कागा । कुन
पूव त्वयारमभिन्नत इतमेवमानीन्दुलाध्य गमित्यसि पुनविजयेनभर्तु ।
कालक्रमेण जगत परिवर्तमाना चकारपत्तिरिव गच्छति वाग्यनदित् ॥^१

+ + + + +

योगन्धरायण - (नारमस्तम्) हन् भो । अर्धमवसित भारत्य । यथा
मन्त्रिभि ममभित यथा परिणमति । तत प्रतिष्ठिते स्वा-
मिति तत्रभवतीगुपनयनो म इहात्रभवती मगधराजपुत्री
विश्वासम्मान भविष्यति । कुत -

पद्मावती नरपतेर्माँही भवित्री दृष्टाविपत्तिरय यं प्रथम प्रदिष्टा ।
तत्प्रत्ययान् कृतमिद नहि मिद्धवाक्यान्मुक्त्रम्य मच्छति विधि भूपरोक्षतानि ॥^२

१- स्वप्नवामवदत्त बङ्क १. ४

२- स्वप्नवासवदन बङ्क १-११

तुलना कीजिये --

वत्से वत्सावति ^१ सरोसूपदृष्टितात्वमद्यादितुण्डिकमिषण मयैव गुप्ता ।
तत्पारितामिकमतो वितथुत मे यनायमृद्धिमुपयाम्यति वीरपात ॥^२

इसके आमुख के पदचात् विष्वग्भक्त के रूप में वैहामिक नामक विदूषक एवं केलिमाना का सुन्दर चार्वात्राप इस रूपक में घटन वाली घटनाओं की सूचना देता है ।^३ मस्कृत नाट्य परम्परा को कवि ने यहाँ भी प्रयुक्त किया है । वस्तुतः प्रस्तुत रूपक में केवल वीरपात और वैहामिक नामक दो पात्र ही मंच पर प्रकट होते हैं । भाषा की तरह इसमें भी अथ पात्रों की बात आकाश नादित के रूप में हुई है । अपने परोक्ष में मगदश से मूर्च्छित हुए राजा को राजा द्वारा अकस्मात् देखे जाने के प्रसंग में मुख एवं निवर्तन नामक मण्डित्य का सम्यक् निर्वाह हुआ है ।

(पुनर्नपथ्ये)

हा हा हा स्म ।

मृत्कारभीषणमुख पवनाननोऽयं देवीमुपेत्य चरते रभसाददासीत् ।
एषा निपत्य भुवि विदग्धकेगपागा मूर्च्छामुपैति गनकैमुकुलीकृतामी ॥

सप-दशन की घटना इनके मदनकेतु नामक प्रहसन में भी घनी है ।^४ नीलावती कीर्षी में इनकी पुनरावृत्ति से कवि पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र^५ रूप की प्रियदर्शिना^६ तथा बोधायन कवि के भगवद्गुनीयम् प्रहसन^७ आदि पूर्ववर्ती नाट्यकारों की कृतियों का प्रभाव भासित होना है ।

१- वत्सावती ५१ पृ० २६

२- वृत्तविष्वक्नाम्ना वत्सावती निदग्धक ।

समिन्नापस्तु विष्वग्भक्त आदावन्दुम्य दर्जित ॥

३- म्यात् म तु वरार्णो नीष मध्यवर्णित । सा० २०

४- मदनकेतु कवि १८ पृ० ३८

५- मालविकाग्निमित्र चतुर्थ प्रक

६- प्रियदर्शिना, अक पृ० २३

७- भगवद्गुनीयम् (देखिये प्रस्तुत प्रबंध के द्वितीय अध्याय में प्रहसन की चर्चा पृ० ११४-११५)

(नेपथ्ये)

कष्ट कष्ट नेतिवान्तरदेये कुर्वाणासौ स्वेन पुष्पावचामम् ।
दिष्टादिष्टा दुष्टमपेण दष्टा दिष्टान्त च प्रापितानङ्गमेता ।

तुलना रोजिम-

राजा - मा कानरो भू । अविषोऽपि कदाचिद्दसो भवेत् ।

बिदूषक - कष्ट एव मादस्त सिममिमागन्नि मे अङ्गाद । (इति विषवेग रूपयति)

बिदूषक - भो प्रसन्नम् कह तुम भूयो विम बिट्टमि ए एसां बितादस्म वालो । विममाकृष्टु गई विमस्म ता दमेहि अपभणो बिजापहाव

इष्टसिद्धयय योगिकशक्तियों के प्रयोग के विषय में भी रामपाणिवाद बोधायन ऋषि से प्रभावित प्रतीत होत है । मदनवेनु में शिवदाम इस शक्ति का प्रयोग करने दिखाई देते हैं और लीलावती में किसी सिद्धमती योगिनी द्वारा अर्भाष्ट की पूर्ति करवाई गई है ।

शृंगार लीलावती जीवी का अङ्गीरस है । दशरूपककार के अनुसार 'स्पृशेदपरिमान्तरम्' के पुष्ट्यय अनुरलेखक ने शृंगार के साथ सिद्धिमती के योग बल की कल्पना करके इसमें अद्भुत रस को भी स्थान दिया है । यदि मर्यादशत के प्रसङ्ग से भयानक रस का संचार होता है तो बिदूषक की बातों से हार्मरस पृष्ठ पड़ता है ।^१ कर्ताव्य के तात्पर्यार्थ में वीरपाल का मुँह दमकों के हृदय में वीररस का संचार करता है—

(पुनर्नेपथ्य)

कगटि इडमत्सरेण मतसा जानति य प्रत्यह
मित्र तस्य वसो वलिङ्ग-भृपतेस्ताआद्य-नाभामुर ।
मायानमणि लम्पट प्रियमस्त्रीमात्रानुवात्रामसौ
कष्ट कथति कैशिके गतपृणो नीलावती लीलया ॥

(नेपथ्ये)

तिष्ठ तिष्ठ पापामुर । तिष्ठ ।

मुस्तिग्ने पेलवाली करज-विरचिते केनवासे कृशाटग्या-
स्तत्रोदय कराम सगदि निदधन कालहृडोपमानम् ।
कूरक्रेङ्कारतारे धनुषि कृतपदस्सायको मामकीन-
श्चक्षुस्ते कण्ठपीठी मृदुतरुदलीकाण्डलाव सुनातु ॥

विदूषक - दिट्ठिमा कुबिदो मे पिम्वअम्मो । किदु माप्राय वि कि
पवट्टेइ से पमावाणलो ।

(विष्ट्या कुपितो मे प्रियम्य । किन्तु मायायामपि कि प्रवर्ततेऽस्य
प्रतापानल ॥)^१

विदूषक के इन वाक्यों को पढ़ कर शाकुन्तल के पठ अङ्क में
शाकुन्तल के वियोग में शोकाकुल दुःखन्त के कोव को उद्दीप्त करने के प्रयत्न
में रत मातलि के वचनों का स्मरण हो आता है ।

मातलि -

विचिन्निमित्तादपि मन सनापाशयुष्मान्मया विक्रान्तो दृष्ट ।
पश्चात्कोपयितुमायुष्मन्त तथा कृतवानस्मि ।... ..

कवि ने इन रूपक में शृंगार रस के सर्वथा अनुकूल सरस एवं संगत
शैली अपनाई है जिसे शास्त्रीय भाषा में वैदर्भी रीति कह सकते हैं । इसमें
दीर्घसमस्त्रपदयुक्त वाक्यों के अभाव से भावाभिव्यक्ति भी स्पष्ट है । ऐसा
लगता है, जैसे भाषा कवि के वश में है ।

वर्षा ऋतु में प्रकृति का मनोहर चित्रण कवि की अलौकिक वर्णना-
शक्ति की परिचायक है । इसमें विरहविदग्ध प्रेमियों की मनोदशा का वर्णन
भी बड़ा मार्मिक है । भीषण गर्मी के बाद प्रथम वृष्टि की फुहारों से मस्त होकर
मयूर नर्तन करते हैं यथा-

गम्भीर नीरदमृदङ्गरनाभिराम
 नृत्ताङ्गनामधुरगीत - क्लामनायम् ।
 विद्युत्प्रदीपकनिते विपिनान्तरङ्गे
 नृत्तोन्मव विननुते ननु नीलकण्ठ ॥^१

मेघ स्त्री मृदङ्ग के गम्भीर नाद और नीलों के गुञ्जन एवं भीतुरों की झङ्कार स्त्री मयीनकला ने युक्त, जगन्ना के प्रसाद में प्रकाशित बन प्रात में नीलकण्ठ नत्तन करने का संसार है । यहाँ नीलकण्ठ का भार के ध्वनि में प्रमाण दृष्टा है । वर्षा ऋतु वहाँ हरे भरे पेड़ों, सताग्रों और नीलों की हृषीकेश कर दन वाली होती है, वहाँ विरहाकुल प्रेमियों की विरहाग्नि को दर्शित करने वाली भी होती है ।

विदूषक -.....(विमृश्य)

विरहदहणवैभ्रज्जभाणो
 कुमुमपरासणबाणदूधभाणो
 कट्टणु वि (र ? न) महज्ज मे वधस्सो
 विरहिविमुग्गभाउमावटेवम् ॥^२

(तन प्रविशति यथानिदिष्टो राजा)

वाणान् महर पववाण । मधुपज्यावत्तराभञ्जितान्
 मानस्या प्रमदन्त वदाममी दूयाभट्ट यद्वयम् ॥

कवि की प्रिया में महारवि कानिदाम की इतियों का छायानुकरण भी देखने में आता है ।

सूत्रधार — (महपंम्)

मुन्दरि । नत्र नीतिग्न्य हरति तथा मानमानि भाषाकनाम् ।
 प्राम्थानमणिस्तम्भयथा न तेषा निदा भानि ॥^३

१- नाट्यवर्ण ६, पृ ३

२- नाट्यवर्ण १६, पृ० ६

३- नाट्यवर्ण, पृ० ३

तुलना कीजिये—

मूरधार—

तवास्मि गोवरागेण हारिणा प्रमम ह्व ।

एष राजेव दुष्यन्त भारङ्गेणातिरहसा ॥^१

पादम चित्राण कानिदानकृन् मेघदूत मे चित्रित वर्पा-वर्णन से
मिनता जुगता ह ।

एव नूनरहेनहीदमन-याग्नीस्वाराकिरा

स्निग्धेन्दीवरनीलनीरदघटामम्पकंशीनोत्किरा ।

मन्दान्दोलि-रूहण वारतरुणी वेणीवलापस्रव

पौरुष्या मरुतो न कस्य रमसादुत्कण्ठयेयुमन ॥^२

तुलना कीजिये—

पाण्डुच्छागोऽयनकृतय कंतकै भूचिभिर्न ^३

वेणीभूतप्रननु — सलिलामावतीतस्य सिन्धुः ^४

वर्पाशालीन प्राकृतिव शोभा विरहिणी लीलावती को रुचिकर नहीं
प्रतीत होती । स्नान, भोजन एवं शयन और सखियों के साथ मनोहारी
प्रासादादि वृन्दा के प्रति उनकी उदासीनता इन पंक्तियों से प्रत्यक्ष है ।

न स्नाने न च भोजने न शयने घटे मनायादर

नादत्तं करणीयवस्तु घटनायत्तं सखीना वचः ।

पयङ्क विरहस्य पल्लवमयी शम्भा सदासेवते

क्षट गम्प्रनि वीरपाल विरहाल्लीलावती द्रुपते ॥^५

१- अविज्ञान साधुनार प्र०-१ पृ० २४

२- लीलावती-१८ पृ० १०

३- मेघदूत (पूर्वमघ) २३ पृ० १४

४- पूर्वमघ, २६ पृ० १८

५- लीलावती-११, पृ० ६

इस प्रकार भास कालिदासादि प्राचीन कवियों का अनुसरण करते हुए कविसम्प्रदाय में प्रसिद्ध “न विना विप्रलम्भेन शृंगारो पुष्टिमश्नुते” इस उक्ति की साधकता सिद्ध करते हुए कवि ने वरुण विप्रलम्भ शृंगार का भी हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

इसके अतिरिक्त इसके मवादों में कहीं-कहीं बहुत प्रभावोत्पादक पक्तियाँ मिलती हैं जो लोक-व्यवहार में शिक्षाप्रद सूक्तियों के रूप में ग्राह्य हैं-

(क) को मिल्पिमज्जण भएण मुत्तावनि उज्झदि (न गुक्तिभजनभयेन मुक्ता-वलीमुज्जति ।)

(ख) को दुग्धस्नानसमये आरनात् चिन्तयति ।

(ग) कुत पङ्कजिनीं विना राजहमस्य निवृत्ति ।

(घ) आमन्त्रित को मिष्टभोजन परित्यजति ।

एकाकी नाट्य साहित्य में बीधी रूपक को अधिनाधिक प्रेरणा देने की इच्छा से रामपालिवाद में चन्द्रिका नामक बीधी की रचना की जिसमें बीधीरूपक रचना के लक्षणों का निर्धारण भी वे स्वयं करते हैं।^१ इसमें मणिरथ नामक किसी विद्याधर की कन्या चन्द्रिका और भङ्गराजचन्द्रसेन की प्रेम कथा वर्णित है। इस रूपक में राजा और विदूषक के पानद्वय ही मंच पर आदि से अन्त तक रहते हैं, अन्य पात्रों के बीच वार्तालाप आकाश-भाषित^२ द्वारा हुए हैं। नागदीपाठ के अनन्तर प्रस्तावना में मूत्रघार के एकाकी अभिनय^३ को प्रदर्शित कर कवि ने भाषा से इसका निकट

१- पञ्चद्वयप्रयोग्या भाषजकेकाङ्किका द्विसंघिष्व
आकाशभाषित्वनी वृत्तिमनिनिवृत्तभाषितावीधी । चन्द्रिका पृ० २.

२- (आकाशे)

मणिरथस्य सखा मणिशेखरो,
ननु मणाम्महमङ्गमहीपते ।
विदमबाण विभीक्ष्णतो रिपु,
सिंखु वाणपथावतिवर्तने ॥ चन्द्रिका-पृ० १०

३- (मूत्रघारे तत्र प्रविशति सूत्रधारः)

मूत्रघार - (परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलीक्ष्य) ।
मारिष ! इतस्तावत् । किं कवीपि प्रयोजनन्तावदा-कक्षयिनुमिच्छामीति । तद्विपुलदा-
मदधनु प्रकाशराज्य-प्रकाशमृतस्य प्रणय-विवेक-विद्याविशेष शालिन श्री शेरराज-
महाराजस्य आज्ञया श्रुताप्रकीर्तितकीनाक्षस्य भगवन् श्री परमेश्वरस्य कृपण-चतुर्दशी-
यहोत्सव-प्रसङ्गेन सङ्कतायामभ्याग्नाह्वयान् परीक्षीते ।
किं कवीपि...

हन्त श्री मारिष ! त्वमाहादमात्वापितमर्चं प्रतापमिष्यामि
विघ्नेश्वरप्रशङ्गात् सङ्गनुषङ्गप्रसेन इव । चन्द्रिका-पृ० १-२

सम्बन्ध दिखलाने का यत्न किया है और भरत मुनि द्वारा निर्दिष्ट एकद्वयं और द्विद्वयं अभिनय का इस चौथी-विशेष में एक साथ निर्वाह किया है। तदुपरान्त मधुरभोजनप्रिय विदूषक माण्डव्य एवं किसी कल्पित प्रेमिका के विरह में उन्मत्तराजाचन्द्रसेन मंच पर प्रविष्ट होते हैं।

(तत्तः प्रविशन्ति राजा विदूषकश्च)

राजा— (मानुस्मरणं निश्चयम्)

नद्वक् शरदिन्दुमुन्दरतर नीलाब्जपत्रायते

ने नेत्रं कुरुविन्दकन्दनञ्चा कम्पस्म विम्बाधर ।

स्तोकोद्भितसुवर्णपद्मभुङ्क्तुप्रमृद्धिनौ तौ स्तनौ

स्थूला सा जघनस्थनी च किमिनो रम्य पदार्थान्निरम् ॥

विदूषक— (स्वगतम्) ग्रहो नु धुं एसा यदिगम्भीर

सहावो वि अत्तभव अजसुजाद ग्रादो आरहिम्न

अणारिसो विम्वभीसइ । जधोप आ अररिक्कितोवि

असु धरणवि स उव कतो । होदु । पुंछि सदाव ।

— — —

राजा— वयस्य माण्डव्य—

कामप्यहं कमलपत्रविशालनेत्रा,

नेत्रानिराम-रमणीयं मुञ्चेन्दुविम्बाम् ।

विम्बाधरामधिरतात्सरसाङ्गलक्ष्म्या

सदृश्यात्मनाभिरिव लक्षितवान्कुमारीम् ॥

किसी गगनचारिणी शक्ति द्वारा निपातित मुद्रिका और प्रणयपत्रिका को देख कर राजा का प्रेमोन्माद बढ़ता ही जाता है।

विदूषक—ओ सा छु कुमारी कीरणासहे कि कुल सस्ररा कि ।

मादुपिदु आरुहि चारि कि सिदति कि जाणादि अत्तभव ।

राजा—सधे । नैतदहं जानामि । किन्त्वन्तराति क्रान्तायामेव

रजन्यामेवमवतोक्तिरित्येतावदवमच्छामि ।

— — —

(नेपथ्ये)

वृन्ने.....कमपि मणिरथो नाम विद्यावरम्भम् ।
 मत्पुत्री त्वदगुणोर्वरपटनहृदया चन्द्रिका नाम कन्या
 त्वत्पत्नी वन्धिनेऽप्य मनुवर मया तामनुप्रेषितेति ॥

मपिच-निशि दर्शित किमनिज वपुस्मया भवनप्रसूतश्च निजमङ्गुलीयकम् । पुरतश्च-
 ने म्वमदनानिबोधिका परिपानिता रिल विनात्मपत्रिका ।^१

इसी प्रसंग में किन्हीं राज्ञम द्वारा 'चन्द्रिका' के अपहृत होने की बात को सुनकर
 नायक ने हृदय में दीप्तरम का उद्रेक भी होता है ।

राजा- कोऽन भो ? धनुस्माद्य ।

राजा- धनुरादाय शर मन्थने

इस प्रकार यहाँ भी कवि ने धनञ्जय के अनुसार 'मृतेदरनान्तरम्' का निर्वाह
 किया है । मङ्गुलीयक का देखकर राजा के मुख में निक्के उद्गारों को पढ़
 'हर अभिमान शाकुन्तल के छोटे मङ्ग' में इसी प्रमद में मिलने-जुलने अवसर
 पर राजा दुष्यन्त द्वारा विभे गये प्रलाप का स्मरण हो आता है ।

राजा- (समाश्रयत्वाङ्गुलीयकं प्रति ।)

मत्पाणौ मणिमुद्रिके ननु धनुर्ग्राह्येष्टिभिर्नितपटुरे
 सप्ततामि शिरीषकोमलतमान्नस्या विहायाङ्गुलिम् ।
 आस्तामेतदित पर पुनरपि स्वैर ममेप्यामि ता-
 मित्यासापि तवाद्य हन्त विधिना वामेन मोरीकृता ॥^२

कुलना कीर्ति-ए-

राजा- (मङ्गुलीयक विलोक्य) मुद्रिके

कथं नु त वन्धुरकोमलाङ्गुलि
 वर विहायासि निमग्नमम्भमि ?
 अचेतन नाम गुणं नै लक्षये-
 न्नपैव तस्मादवसीरिष्य प्रिया ॥^३

१- चन्द्रिका पृ० ६

२- चन्द्रिका पृ० १०

३- अङ्गुलीयक- ६८ ६-१० पृ० २२४ (एव० पार० काठे द्वारा संपादित)

'चन्द्रिका' के नान्दीश्वरों मे मेघदूत का भावानुहरण भी उपलब्ध होता है।

चूषानन्दो नरोत्तमि यामेवानुहरन्निव ।

मा व सन्ध्यामुने यम्भोम्बायना ताण्डवत्रिया ॥^१

मुनना कीजिए—

नृत्तारम्भ इव यमुनेराशनागाजिनेच्छा,

मानोद्ग्रेह स्तिमित-नयन दृष्टभक्तिमवान्या ॥^२

इसका अर्थ भी चन्द्रिका गद चन्द्रमेव व इतिहासकार के दाद सुन्दर सन्ध्या के वर्णन के साथ होता है जो वरि के नृत्तम शाङ्गिक निरीक्षण का परिचायक है। इन पङ्क्तियों में ताण्डवम्भ का अन्तर्गुण्डन अपने चम्प्या-वधू की विलासक छवि अङ्कित है—

(समन्तादवलोक्य) मधे । परिणतद्वयान्दिकम् ।

तथाहि

याताभ्रावमरीचिपावकमुने आराति-वाताञ्जलि-

यश्चैव प्रविरीयते गृतरमावन्पून-रागोदया ।

रक्तामोद पटावकुण्ठनवती सप्राप्य सन्ध्यावधू

ध्वैर यत्र च वामर वरणे कालोऽयमावलोक्यताम् ॥

भाषों की कोटि के रूपव होन पर भी वरि की इन वीथियों में शृङ्गार का चित्रण घटनीलता-दोष से मुक्त है।

इस प्रकार इन दो वीथियों को वीथी का अन्तर्दृष्टान्त माना जा सकता है। यद्यपि ये रचनाएँ १८ वी शताब्दी की हैं तथापि कावे ने इनमें नाट्यमाळगत मिडाली का प्रायः पावन किया है। लक्षणग्रन्थों में प्राप्त वीथियों के बहिष्य दीर्घनों तथा प्रकट रूप से उक्त वीथीद्वय के अनुशीलन में इतना स्पष्ट हो जाता है कि मस्कृत वीथी-साहित्य की वीथी एवम्भ निबन्ध नहीं है।

१- अङ्कित/१०१

२- पूर्वपद, १८, वृ० ११

षष्ठम अध्याय

संस्कृत साहित्य में एकाङ्की उपरूपक

उपरूपक

रूपकों के समान उपरूपकों में भी कई भेद ऐसे हैं जो एकाङ्कियों की कोटि में रखे जा सकते हैं। अस्तुषष्ठ अध्याय में हम एकाङ्की उपरूपकों की चर्चा करेंगे। इस विषय को प्रारम्भ करने में पूर्व उपरूपकों के इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

संस्कृत-साहित्य शास्त्र में दृश्य-काव्य के रूपक और उपरूपक ये दो भेद किये गये हैं। नाट्य पर आधारित प्रेक्ष्य-काव्य रूपक तथा नृत्य पर आधारित अभिनय प्रधान काव्य उपरूपक कहलाते हैं। नाट्यशास्त्र, दशरूपक, प्रताप-रुद्रीय (लगभग १४०० ई०) रसार्णव-मुद्रारंजक (लगभग १४०० ई०) आदि नाट्य-साक्ष्य-ग्रन्थों में नृत्य प्रधान रूपकों के स्पष्ट उल्लेखों से भासित होता है कि पहले इन्हें साहित्य में स्थान प्राप्त नहीं था। धनञ्जय द्वारा रूपलक्षण-शास्त्र का 'दशरूपक' नामकरण भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। दशरूपकार ने कुछ उपरूपकों का उल्लेख अवश्य किया है, परन्तु उनका सोदाहरण विवेचन करने की उन्होंने विशेष आवश्यकता नहीं समझी। यद्यपि दशरूपकों के प्रतिरिक्त सबह अन्य अभिनेय-काव्य-भेदों के नाम

१- डीम्मा धीमन्त्रि बागो बाणा-प्रस्थान-रामायः।

काव्य च सप्त नृत्यस्य मेवा स्मृतेऽपि भाषवत्।

दशरूपक-प० २ (धनिवृद्ध बयलोक)

दूसरे कुछ एक नाट्यमीमांसक उपरूपन की परितृप्तता, रूपन के प्रवृत्तन के बाद ही मानते हैं। त्रिम प्रकार दशरूपन के प्रसंगमें से पहले भी नाट्यशास्त्रविद् रूपन का प्रयोग करते हैं, परन्तु रूपन की दक्षविधाओं को रूपन नाम से अभिहित करने का श्रेय दसवीं शताब्दी के धनञ्जय को ही दिया जाता है। उसी प्रकार उपरूपन के निश्चित नामकरण का गौरव प्राप्त करने के अधिकारी साहित्यदण्डकार विद्वनायक ही हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इन्होंने पूर्व के प्राचाओं में हमचन्द्र ने इन नृत्य भेदों को गेय रूपन और नाट्यदण्डकार रामचन्द्र ने 'धन्यानि रूपकाणि' कह कर सरोपित किया है। अभिनय-सुप्त^१ द्वारा एक स्थान पर इस प्रकार के प्रेमप्रकाशों की कृतारम्भ कहने से भी यही व्यञ्जित होता है कि नृत्य पर प्रथमत्व होने के कारण त्रिम प्रवृत्त रूपनो में नाटकीय तत्त्वों का प्रभाव था। उन्हीं रूपन के वन में स्थान देने में साहित्यविदों को मरोच होता था। इन प्रकार उपरूपनो के उद्भवका का निर्धारण भी मन्दन साहित्य की कठोरतम समझाओं में से एक है। प्राचार-ग्रन्थों का प्रभाव भी इसका एक कारण है। परन्तु उक्तुं के शास्त्रीय विवेचन में इनका तो स्पष्ट है कि गौण रूपनो के बाव भी भाग्य में बहुत पहले में विद्यमान थे, जिन्हें दिव्यम् जगमागम्य में प्रचलित नृत्य नाटको के आधार पर हुआ। इसका उल्लेख नाट्य शास्त्रकार भक्त ने भी नहीं किया, परन्तु धारदारमय, रामचन्द्र तथा प्राचाय विद्वनायक जैसे उत्तरवर्ती नाट्य-संश्लेषज्ञानों ने अपने साहित्य-शास्त्रविषयक ग्रन्थों में किया है। चौदहवीं शताब्दी के प्रान्त प्रकाश पद्महर्षी शताब्दी ने प्रारम्भ तब से प्रवृत्त रूपन नृत्य का प्रथमत्व देने के कारण उपरूपनो के निष्पत्ति पहुँचने लग और साहित्यदण्ड का निर्माण काल तब प्रेक्षणीय एक रोचक वस्तु बन गये। इस समय तब उनका प्रयोग प्रचार हो चुका था। केवल सामान्यता के लक्षण-ग्रन्थों में ही नहीं अपितु साहित्यिक-कृतियों में भी उपरूपनो द्वारा जनता के मनोरञ्जन किए जाने के उल्लेख उपलब्ध होते हैं।

१- अन्वर्षा प्रेरणशालाकोट शरणशुद्धीसहायिन्प्रवृत्तवेविषयज्ञानिदेव श्रियं चैरिन्द्रियम् ।

सुक्त विवरण - (एने प्रवृत्त नृत्तान्तरा न नाट्यात्मिकाप्रतिविम्बणम् ।)

गा० भा० भाग १ भा० प्री० सी० सङ्कलन-चतुर्थे अध्याय पृष्ठ १८१

यथा—

दामक—माता । यद्य दाव चिट्ठु । अज्ज मट्ठि दामोदना एवमस्मि कुन्दावरो
गोपकण्ठाहं पट्ट हल्लीय सायि पक्कीनिनु आशयच्छदि । (मातुल । सर्वं
तिष्ठतु अथ मनु दामोदरोऽस्मिन् कुन्दावने गोपकन्यकामि सह हल्लीमक
प्रकीर्त्तिनुनामच्छति ।)

दामक—कामु भद्र । यत्र पण्डिता आसदा ।
(आमु रत । सर्वं मन्त्रदा आगता ।)

दामोदर—घात मुन्दा । इनमाने चन्द्रगव मृगारि । पोषवामय्यानुपोष्य
हल्लीमक—मन्त्रजन्त उपयुज्यताम् ।

दामोदर—प्रश्नका भवान् ननु ।^१

वदन्तिनूनाक्षलात्रनीत्कारनत्यमाननृत्तमिदं न—पुरषालमाविनुमुजिष्टाः
रामक मण्डनै मगमाप इर अपामगिरिखणै मण्डकय इव चम्बन-मनादि-
कामि, मन्त्रव इव प्रविष्टादकं मन्त्राह इव प्रमादार्त्तबन्धनामाद ।^२

इन उद्धरणों में भाम वाणभट्टादि न हल्लीमक, नमर ७ में नृत्तपो
का जो हृदयशायी करान किया है उसने भी प्रमाणित होता है कि लोकनृत्य-
प्रदान उपरूपक केवल माहित्य मात्रो में ही नगन करने वाला वस्तु नहीं थी
प्रयुक्त बान्धविक नगन के दैनिककार्यों में व्यस्त होने से कारण आनन्दजनमनु-
दायक प्रकाश के मनोमग्न नृत्यों एवं उन नाटका द्वारा यशस्वी चित्रावर्जन
करता था । समय-समय पर विवाह तथा पुत्र जन्म आदि भावविक उत्सवों
के अवसर पर भी ऐसे आरोग्य विजय जाले थे । अतः प्राचीन भारत में उप-
रूपको के सम्बन्ध को समीक्षा नहीं किया जा सकता ।

रूपको का माननिक प्रक्रिया न सम्बन्ध है और उपरूपको का सम्बन्ध
सांस्कृतिक क्रिया में है । उच्चतर की दुनिया में गोमातृदि के विषये इनका उप-
योग होता है अतः ही उनके द्वारा भाव प्रदान भी हो जाय ।

१- वाचस्पति (गणपति जलद्वारा सम्पादित) — पृ० ४९.

२- हर्षचरित (बी० सी० पात्रे द्वारा सम्पादित) पृ० ७

एकान्वी उपरूपक—

यही हम एकान्वी उपरूपकको ही चर्चा करेंगे ।

गाड़ी की चर्चा अभिनवमुक्ताचार्य ने नहीं की है परन्तु "शृंगार प्रकाश" के एक ठोठ श्लोक में उस एकान्वी पर जो विचार किया गया है, उससे स्पष्ट परि-
लक्षित होता है कि जनरूप कंठमद्विद् (शामादर) की विवेचन, यमनार्जुन-
भोधा, पिप्पामुरप्रपादि की वगैरें ही इसका प्रमुख विषय बनती हैं । साथ ही
इसमें गाना-नया की सामूहिक खानखोलाएँ भी प्रवेशित की जाती हैं । घन-
गोष्ठी शब्द का मन्त्र-व गान समुदाय वाची 'गोष्ठ' शब्द से व्यपश्य होना चाहिये ।
भोजराज के पदचातुर्वर्ती नाट्यमीमांसक तारदातनय के भावप्रकाश में भोज-
कृत शृंगार-प्रकाश द्वारा वर्णित लक्षणों का अनुहरण प्रत्यक्ष देखने को मिलता
है ।^१ नाट्यदण्ड^२ में भी शृङ्गार-प्रकाश कृत गोष्ठी की परिभाषा प्रति-
विम्बित है । विश्वनाथ के साहित्य दण्ड में भी गोष्ठी नामक उपरूपक इसी
रूप में दिखाई देता है । विभिन्न नाट्यशास्त्र-वेदिकों द्वारा की गई परिभा-
षाओं का समाहार संक्षेप में इस प्रकार किया जा सकता है । यथा—

गाड़ी में पाँच या छे मुन्दर स्त्रियाँ (नायिकाएँ) होती हैं, और नौ या दस
गँवार पुरुष पान (अविदग्गप्राज्ञजन) । उदात्त नायक नहीं होता, हाँ वह ललित
नायक हाँ बनता है ।^३ गम्भीर और अवमश स्त्रियों का इसमें सर्वथा प्रभाव
रहता है । उदात्त बचनों की योजना तो इसमें नहीं होती परन्तु कैमिकी वृत्ति प्रयुक्त
होती है । ललितशृङ्गार की इसमें प्रधानता होती है । इसमें युद्ध, सपथ आदि के
दृश्य नहीं दिखाए जाते । साहित्यदण्ड में "चित्तमदनिका" का नाम इसके उदा-

१— भा. प्रकाश भावमयिकार—पृ० २४६.

२— गाण्डे यत् विहरतग्विष्टमिह कंठमद्विद्वत् लिखत् ।

पिप्पामुरप्रपादप्रकृत लक्ष्मिचरित गोष्ठीति ॥ ना० ६०, भा० २० पृ० २१४

३— प्राज्ञैर्नैवमि पुषिर्नैवमिष्यतकृता ।

नौदातवचना गोष्ठी कैमिकी वृत्तिनामिनी ॥

हीना यममिमर्शम्या वन्दपउयोविदविता ।

कामशृङ्गार मयुता ह्यदेकाङ्क—विनिमिता । यथा चैतमदनिका

हरणस्वरूप लिया गया है और गुमस्वर^१ न सत्यनामा नामक तोरु का उल्लेख किया है। यह एक प्रकार का नृत्त रूपक है।

अभिनव भारतीय म कनिषथ आचार्यों के उद्धृत ग्रंथों में नृत्त रूपकवर्णन परब श्लोकास भी ध्वनित होना है कि इन रूपका में नृत्त ध्वनि आदि अविबकी पशुधा का चरित्राङ्कन होना था। ॥ ॥ रात्रिभूत न मानत्र नृत्त प्रकाश पर विवेकनाम्नक वृद्धवृत्त म विभिन्न (दशावतार) रूप म प्रप्रनाण विष्णु भगवान् म उनका चरित्राङ्कन का प्रगम किया है। ममम नाम्नीय नाटयशास्त्र और उसमें कथित नाण्डक एवं नाम्नीय नृत्त पहल सब मप्रदायगत विचारों में प्रभावित था। बाद में नाटयशास्त्र में वृत्ति के रचयिता के रूप में हमें विष्णु के दर्शन होते हैं। फलतः, गोष्ठी रासक नाटय रासक हल्लीसक आदि नृत्त प्रधान अभिनयों में जो प्रायः एक टनरे में मम्य रत्न हैं वृत्त ने नायक तथा राधा न और गायिका ने नायिकाया का ध्यान रहण कर लिया। संस्कृत के साहित्यशास्त्रीय तथा साहित्यिक ग्रन्थों के मम अध्ययन में इसकी पुष्टि हो जाती है।

साहित्यदर्पण में संवर्तित रूपक तथा उपरूपक के भेदोपभेदों में क्रम-सत्या के अनुसार गोष्ठी व अनन्तर (एकाङ्की उपरूपकों में) नागरामक^२ का नाम आता है। इसका नायक उदात्त और उपनायक पाठमक जाता है। इसमें हास्य रस का प्रधानता रहती है। साथ ही शृङ्गार का भी समावेश रहता है। नायिका वाक्चमरजा होती है। इसमें मम्य और निवर्ण मप्रिया तथा नाम्नीय के दम अङ्गा की योजना होती है। इस प्रकार मम नायकानों की प्रमुखता

१- एकाङ्की विभिन्न गायिका कविता वृत्तिसंयता।

समागच्छन् पञ्च सप्तमिषोऽपन्थिना ॥

प्रावृत्तवर्गमपि विद्वत्संन्यासकडृष्टता।

गमविमममप्रिया होना प्रावृत्तममला ॥

वाचरविद्वत्तवर्गविकर्ण। यथा-मममामा। शृङ्गार (अनन्तर में रहत)

२- नाटयरासकमहाङ्क बहूनात्तवस्थिति।

सत्तसपिडमवनी। यथा नमवनी।

सपि चतुष्टयकता। यथा विनमवनी। सा० २० ६, पृ० २६५ ६६

३- वसतलमये यत्र देशा हितालयीतिभि।

मत्रहीमिर्दृष्टवस्थुपमयैरभिनायते ॥

मन्तायलामक प्रोक्त देशीनृत्तविचारदे।

वेद (भारत लोग में)

रहती है तथा उसका विषय प्रेम होता है। जोई-जोई इसमें प्रतिभुक्त मन्त्रि को छोड़कर भेष मन्त्रिबन्धुष्टय का होना मानते हैं। परन्तु दो मन्त्रियों के नाट्य-रामर का नाम भी भाटित्यदर्पण में मिलता है। यथा-चार मन्त्रियुक्त नाट्य-रामर का नाम है विनामवती और दो मन्त्रियोंवाले उस वर्ग के उपरम्भ का भीर्षक है, नमवती।

नाट्यरामर पद में मिलता जुलता रामर^१ अथवा रामरनामक एक और एकाकी उपरम्भ का बखान नाट्य भास्-विषय ग्रन्थों में प्राप्त होता है, जिसमें हास्य पक्ष चरित्ररत्न की प्रशंसा होती है। रामर में नाट्यर की अष्टि चतुर तथा नायर का मृग के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इसमें कुल पाँच पान होते हैं।

यदि एव नीतिन सम्भृत में पुरातन कृतियों में राम अथवा रामर शब्द के प्राप्ति न होने के कारण बहुत में मनीषी राजस्थानी तथा अन्य देशी भाषाओं में रामो एवं रामर शब्दों के प्रत्यक्ष प्रयोग को देखा कर रामर पद को प्राचीनतम आध्यात्म सम्भृत से आया^२ न मानकर हिन्दी देशी भाषा से निजला हुआ मानने हैं—

‘राम शब्द सम्भृत भाषा का नहीं है, प्रस्युत देशी भाषा का है जो सम्भृत बन गया और देशी नाट्यरों को जो राम के नाम में ही प्रसिद्ध थी, सम्भृत आया म उद्भूत कर दिया है। राम के देशीय होने का अनुमान इस ध्यान से भी होता है कि रामो और रामर नाम में राजस्थानी में हमेशा प्रयोग भी मिलता है और ७० राम जिसका सम्बन्ध ग्वालों में प्रचलित देशी नाट्य में ही रहता है सम्भृत नाट्य में अपर्युक्त^३ नहीं माना जा सकता।”

१- रामर पञ्चपात्र दशमृत्तिवर्णावतम् ।

भाषा विमर्शानुषिष्ट दशमृत्ति-कौमुदीवृत्तम् ॥

अष्टविंशतमकाण्ड मन्त्राष्टकप्रवृत्तिवर्णनम् ॥

विजयनाथीयुन स्वयन्नायिक मूत्रनायकम् ॥ यथा-भेनकान्तिम् ॥

सं० सं० ६१० १६३

२- हिन्दी नाट्य दर्शन और विज्ञान सं० दशम पात्रा-मूत्र ७६

३- (क) रम् नाम्नादन-स्तवका । अद्वान वायुवी ७-३-३२,

(ग) नम् मेषपत्रीजननी वि० की० (गणितीय छात्र पाठ) ३-१-३८

वैदिक तथा लौकिक

ठीक है कि वैदिक तथा लौकिक साहित्य में “रासक” वा अनिप्राचीन प्रयोग अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं परन्तु यह कहना कि राम एवं रामक पद में निहित हर्षोल्लास के भावा के स्रोतक पद संस्कृत-साहित्य के भण्डार में वे ही नहीं जिनमें भारतीय देशों आपाप्रो को यह प्रेरणा मिल सकना, न्याय्य नहीं है। राम श्री रामक शब्द स्वयं इसके प्रमाण हैं।

धातुपाठ

प्राणिनीय धातु पाठ में एक चुरादिगणोप रस् धातु आस्वादन के अर्थ में और एव स्वादिगणोप लभ आसिगन् तथा जीडन के अर्थ में मिलनी है। विभिन्न अभिधान वांग् में शब्द करने के अर्थ में प्रयुक्त वैदिक रस धातु भी बतलाइ गई है। उससे रमना (राना) शब्द बनता है जिसका अर्थ है करघनी। किङ्किगिया का भी रमना बहुत है। इन धातुका के भाव का रास और रामक शब्द में भर दिया गया है।

मिथ्यान्त कौमुदी

मिथ्यान्त-कौमुदी में निर्दिष्ट उक्त रस (आस्वादानापक) तथा लस् धातु के मेल में ही ‘राम’ शब्द बना जाना चाहिये। “रत्नपोरभेद” नियम के अनुसार ‘र’ का ‘ल’ में परिणत हो जाना कोई कठिन बात नहीं है। प्राणिमात्र के हृदय में स्थित आनन्दोल्लास की भावना को मूल रूप में प्रकट करने वाली नाचने-गाने की क्रिया प्रत्येक जीव में समान रूप में व्याप्त रहती है। आनन्द में लोग नाच-नाच कर मा उठते हैं। अतः रासक अथवा राम शब्द की रचना के द्विपक्ष में आ आपत्ति उत्पन्न उठाई गई है उसमें कोई तथ्य नहीं है।

नाट्य-रासक और रासक के वर्णों पर एक सूक्ष्म दृष्टिपान करने पर भासित होता है कि इनका सम्बन्ध “रास” नृत्य से रहा होगा। विभिन्न मनी-पियो ने रास शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार से की है। एक मन के अनुसार राम पद रम का बहुत्व वाचक है-‘रमाना समूहो राम’ तथा रमो वै रम’। मिथ्यान्तवादियों के अनुसार रस का नामान्तर है ‘ब्रह्म’। महाराज में एक ही कृष्ण अनेकों कृष्णों के रूप में दिखनादे जात है। ब्रह्मा तो एक ही है ऐसी शब्दा का समाधान भागवत में कथित “नामा मध्ये द्वयोद्वयोरिति” वाक्य के अनुसार प्रत्येक गोपिका के साथ एक कृष्ण ब्रह्म रास नृत्य करते दिखते हैं। अतएव इस नृत्य प्रधान उपरूपक का नामकरण हुआ रासक।

द्वितीय मत के अनुसार "रस उत्पद्यते यस्मान् रसः रामः" यर्थात् जिसमें रस उत्पन्न हो वह रस कहलाता है। रससंगीता में नृत्य एवं संगीत द्वारा रस की सरिता बहाई जाती है। इसीलिये इस भाव-प्रधान नाट्य संगीत को राम कहते हैं। तृतीय मतावलम्बियों के कथनानुसार जिसमें स्त्रियाँ और पुरुष हाथ बाँध कर मण्डन व्रतान्तर नर्तन करें वह नाच रस कहलाता है।^१ रस-नृत्य एवं पादचाल्य पद्धति के सामूहिक नृत्य "गान टान्म" में वाह्य साम्य को देख कर कतिपय विचारक उक्त विदेशीय नृत्य को राम के समकक्ष रखने का प्रयास करते हैं परन्तु इन दोनों में निहित भावनाओं में पर्याप्त अन्तर है। भारतीय सामूहिक नृत्य रस में घर्ष की भावना छिपी है और उक्त द्वितीय प्रकार के नृत्य में शुद्ध मनोरञ्जन की। ऐसी स्थिति में दोनों को एक ही वस्तु मानना ठीक नहीं प्रतीत होता। चौथे मत के अनुसार केवल नृत्य एवं गान से युक्त अभिनेय कृति रस नहीं कहला सकती। पाँचवे मन्तव्य के अनुसार, जो उक्त मतों से सर्वथा भिन्न ज्ञात होता है, रस की उत्पत्ति रस धातु में मानी जानी चाहिये। इसके अनुसार चिखाने के अर्थ की खोजक रस^२ धातु का सम्बन्ध पशुपालन नृत्य से जोड़ा जाता है। यह नृत्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में संगीत की विविध कलाओं से सम्पन्न न था। उस समय इस प्रकार के सामूहिक नृत्य में न हव बीच-बीच में जोर-जोर से चित्ता उठते थे। कालान्तर में संगीत तथा रक्षा के विवाह के साथ लोक नृत्य में भी परिवर्तन हुआ और इसने एक कलात्मक रूप धारण कर लिया। नाट्यरूप की दृष्टि में यह राम^३ जो नृत्य की

१- स्त्रीमात्रं पुरयैश्चैव धनरत्नैः नमस्तिथे ।

मण्डनं निघनं नृत्यं स रामः प्रोच्यते कुर्ये ॥

२- Rasa is thus not to be derived from Rasa but from Rasa root which means to cry aloud, which may refer to the very primitive form of this dance when the proportion of music and artistic movements may not have been still realistic and when it must have been practised as wild dance.

Types of Sanskrit Drama, Mankad, Page 143.

३- मण्डनेन तु यन्मृत्तं हस्तीमकमिनि स्मृतम् ।

एकस्मिन् तु नेता स्वाद् गोपम्बीया बवा हरिः ॥

बनेह नर्तकी-योग्य विस्तारव्यवस्थान्वितम् ।

आबनुधद्विपुस्तोदात्मक मन्त्राढनम् ॥

ना० ता०, या० बो० सी० संस्कार - ५० १८९

+

+

+

"यमस्तु गोदृष्टा नोदा" हारावली

गोपिया व रान रचाट गई नीताभा में सम्बद्ध है। संस्कृत के गोपी नाट्य रासक वाच्य धीमदित और हल्लीश जैसे एकाङ्की उपरूपों के अधिन निकट प्रतीत होना है। इनके सधित तुलनात्मक विवेचन में यह बात स्वयं पुष्ट हो जाती है।

राम में कृष्ण के चारा ओर गोपियाँ नाचती हैं। हल्लीश में एक नायक होना है और अनेक नायिकाएँ हाती हैं। रास में जिसने पुरुष पात्र होने हैं उतन ही स्त्री पात्र भी। (क्योंकि कृष्ण अपने अनवरूप धारण करके एक-एक गोपिका के साथ नाचन दिखन हैं) अभिनवमुक्त कोहल भामह आदि ने रासक के जो लक्षण किये हैं उनमें एक विशेष लक्षण यही मिलता है कि राम स्त्री पुरुषा या सम्मिलित मण्डलाकार नृत्य है। इसमें कभी-कभी केवल स्त्रियाँ ही नाचती हैं। भोजराज व शृङ्गार प्रकाश म कहा भी गया है कि जब हल्लीश नृत्य का किसी विशेष तान में नतन होता है तब वह राम में परिणत हो जाता है।^१ भोजराज राम को गुड रूप में स्त्रियाँ का ही नृत्य मानते हैं, निम्नमें सोलह बाह्य या घाठ ननविया नाग ल मती है। शृङ्गार प्रकाश में उपलब्ध उपरूपों के कारण में यह भी विदित होता है कि राम या रामक के ही समान नाट्य रासक भी वनमकात^२ में अनुराज के संगगाय ननविया द्वारा दिखलाया जाने वाला एक नृत्य प्रधान भाषा निम्न है। इसे यही ध्वरी भी कहा गया है। भोज के अनुसार इसमें पिण्डीबन्ध गुरुम शृङ्खला, भेद्यक, लाटादि तानभेद विभिन्न बाधा के साथ लाम्य तथा नाट्य रामक में ही प्रदर्शित किय जाते हैं। इसी रामक भयवा नाट्यगमक का राजानक रत्नाकर के हर विजय नामक महाकाव्य में रासराज भी कहा गया है। इसके टीकाकार अलक ने कोहल का प्रमाण देने हुए इस

१- तदि हल्लीशम तन्वचविशेषरूपेण रास एवेत्युच्यते ।

२- पाम्म शृङ्गारणी का धर्मित् नृत्यानि नाविका । शृङ्गारप्रकाश

५ X ५

न परंरभिषायेन अनुवाच्यते ॥

वामिनीभिर्भुजोभयुर्गवित्त वन नृत्यन ।

ग ३०- रामक म ईय, नाट्यगमक ॥

वध्वरीणि न नमः वामन रत्न तु ।

प्रतिन वरियन प्रथम शृङ्गारप्रकाश द्वितीय भाग एकादशवाक्य - पृ. ४६८

भाट, सोनह या दत्तीम नर्तकियों का नृत्य^१ बतलाया है। अभिनवगुप्त, जोर-राज तथा रामचन्द्र ने भण्डाल बवि के 'राधाविप्रलम्भ' (राधाप्रलम्भ) नामक रामकाव्य का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है।^२

जोरराज के अतिरिक्त शारदाजनक^३, वैमभूपाल^४, गुबकर^५ आदि अन्य चलकर-शान्त्रविदों के ग्रन्थों में रामक एवं नाट्यरामक के शास्त्रीय लक्षणों में समीच तथा नृत्य के वर्णनादिकों को देख कर दृष्ट में मौमानकों में इसकी गणना नृत्यकोटि में की है। किन्तु माहित्य दर्पण में (जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) इनके शान्तीय विवेचन की देखने पर ज्ञान होता है कि 'रामक' नृत्य ही नहीं, प्रत्युत एक प्रकार का एकाकी उपरूपक भी है। नाट्यशास्त्रविषयक ग्रन्थों की देखने में मालूम होता है कि रामक नामक उपरूपक के तानरामक दण्डरामक एवं भण्डारामक — ये तीन भेद होने हैं। तानरामक तानरङ्गनृत्य, दण्डरामक (टान्डीयाराम) दण्डों की बजाकर किया जान वाला नृत्य होता है। शान्प्रदेश में प्रचलित "कोसाट" नामक लघु-नृत्य इस दण्डरामक का स्मरण दिताना है। रामस्वर जैसे देवालयों में स्त्रियों एवं बच्चों के कोसाट नृत्य करते हुए चित्र प्रकित हैं।

जैसी छिष्ट-साहित्य से लोक-साहित्य तथा वही लोक-साहित्य से मिष्ट-साहित्य प्रभावित होता रहता है। नाट्य-साहित्य का तो लोक जीवन से

१- रामकाव्यक कोलाहो नामप्रकारः । उल्लेख -

श्री पातक इतिहास यत्र नृपति शारदा ।

विष्णुप्रान्तारण तन्मृत रामक विदुः ॥

२- (क) यथा भगवन्विद्विषी राधाविप्रलम्भ राधाकाट्टे ...

ना० भा० अध्याय १२ (भाष २) ना० जी० जी० पृ० ६१

(ख) यथा भगवन्विद्विषी राधाविप्रलम्भ रामकाट्टे परिकर -

परिभाषयादिकप्रकारेण स्तुत्वात्र तन्निवृत्तः ॥

ना० द० भाष १, पृ० ११६

३- भा० प्र० नवम अधिवार पृ० २६४.

४- रत्न नर्तकीनामचित्रालतारामृतम् ।

आचनृषष्टिसुगतादयक भूमणोदयम् ॥

वेम० (परतनोप से)

५- मृगयार-विहीन स्तिकाष्टु तु रासकम् ।

उज्ज्वल-नान्दीसमुक्त वेशिकी-धारणीयुतम् ॥

वैविध्यवि गोपाना त्रीनारायवमित्यपि ॥

शुभदूर (परतनोप से)

अविच्छेद्य सम्बन्ध है। भारतीय नाट्यशास्त्र में लोकचर्मी नाट्य की चर्चा का पदन में भी यही मिश्र होना है। रामक, नाट्य रामक जैसी अग्निव गैली में संगीत तथा नृत्य के प्रधान्य और आधुनिक नमाशा, रामगीता आदि जननाट्यो में महीन नृत्य की प्रचुरता को दख कर ऐसा लगता है कि इस प्रकार क नृत्तात्मक अभिनया में ही सवाद की राजना करक नाट्य शास्त्रविदो ने इन्ह उपरूपको की सजा प्रदान कर नाट्य-साहित्य में स्थान दिया हमा। इनके मुख्य विषय की प्रेरणा दशभूमि में की गई 'श्रीकृष्ण' की लोकप्रिय राम-गीताओं में ही मिलती रही है। समवत, प्रमुखरूपका की भावि इनमें वाचिक आङ्गिक, आहाय और नाट्यिक अभिनय की नम्यक योजना न हान म तथा क्वल नृत्य के आविष्य के कारण नाट्यजगत् में उपरूपका का अधिक प्रचलन नहीं हो सवा। य प्रमुख रूप में क्वल जनसाधारण (ग्रामीण जनता) के मनोरञ्जन की ही वस्तु बन कर रह गए। यही कारण है कि आज उपरूपक प्रचलित रूप में नहीं मिलते। जन-नाट्यो में ही उनकी छाया रह गई है। साहित्य-दर्पण में मेनकनहिन नामक रामक का नाम मात्र मिलता है। फिर भी विभिन्न लक्षर-शास्त्रों में उनके उदाहरणों के नाम और भागवत पुराण^१ में प्राप्त राम के प्राचीनतम वर्णन में इनका तो अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि हिमी युग में ऐसी अभिनय शैलियो का भी साहित्य में स्थान था। भागवत पुराण, विष्णु पुराण आदि पौराणिक ग्रन्थों में चित्रित लोकप्रिय रामगीता ने संस्कृत के पररती साहित्यकारो को भी प्रभावित किया। उनकी पुष्टि में भास और वाणभट्ट की कृतियो में रासरू में मिलते श्रुते हल्लीसक नामक सेल और रामरनृत्य के के उदाहरण हम परिच्छेद के आरम्भ में दिये जा चुके है। इनके अतिरिक्त ७वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में भट्टनारायण ने "विशेषद्वार" के नादीदशोक में राधा-कृष्ण के राम का सुन्दर वर्णन किया है।

वातिन्दा पुलिनपु केनिकुपितामुत्तमृग्य रामे रम

गच्छन्तीननगच्छतोऽपुननुपा कसद्विपो राधिकाम् ।

१- भगवानपि हा रात्रौ शरदोत्सवस्तिका ।

वीडय रत्न मनसक के यामभावाधुपाधित ॥

४ ४ X

वसयाना नुपुषाणां विद्विषीनाथ बोधिताम् ।

समियायामभूच्छ-इत्युमुनो राममण्डले ॥

श्रीमद्भा-वज, दशमस्कन्ध, अध्याय २६-३३ पु० २६६-२६४

२- गीतमय व्यङ्ग्यम् । लस्य लसाम् । उदारलसकमुञ्जकवेधा सक दहृत्सुप्रगत

दिम्बवलि किलाङ्गविम्बित हास्यशृङ्गार-भूषित, यगा, देवो-महादेवम् ।

सायलन्दो (भरद्वज से)

इस दमोदर में कवि यमुना-मुनिन में केलिकुपित राविका का अनुसरण करते हुये धीवृष्ण व उम रूप की वन्दना करता है जो राविका ने चरणम्भ में भूषण प्रसन्नता का अनुभव कर बद्गद हो उठा है। काव्य के विभिन्न रूपों में अङ्कित इस प्रकार के रासनृत्य के चित्रों से व्यञ्जित होता है कि पौराणिकाल से चली आने वाली रासपरम्परा मातृकी क्षताब्दी में भी मोरप्रिय धी और तत्कालीन माहिर्य जगत् में भी राम के विश्ववन्द्य नायक धीवृष्ण उपास्य के रूप में मान्य थे। आने चतुर्वर इन अमृतमयी सरिता में हिन्दी आदि अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्यकार भी भ्रमगाहन करने लगे। आज भी रासलीला में रत रामावृष्ण की जोड़ी के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित करने वाला गुजरात का गवां नृत्य त्योहारों के अवसर पर देखने को मिलता है। अब में भी "राम" के अभिनय में मानसीला देवता को मिलती है। इसमें नृत्य के साथ वाद्य-संगीत होता है। बीच-बीच में सवादों का उच्चारण भी होता है। सवाद डाल देने से इनमें नाटकीयता आ जाती है।

एक अङ्क में समाप्त होने वाले उपरूपों का उल्लास्य, उल्लास्यक या उल्लोप्यक^१ भी एक प्रभेद है। इसका विषय धार्मिक होता है (दिव्यकथासुक्त^२)। इस उपरूप के धीरोदात्त नायक, चार नायिकाएँ और गृणार, हास्य एवं कटाक्ष रस होते हैं। सवादों के बीच में गीत भी समाविष्ट रहते हैं। इस उपरूप के उदाहरणों की चर्चा करते समय शायद देवी-महावेश का नाम लिया जाता है। गारदात्मन्य न कुञ्जर नामक उल्लास्य का उल्लेख भी दिया है। उन्होंने इस नृत्यरूप के तक्षण उल्लोप्यक नाम से नित्ये हैं।

काव्य में केवल एक अङ्क होता है। इसमें गारभटीवृत्ति का अभाव और हास्य रस की व्याप्ति रहती है। इसकी सौली काव्यात्मक होती है तथा इसमें वर्णित कोई प्रमथया मगीत चारा में बहती हुई—एक अङ्क में ही समाप्त हो जाती है। नायक-नायिका दोनों उदात्त होते हैं। आचार्य कोहल ने उनका

१ उल्लास्यक इत्यादिकाङ्कमवसथविनाशितम् ।

मया दक्षिणदेव मया वागनि-नृञ्जरम् ॥

दक्षिण नायक न म त्रय्य शत प्रथमा ।

२ उदात्त च न-उपनिषत् शब्दवैरितम् । गारदात्मन्य, गारप्रवास नवम् अङ्कितम् ।

संगीत के राग^१ विशेष के अर्थ में भी प्रयोग किया है। इसी से इस लास्ययुक्त नृत्तरूपक में मगीन का प्राधान्य मिलता है। भोजद्वारा लक्षित काव्य^२ और चित्रकाव्य को देखने से भी ज्ञात होता है कि ये मगीत-प्रधान कृतियां श्रव्य-काव्य के अधिक निकट हैं। इनमें से पहले में एक ही राग अन्त तक रहता है और दूसरा विविधरागयुक्त होने के कारण चित्रकाव्य कहलाता है। अभिनवगुप्त काव्य को राग-काव्य कहते हैं। इस सम्पूर्ण गीति में एक पूरी कथा होती है। यह नृत्य-प्रबन्ध भी कहलाता है। अभिनव-भारती में हम संगीतारम्भक कथायुक्त 'काव्य प्रबन्ध' के अभिनेय काव्य में परिणत होने की चर्चा भी मिलती है।^३ जयदेव कवि के गीत-योगिन्द को भी चित्रकाव्य उपरूपक कहा जा सकता है। यह किसी से छिपा नहीं है कि जयदेव की पत्नी ने स्वयं इन्हीं अभिनय के योग्य बनाया था। भारत के किसी-किसी भाग में संगीत के साथ इसका आज भी अभिनय होता है। टिट, चेट आदि होन-यात्रों का भी इसमें समावेश रहता है। शारदातनय ने गौड-विजय तथा मुद्गीव-केसन^४ को इनके उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है। सागरनन्दी इनके उपलक्ष्य-ग्रन्थों की चर्चा करते हुए उत्सृष्टिमाधव^५

१- लयात्मक-श्रवणार्थ रागैक्यानि विनेचिन्तम् ।

नानारस-मुनिर्वाक्य-कथ काव्यमिति स्मृतम् ।

गोहम, नाट्यशास्त्र की टीका में उद्धृत प्रथम भाग पृ० १८२

२- आलितिरास धर्षो मात्रा दृशकोऽय भक्ततात्पर्य

काव्यमिति विविधरास चित्रमिति तदुच्यते कृत्तिभिः ॥ -शृङ्गार प्रकाश

३- यद्येवमेव (रागविवरणदि) रागकाव्यादि प्रयोगो नाद्यमेव । अभिनवयोगात् ।

ना०शा०-चतुर्थ अध्याय (टीका) पृ० १७२ या० बो० भी० हस्तरग

४-

काव्य महास्य शृङ्गार सर्वकृतिस्तमन्वितम् ।

समन्मानसिपदीषष्टमात्रा परिष्कृतम् ॥

एष प्रकल्पयेत् काव्य तद्विषयविवयो यथा ॥

विप्रमातरवपित्रपुत्र-नायकालाविकोऽन्तरम्

मुनिन प्रमदाभाषाचेष्टिर्वन्तरान्तरा

अपि चित्चेदादिवेषकायाभिरेव वा ॥

एष वा कल्पयेद्वाक्य यथा-मुद्गीववेननम् ॥

पा० प्र. नवम अधिपार पृ० २६३

५- सप्तमानमात्रादिपदो मय्य तावकादिविमुक्ति

चतुर्गुणितु शृङ्गारहास्यप्रधान सर्वावयवैर्गन्धर्व्य एवाहुम् ।

यथा-उत्सृष्टिमाधवम्, -सागरनन्दी (भरतकोश में)

का नाम लेते हैं और अमृतानन्दी^१ भावबोध का । गार्हस्थ्यदर्शणकार^२ यादवादि नामक काव्य का उन्नेय करते हैं ।

उपयुक्तिविधि नामकी उपस्थापना के अनिवार्य नाट्यकीमामात्रिपथक ग्रन्थों में प्रह्लाद नामक एकांकी नाटक निर्माता की परिभाषित रक्षा के भी दर्शन मिले हैं । गार्हस्थ्य दर्शण में दूसरा नामक 'गर्भान्तराद्विभू' इत्यादि शब्दों में दे दिया गया है । अन्तर, अन्तर्गत और प्रदर्शित शब्दों का अर्थ-कोशों में वही अर्थ उल्लेखित किया है जो अंग्रेजी में जेनरल शो (A show) का होता है । अर्थविभाषिक अर्थ में (Non-technical sense) प्रह्लाद एक द्वन्द्व कृति (A dilemmatic representation) के अर्थ में उल्लेखित होता है । प्रह्लाद और प्रह्लाद नामक शब्दों में अन्तर्गत अर्थ और प्रह्लाद शब्द एक दूसरे के अन्तर्गत आते हैं । उस अर्थ की आगे व्यायोगों की चर्चा करते समय पट्टों भी करने का काम है ।

एकदशमः^३, भोज^४ भावबोध^५ ने जो प्रह्लाद के गुणवत्तक के रूप में उल्लेखित है और अन्तर्गत ने जो प्रह्लाद की परिभाषा की है उनका

१. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य २. १०५ ।

३. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य ४. १०५ ।

५. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य ६. १०५ ।

६. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य ७. १०५ ।

७. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य ८. १०५ ।

८. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य ९. १०५ ।

१०. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य ११. १०५ ।

११. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य १२. १०५ ।

१२. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य १३. १०५ ।

१३. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य १४. १०५ ।

१४. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य १५. १०५ ।

शृङ्गार प्रकाश, (एकदशम प्रकाश) पृ० ४६६.

१५. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य १६. १०५ ।

१६. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य १७. १०५ ।

१७. 'अमृतानन्दी' नामक काव्य १८. १०५ ।

यथा — वाचिकम् । भावबोध (भावबोध से)

सुखता कीर्ति -

भावबोध नामक प्रह्लाद नामक काव्य ।

अमृतानन्दी नामक काव्य १९. १०५ ।

अमृतानन्दी नामक काव्य २०. १०५ ।

नेपथ्य नामक काव्य २१. १०५ । यथा — वाचिकम् । भा० ४० ६, पृ० ३६७,

तुलनात्मक अध्ययन करने पर भी प्रेक्षक एवं प्रेक्ष्य के एक ही शब्द के पर्यायवाची होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता है। इसके अतिरिक्त मागरनन्दी का प्रेक्षक के उदाहरणों के प्रसंग में "बानिवच" का और विद्वनाय का प्रेक्ष्य के अन्तर्मुख उक्त रूपक (बानिवच) के नाम का स्मरण करना भी इसी रूप की ओर गवेषण करता है। भाट्टिन्यदर्पण के अनुसार इस एकाकी (प्रक्षुण्ण) में एक और अवयवों सहित नहीं हानी। इसका नायक कोई हीन-रूप होता है। इसमें सूत्रधार तथा विध्वंसक एवं प्रेक्षक का अभाव रहता है। नाट्य और प्रवेचना का वैषम्य से पाठ किया जाता है। युद्ध और भेदक एवं मर वृत्तियाँ हानी हैं।

प्रेक्ष्य शब्द रूप के अनुसार उपर्युक्त प्रक्षुण्ण प्रेक्षक, प्रेक्ष्य और प्रेक्षणीयक इत्यादि शब्दों का प्राकृत रूप प्रतीत होता है। किन्तु कभी-कभी कोई शब्द सामान्य अर्थ छोड़ कर किसी विशेष परिमण्डित अर्थ में रुढ़ हो जाता है। यह बात प्रेक्ष्य पर भी लागू होती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त पद रूप की एक-दूसरे का पर्यायवाची मानना अनुचित नहीं होगा। अभिधान शब्दों के अतिरिक्त वात्सव्यायन के कामभूत में भी प्रेक्ष्य का सामान्य प्रेक्ष्य शब्द के अर्थ में प्रयोग मिलता है।^१ परन्तु नाट्यशास्त्रविद भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश में इसे उपरूपक घोषित किया है।

उपरूपकों का प्राचीनतम वर्णन हमें अभिनवगुप्त की अभिनव-भागती में ही प्राप्त होता है। इसमें 'प्रेक्षक' के दर्शन नहीं होते। इस प्रकार के उपरूप में कामदहन के समान साव प्रसिद्ध कथाओं को इसका विषय बनाया जाता है। उत्तर तथा दक्षिण भारत में प्रचलित "हात्किदादहन" के कथा-चुल में इसकी समानता प्रतीत होती है। तामिल के काम्पटी (काम-दहन) में ही वगैरह गीत गाते हैं जिसमें से एक में काम के दग्ध होने का वर्णन होता है और दूसरे में उसके सदा जीवित रहने का। इस प्रकार के गीत मराठी में सादृशी बड़े जाते हैं। गारदातनय ने एक ग्यान पर नृत्य को भी प्रेक्षक की सजा दी है।

१- पण्य मोग्ग का प्रसंगे-नि मरम्बाया शब्दे निवृत्ताना नित्यं वयाग ।

कुमीनवास्वाचन्तक प्रेक्षकमेवम् इव । ...

कामभूत (चौखटा प्रकाशन) १,४ १२-१६ पृ० १३०.

काममूत्र तथा नाट्यदर्पण में उपलब्ध वर्णन के निरूपण से ज्ञात होता है कि प्रेक्षणक राज-मार्ग पर, बनमधुदाय में, चौराहों पर, देवमन्दिरों के प्राङ्गण में, चट्टानों द्वारा परदक्षित किया जाता था। रामचन्द्र ने भी इसके उदाहरणार्थ—“वामदहन” का ही उल्लेख किया है। इसमें ध्वनि होना है कि उपरूपकों का (विशेषकर प्रेक्षणक का) समाज में प्रचलित लोगनाट्यों में निकट था। सम्बन्ध रत्न होगा बिनाम भीत एवं नृत्य की प्रचलित रहती है। इस प्रकार के अभिनेश लोककृत्यों में भाव प्रदान रहता है। इस प्रसंग में गुजरात के लोक प्रिय जन-नाटक भवाई की याद या जाती है। भवाई में विभिन्न भाव प्रदर्शित किये जाते हैं। इस जन-मनोरजन के नाट्य में शृङ्गार एवं हास्य की प्रधानता रहती है साथ ही वीर तथा कष्ट का मण्डप परिपाक भी देखने को मिलता है। गीत नृत्य में ओगणोट गुजरात के चौराहों तथा देशान्तरों जैसे स्थानों पर अभिनीत होने वाले भवाई नाट्य प्रेक्षणक नामक उपरूपक के लक्षणों का निर्वाह करता है। रामकलाल छो० पारिव ने भी “भवाई नु स्वल्प” में इसका समर्थन किया है। प्रेक्षणकों की नाममात्र प्रथम श्रव्याय में सम्बन्ध है।

यद्यपि इनमें न मन्त्रों तथा अन्य प्रकट रूप में सब प्रत्यक्ष नहीं होते, तथापि इनकी उक्त दीपकमात्रा के दमन में प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारतीय नाट्य में इस प्रकार के उपरूपकों का प्रचलन अवरुद्ध रहा होगा। यहाँ मन्त्रों में इन कृतियों की चर्चा करना अनुचित न होगा। उपर्युक्तित्वित प्रेक्षणकध्वनि में से विश्वनाथ के मीमांसिकाहरण की (व्यायोगों का समावेश करने लक्षण) हमने व्यायोग की कोटि में ही रखना उचित समझा है। इनएव हम प्रेक्षणक-परिचय से प्रत्यक्ष कर देना ही ठीक है।

सम्बन्ध-साहित्य में प्रेक्षणकोशान का दूसरा मुमत्त है, काशीपुर के निवासी कविशेखरवरदार्य के पुत्र कोलनाथ भट्ट का कृष्णाम्बुदय। प्रभु प्रेक्षण काशीपुर के हृन्गिरिनाथ के वार्षिक यात्रा-महोत्सव के अवसर पर रत्ना गया था।^१ यह शब्द अत्र तब प्रकाशित नहीं हो सका था परन्तु श्री फ्रेन्ड-

१- मुद्रधार- नरेश मुद्रमान। यत्ताचीपुणन श्रीहृन्गिरिनाथस्य

वार्षिक यात्रामहोत्सव समनया सामाजिक समारोहिन



मुद्रधार - (स्मरणमभिनेत) यत्ने कि न जलामि ? इति अनु कविशेखर इति प्रियतम
सामाजिकतय वरदायन्त पुत्रज लालनाथभट्टन विरचित कृष्णाम्बुदयस्य प्रमाणम्।

हृन्गिरिनाथ।

शर्मा ने इस कृति का सम्पादन तथा जवलपुर निवासी प्रो० जगदीशनाथ शास्त्री ने इसका प्रकाशन करके संस्कृत-साहित्य के ममक्ष एक खोई हुई निधि प्रस्तुत कर दी है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म की कथा का नाटकीकरण है। कवि की रमणीय रचना-शैली का नमूना इन पङ्क्तियों में देखा जा सकता है।

कापि स्तन्यरस्य प्रदातुमुचिता गोवाङ्मनाभूमिका
या प्राप्ता तदसून्मह स्तनरमं कृष्ण त्वामापीतवान् ।
अन्यास्वामिह विश्वमेत्कथमिति व्याहारिणीं मातर
मौलन्तमेर-मुनेन्दुरकुसुमिनो मम्यारिनु पातु न ॥

+ ×

मूत्रधार - अहोराग-सौभाग्यम् । (निरूप्य) व्यञ्जयति काव्यवस्तु गायेयम् ।^१...

...

...

...

कृष्णाम्बुदय के घनिरिक्त भारद्वाज-भोजोद्भव महीश्वर के पुत्र सुदर्शन द्वारा रचित 'कुमारीविलसितम्' नामक प्रेक्षसूक्त का नाम भी प्रेक्षसूक्त पुष्पिका में मिलता है। इस लघु उपरूपक में एक कुमारी की पुण्य कृतियों की कथा वर्णित है। यह कुमारी दक्षिण भारत के केरल के प्रयापुर की पूज्या श्रुता ही है। इसकी एक प्रति व्याख्या-महिन भी रची गई थी जिसका ज्ञान हमें पाण्डु-तिपिमाता की देवने में होता है।

उन्मत्त राघव

संस्कृत-साहित्य के प्रकाशित इतिहासों में "उन्मत्तराघव" नामक दो एकाकियों का उल्लेख भी आता है जिनमें से एक के रचयिता हैं विजयनगर के हरिहर द्वितीय के पुत्र विरूपाक्ष, और दूसरी कृति के भास्कर कवि। विरूपाक्ष की रचना चौदहवीं शताब्दी में रची गई थी। भास्कर के उन्मत्तराघव में उप-सर्व प्रमाणों के अनुसार हमें कवि का दूसरा नाम विद्याचरण था।^२ इस

१- कृष्णाम्बुदय

२- मूत्रधार :- अथ खन्धाष्टोत्तस्य विमनतरनिबन्धीनि-कपूरकरणीकृत-निबन्धन-
ह्लादिन दिग्भावनपुष्पमण्डन-मण्डनावधानप्रकारनिबुद्धेण सकलकलाविद्याप्रकीर्तिन
विद्यारण्येन चरणादिद्वयन महेन्द्रव मितिवेदामुना साक्षाजिज्ञेन, अथा-

उन्मत्तराघव नाथ श्रेयोवदमुत्तमान् ।

भास्कर इतिना सान्यस्तत्त्ववाच निरूप्यताम् ।

उन्मत्तराघव पृ० २

प्रेक्षणकृति का रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी का मध्यवर्ती भाग होना चाहिए। इसकी प्रस्तावना में इसे प्रेक्षणक कहा गया है। संस्कृत नाट्य-साहित्य में मध्य युग का यही एक प्रेक्षणक मिलता है।

रामायण में चित्रित सीताहरण से पूर्व कश्यप-भृगु ज्ञानि के निगे राम के द्वारा सीता को लक्ष्मण के सहारे छोड़ जाने की घटना भामर कवि के प्रस्तुत प्रेक्षणक का आधार है। राम की महायज्ञ करने के लिए लक्ष्मण के चचे जाने पर अकाली सीता के माय कवि ने उसी मन्त्री मधुहरिका की कल्पना की है किन्तु उस पुरावचयाय उद्योग को भेज दिया है।

लुभावने पूनी की यौनती हुई दोनों मलिया बहुत दूर पहुँच जाती है। इसी बीच सीता बिम्बी ऐसे उरबत म पहुँच जाती है जहाँ पहुँच कर कोई व्यक्ति दुर्गमा नृपि के साथ के कारण हरिणी का रूप धारण कर लेता है। अतः सीता भी हरिणी बन जाती है।

अगस्त्य - तस्मिन्ममये तेषु तेष्वधमेषु तीव्रतम गतिनामहेन्द्रेण
विमृष्टानां चरन्तीनां मध्य हरिणी नाम वाचिदेनत्तरोवन प्रविश्य
पुत्राण्य वाचिनान् ।

राम - हन्त, महान् प्रमाद ।

अगस्त्य - तत परमभिपेक्षायाञ्च नय दुर्गमास्मादवनोदर-‘धमे हरिणी,
यतोऽस्महेवनावनोचिनानि कुमुमान्यवचिनोपि, ततस्त्वन्नामनदुशी
मेवाकृतिमेहि’ इति वशाप । तदानीमेव परित्यज्य वनमिदमन्तरितम् ।^१

अतः रूप में सीता को न पहचान सकने के कारण मन्त्री मधुहरिका को दुखी हो ही जाती है। उसके पनि देव रामचन्द्र की विरह वदना भी प्रवण हो उठती है। यहाँ कवि की लेखनी से विप्रलम्भ शृंगार का मनोदारी चित्रण हुआ है। नायक नायिका के होने वाले वियोग का आभास इस उपस्वरूप के आरम्भ में अमरचमरी के विलय होने की घटना में मिल जाता है।

सीता — (स पट्टिक्षेपम् ।) हाँ, इसी ममरोकिणिमित्र समन्तो देमु
देमु सदाविहवेषु कुमुदकादरेषु धालुन्तो परिष्ममई ।

मधुरिका — (विभाव्य ।) हाँ, मधुरन्दपाणिशिवल पक्षदाए
पन्नवन्तरिद इम महर्षि भर्षि प्रदेवन्तो अविजोमए वेप्रणाए-
रुण उन्मता मनुता ।

मधुरिका—आहह । अविमम र्षि भर्षि त्रिमा महर्षि ए पेकवदि ।
सीता — महर्षिणि मजा र्षिम् ।^१

यही सम्पन्न का दास चित्रेन योगेन नारा योगम सीता में विद्युत होने
पर साधारण मन्त्र के मध्य उन्मत्त हो जान है ता उनके कुलपील के अनु-
रूप नहीं प्रतीत होता । उन्मत्त यह रूप सम्पन्न नारा के सामुक्त नायक का सा
दिखाई देता है । इस प्रकार 'उन्मत्त राक्षस' का रूप प्रद्वय या रक्ष गुण के
बदलाओं में निश्चित नायक के गुणा म युक्त (जीरनायक) प्रतीत होने हैं । इस
मधु प्रेक्षणक पर कानिदाम में अमिद उत्तम विष्णोरी गीम् के चतुष्टय पङ्क्त का
प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । उन्मत्तराक्षस चित्रेन रिग्भविद्वय राम का
प्रभाव विष्णोर्वगीय के चतुष्टय अरु म बलिता (उत्तरी के नारा हार में रिण्ट
हो जाने पर) नायक पुत्तरवा के विचार न भिन्नता पुनरा है ।

उत्तरी — (जा किन्तु ... परिणत में रूपम्) या

किन्तु स्त्री इस प्रदेश प्रविशति मा ननाभावेन परिशुम्बतीति
कृशचाय गायान् गौरीचम्पाराममभव मणि विना ततो न मोक्षय
इति ।

ततोऽहं गुरुनाभमभूद्बुद्धया देवता मनसकिम्पूपात्तोनानुता स्त्रीजन-
परिजनहृणीय कुमारवन प्रविष्टा । प्रवक्ष्याम्यमेव च कालोपास-
वदिवासान्ते ननाभावेन परिणत भे रूपम् ।^२

+

+

+

१- उन्मत्तराक्षस पृ० ४

२- विष्णोर्वगीय - अ० ४,

नीलवण्ड ममोत्तर-ठा वनेऽस्मिन्वनिता ह्यया ।
 दीर्घापाया मितपाददृष्टा दृष्टाश्रया भवेत् ॥^१
 हस्त प्रपञ्च मे कान्ता भितरस्याम्बुया हता ।
 विभावितैरदेशेन देव यदमिषुज्यते ॥^२

तुलना कीजिये—

रामः — हा, हनोऽस्मि ।
 ज्वलत्तुपाराम्बुजलोपमानि सीता न दृष्टेति दुरप्रराणि ।
 कर्णं प्रविष्टानि दृष्टादभूति सर्वांग-त्वाप जनयन्ति हन्त ॥
 राम — भवतु । एतामेव पृच्छामि ।
 लोभायतेय पदपत्तिरस्या श्यच्छ मे पविनि पद्यवकनाम् ।
 न चेत्तदीया चरणाञ्चमुद्रा प्रदर्शयानप्य किनिर्गता मे ॥^३

कालिदास की तरह भास्कर का विषयप्रवेश करने का श्रम भी सराहनीय है ।

मूत्रधार — साधु मीतम् । (अन्यतोऽन्वलोक्ष्य) घायो ! इत. पश्य
 मनोहराणामपि मञ्जरीणां विहाय जावानि विशेषलिप्सु ।
 लतान्तराश्वेन मधुव्रताति सीता मयेव कुमुदेषु सोमान् ॥^४

मूत्रधार द्वारा वर्णित वमन्तराश्वीन प्राकृतिक छटा नदी के माधुर्यमय
 स्वागत गान में सुलभित है ।

मूत्रधार — नन्विदानीं वतते वमन्तममय । तथाहि ।
 मान-दार्ढ्यं मलयपवन। मन्दभायोमयन्ते
 मञ्जरीन्वा मधुकरयुवा मञ्जरीणां मरुदे ।
 श्रातवन्ते मृगुनिकुरानाममन्तादलोका
 वक्तुं मना पिकमुवतय पञ्चम प्रारभन्ते ॥^५
 जाम हि महु श्रमन्धो दन्विष्यपवणो बरुहिणीणां ।
 विश्र ममराग्नयरो सो जेतु बिन्धमहो रागो ॥^६

- १- ११३भावशाय २१ शब्द ४, कालिदासव्याख्यान — म० सीताराम चतुर्वेदी, पृ० २२०
 २- त्रिजगत्प्रीति ३४ शब्द ३, कालिदासव्याख्यान — म० सीताराम चतुर्वेदी, पृ० २२४
 ३- ४ मन्तराश्व, ६-१० पृ० ८ (कालिदास मन्तराश्व)
 ४- उमराश्व ६, पृ० २
 ५- उमराश्व ४, पृ० २
 ६- उमराश्व ३, पृ० २

राम के साथ सदा छाया की तरह रहने वाले उनके अनिष्ट भ्राता लक्ष्मण का चरित्र पूरा उदात्त है। मातृवृन्दा भामिनी सीता के विरह में अपने बड़े भाई राम के निरन्तर बहते हुए उन्माद को देखकर उन्हें बहुत दुःख होता है। इन पत्तियों से उनकी मनोवेदना का अनुभव किया जा सकता है।

राम—(क्षणमात्रं तूष्णीं स्थित्वा) अयि, जानकि! किमिहोदसीन्य भवमि।

आगत्य तूष्णीममिनोत्पन्नरम्यनेत्रे

कष्टवधानममते भुजवन्नरीम्याम्।

पश्चादुपेत्य निभृतपदमपयन्ती

यद्वापिबेहि नयने करपन्नवाभ्याम् ॥^१

इस प्रसंग में उनके मुख में निरुत प्रत्येक वाक्य में अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति उनका निष्कण्ठ प्रेम कमकता है। यथा—

लक्ष्मण—कष्टभार्यम्योन्मादवशा बलते। भार्य, न जानकी।

(इति मूर्धनमुपमयति।)

×

×

×

लक्ष्मण—पहो, जानाजानयो सकर। तथाहि—

वाक्प्रधानि कानिचिदमुत्तराणि वक्ति^२

कवि ने कहीं-कहीं पद्यमय संवादों को भी स्थान दिया है जिनमें वाक्य रोचक बन गया है।^३

इस प्रश्नार्णव के कुछ वाक्य सूक्ति के रूप में स्मरणीय हैं—

विज्ञानविशदमेव हि चेतः मुञ्चतस्व शक्यते हर्तुम्।

परिशुद्धमेव बोधे नूनरा कथत्यम्कान्तः ॥

लक्ष्मण—प्रेमविशेषो हि प्रियवने प्रथम प्रमादमेव चिन्तयति।

१- उन्नतरात्र २३, पृ० १०

२- उन्नतरात्र २७, पृ० ८, ९

३- उन्नतरात्र पृ०, १३-१४

इसके प्रथम भान्दीद्वारे प्रणयकर्म में रत्न शिव-पार्वती की मूर्ति
वर्ण की समिवता की परिचायक है ।

कथा धान्दी ममो प्रणयकर्मप्रतिपत्त्य
प्रणयमे पावत्य पदमनन-नाशगरिविना ।
अथै भूयादस्या वदनमनिन कोकलुपा
प्रतादनाम्य विनिमय-वर्णन दशनी ॥१॥

मधुरिका का चरित्र

जब डाग कलिन मीना की मछरी मधुरिका का चरित्र भी महत्त्व-
पूर्ण है । हम सबप्रथम राम की महाययाय यथमण के चने जान पर पतिव्रता
मीना का मन बहानी हुई मधुरिका के दशन पुत्रोद्यान में पुत्र-मय कल
हुए होते हैं । अपनी मायी व प्रति उसका प्रसार प्रेम है । पुत्रोद्यान से सीता
के लुप्त होने ही उसके निम्ने उसका हृदय रोने लगता है ।

मधुरिका... ...
(बनान्तर विनोद मावसम् ।) त्वि मदा जगद् । (पुनर्निवोद)
अम्हें । शु वस्मि वि दीमद् । (बनान्तर प्रविश्य सर्वदाविप्लव्णी)
... ...
(नि दस्यम् ।) मन्दभाङ्गी छट् म् । मि ॥ प्रादा वारादो
लितलम्न राममद्दस्य वहं हिम्सम् ॥२॥

राम व लीटन पर वह उन्हें म्द समाचार किम मुख से सुावेयी, इसी बिन्दा
में दूबी हुई दिवाट दनी है ।

धन में अगम्य क्रमि के दर्शन होने हैं जो इस प्रेक्षण के जानरी
के निरुद्ध में दुर्लभ सब धामो में सीता को मिलाने हुए उनके विलग होन का
मह्य सोचने है और राम उनके इस आभोवदि को प्रेक्षण कर दृष्ट-दृष्ट
हो पाते हैं—

अगस्त्यः— अनया जानक्या लक्ष्मणेन सह महान्तं कृतं वर्तया ।

अपिच जीयात्कीर्तिं धीनिधे राघवेन्द्र...

इस प्रकार कान्दिदाम के विस्मयवशीय में प्रेरणा लेकर लिखित होने पर भी इस लघु प्रेक्षणीयक में कवि की मौलिकता देखने को मिलती है। साहित्यशास्त्र में प्राप्त प्रेक्षणक (प्रेक्ष्य) की परिभाषा के अनुसार यद्यपि इसमें इस उपरूपक के सब लक्षण नहीं घटित होने हैं तथापि यह उपरूपक के इस भेद का एक मुहर उभरता है इसमें सन्देह नहीं। उन्मत्तराघव के प्रतिरिक्त सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० बी० राघवन् के कुछ प्रेक्षणक भी प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु इनमें प्रेक्षणक नामक उपरूपक में शास्त्रोक्त लक्षण घटित न होने के कारण इनका निवेदन आधुनिक एकाकी नाटिकाओं के साथ करना ही उपयुक्त होगा।

श्रीगदित भी एक प्रकार का एकङ्की उपरूपक है। इस पर अभिनवगुप्त^१, मागरनन्दी^२, शाङ्गदानतय^३, अमृतानन्दी, शुभकर भोज, विद्वत्नाथ^४ आदि आचार्यों ने विचार किया है। इन धीर्मात्रों द्वारा लिखित श्रीगदित के लक्षणों पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि इनमें से कुछ लोगों के अनुसार यह एक नृत्य^५ का भेद माना जाता है। कतिपय विचारकों के मतानुसार यह प्रायः नाटक के समान होता है। कुछ विद्वानों के विचार से यह भाण के समान होता है। लगभग सब ने श्रीजरमातल की ही इसका उदाहरण बतलाया है। केवल शाङ्गदानतय के वाक्यों में रामानन्द नामक श्रीगदित का ज्ञान भी होता है। प्रायः सब ने ही इसमें भारती वृत्ति के बाहुल्य तथा गैभ और प्रथमर्ष

१- सङ्घा समस्त कर्तुर्विदुः कृतमृच्छते ।

मनुष्य च कश्चिद्भूतवत् । विदुः कस्तुम् ॥

२- तत्र स्त्री कल्पमासीना घटति एकाङ्कमुदात्तवचनम् ।

भारती वृत्ति - प्रधान प्रख्यातकम् । नायकम् - यथा श्रीजरमातलम् (सागरनन्दी भरतयोग से)

३- भा प्र. नवम अधिहार पृ० २५८

४- सा० ८० ६, २६३-६५ पृ० ३६८

५- डॉ० श्रीगदित भाषा भाषी अम्बानरामका ।

काव्य च सप्त नृत्यस्वपेदाः स्तुतिप्रतिपाद्यम् ॥ दशरूपक (धनिक की टीका पृ० २)

सन्धियों के धभाव को स्वीकार दिया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इतने नायिका सदमी का स्वरूप बनाकर कुछ गाती है या कुछ बोलती है, इसी से इसका नाम श्रीगदित पड़ा है। श्रीगदिन के ऐसे नामकरण के कारण परमेश्वर राज ने भी अपने शृङ्गार पर प्रकाश डाला है।^१ उनके अनुसार वह नायिका-भेद विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन करता है। इसकी नायिका कोई विरहिणी कुलवती नहीं होती है। इसका दूसरा पात्र नायिका भी सखी होती है। बिना सामने वह अपने विधुतपति के गुणगान करती है। इसके विपरीत अपने पति द्वारा प्रणय-ध्यापार में बन्धिता नायिका (विप्रलम्भा) दुखी होकर उनके दोषों का स्मरण करती हुई पुनर्मिलन के लिये प्राकृत-सी दिखती है। जैसे नन्ही अपने नारायण के सामने उनके गुणों की स्तुति करती है, वैसे ही इन उपर्युक्त की नायिका अपने पति का गुणगान करती है।

“तत्र धीरिव दानवसत्रो यस्मिन् कुलाङ्गनापत्य”।^२

यही इसके श्रीगदित कहलाने का कारण है। मोहराज के श्रीगदित की कुला अभिनवगुप्त के पिदयक से भी जा सकती है। पिदयक की परिभाषा भोज के श्रीगदित के लक्षणों से मिलती जुलती है। तामिल का “कुरवची” जिनमें नायिका अपने प्रेमी के लिये ध्याकुल रहती है तथा अपने हृदयगत भावों को अपनी किसी सहेली के समक्ष प्रकट करती है, मस्कृत के श्रीगदित में बहुत कुछ मिलता जुलता है।

सुभद्राहरण

मस्कृत-साहित्य के अलङ्कार शास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में श्रीहरीमानन और रामानन्द शीर्षक श्रीगदित के नाममात्र मिलते हैं। माधवभट्ट ने अपने सुभद्राहरण नामक एकाङ्की में इसे श्रीगदित^२ कहा है। इसी में इस लघु रत्न

१- तत्र धीरिव दानवसत्रोयेस्मिन् कुलाङ्गनापत्य ।

वर्णयति गोप्यैर्गोपकृतिगुणान्वतस्मर्या (रघु) ॥

पत्या च विप्रलम्भा गतव्ये ता (व) क्रमात्पु (पा) नमस्ते (भते)

श्रीगदितमिति मनीषिर्महादृष्टोऽपि पदाभिव्यक्तः ॥ शृङ्गार प्रकाश

२- परिपाशवक- भाव । ननुचि अवदवन् अवपेनावक्षरयाचि यन्मण्डनेश्वरभट्टात्मदेन

श्रीमाधवेन निर्माय बुध्यामु स्वामादिक-गुह्यभावेन समर्पितम्

श्रीमत्सुभद्राहरण नाम प्रसिद्ध-नामकीयेव श्रीतिशब्दोपरजित श्रीगदिनम्

सुभद्राहरण २, (जीवन्मा प्रकाशन) पृ० २

के प्रणेता न अपना सखिप्त परिचय भी दिया है। इसके अतिरिक्त माधवभट्ट के शिष्य में ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं है। आचार्य विश्वनाथ ने इसके उदाहरण में इसकी चर्चा नहीं की है। अतः अनुमानन यह रचना साहित्य-दृष्टि के प्रणयन के बाद की ही प्रतीत होती है। कुछ लोग इसकी हस्तलिखित प्रति के आधार पर इसको १६६७ वि. स. में लिखित मानते हैं।

इसकी कथा का आधार धीरद्वयमदत है। इसके दशमस्कन्ध के ८६वें अध्याय में ज। सुमद्राहरण का प्रसंग आता है, कवि माधवभट्ट ने वही से अपने उक्त एकाकी के लिये प्रेरणा ग्रहण की है। भागवतपुराणस्य इस कथा का सारांश इस प्रकार है—

महाभारत में घटित सुमद्राहरण

एक बार तीर्थयात्रा के उद्देश्य से घूमते हुए अर्जुन प्रभात क्षेत्र में पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने अपनी मयेरी बहिन सुमद्रा का विवाह दुपौधन में वरज के लिए बलराम को इच्छुक पाया। सुमद्रा को प्राप्ति करने की इच्छा से अर्जुन न द्वारका में पहुँचकर वहाँ एक वर्ष तक वास किया। एक बार बलराम द्वारा अपने घर पर भ्रामन्विन यतिवेशधारी अर्जुन को सुमद्रा ने देखा और अर्जुन ने सुमद्रा को। फलतः दोनों एक दूसरे पर प्रसक्त हो गए। एक दिन देवीलक्ष्मण के अवसर पर राज-महल से रथ पर सवार होकर बाहर निकली हुई सुमद्रा को उसके भाता पिता एवं भाई श्रीकृष्ण की अनुमति से अर्जुन हर ले गए। पहले तो बलराम इस घटनाश्रवण के उपरान्त बहुत क्रुद्ध हुए परन्तु श्रीकृष्ण तथा मित्रों के समझाने बुझाने पर शान्त हो गए और उन्होंने विवाहोत्सव पर उद्धार भी भेजे।

अर्जुनस्तोयंशत्राया पयंटेभ्रवनी प्रभु ।
यतः प्रमासमशृणुणांमातुनेयो स यात्मनः ॥

प्रहिणोतु भारिवर्हाणि वरदध्वोर्मुदा वतः ।
महाधनोपस्करेभरपाश्वर — योषित ॥^१

इसी कथा को कवि माधवभट्ट न अपनी अपूर्व कल्पना-शक्ति से प्रभावोत्पादक बना दिया है। नाटक की कथा में धीरद्वयमदत में वर्णित बातों में कुछ रूपा-

न्तर करने उसे अभिनव रूप दे दिया गया है। इसकी पुष्टि में दोनों कहानियों पर तुलनात्मक दृष्टिदोष करना यहाँ उचित प्रतीत होता है। अस्तु—

मूल कथा में अर्जुन को विदग्धी मन्यामी कहा है, परन्तु श्रीगदित में हमें एक सम्मान्य यति के रूप में ही नायक अर्जुन के दर्शन होये हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार अर्जुन द्वारका में एक बच तक रहते हैं और बलराम द्वारा प्रामाण्य प्राप्त करने पर उनके घर जाते हैं। उनके विपरीत सुभद्राहरण नाटक में अर्जुन का द्वारका में रहने का कोई समय निर्दिष्ट नहीं है। वह स्वयम् ही यति बग में बलराम के द्वार पर आ पहुँचते हैं। मूल कथा के अनुसार सुभद्रा का हरण उनके माता पिता की आज्ञा से हुआ, किन्तु इस उपरूपक में यह बात गुप्त है। हरण के सम्बन्ध में हमारा मतलब मात्र मिलता है। भाव्य भट्ट के सुभद्राहरण में एक दिव्य पुरुष के वरचस्व के लिये उग्रहार के माय आने का जो वर्णन है, वह भी मूलकथा में लुप्त है।

हम ऊपर उल्लेख का साथ हैं कि श्रीगदित कुछ लोगों के अनुसार पदार्थाभिनय (नृत्य प्रधान स्वरूप) और कुछ लोगों के मतानुसार वाक्यार्थाभिनय (नाटक प्रधान कृति) होता है। डॉ० बी. रायचन्द्र ने भोजपुरी शृंगार प्रकाश में उपर्युक्त श्रीगदित की परिभाषा को ध्यान में रख कर माधवभट्ट-कृत सुभद्राहरण की श्रीगदित के उदाहरणस्वरूप स्वीकार करने में कुछ मझोच प्रकट किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने यह निराय इस पदार्थाभिनय मानकर ही दिया है। यदि हम दण्डकार आचार्य विद्वत्बाबू द्वारा 'संज्ञित श्रीगदित' का चित्र सामने रखकर सुभद्राहरण पर विचार करें तो इसे श्रीगदित

- १- In the Subhadraharana of Madhava in Kavyamala 9, we have a specimen that calls itself expressly in the prologue an Uparupaka and Srigadita, but it has no feature answering to anything in the description of Srigadita noted above, in fact no characteristic feature by virtue of which we could identify it with any Uparupaka.

Bhoja's Srangara Prakasa by V. Raghavan. Page 547.

पत्या च विद्वत्पुत्रा वातव्ये ता कमादुपबभूवुः ।

श्रीगदितमिति यतीपिभिर्बुद्धानीदृशौ पदार्थाभिनयः । भोज ॥

- २- साहित्यदर्पण २६३-६४, पृष्ठ परिच्छेद ५० ३१८.

सदाहरण मानने में कोई आपत्तिजनक बात दिखाई नहीं देती। प्रमृ-
हिलक्षण में बतलाया गया है कि श्रीगदिन की न्याय स्वतः प्रसिद्ध होनी
‘‘है। श्रीगदिन नायक और नायिका भी सुप्रसिद्ध होनी चाहिये। श्रीगदिन
।’’ इन्द्र और भागीरथी में युद्ध केवल एक एक का होता चाहिए। गर्भ
। जिस में गर्भ के भी हममें मन्त्राभाव होना चाहिये। भागवतमृ के
ज्ञाहरण में वे सब गहरा समर्पण है। हमकी उपा है—मुमद्रा का हरण।
ज्ञान प्रसिद्ध प्रज्ञान न दक है न दिका मुमद्रा भी महाभारत और भागवत
रहित होने के कारण प्रयत्न है। इन हमकी गति में मन्त्रेह नहीं होना
है। नायक का श्रीगदिन प्रमृत्त एकाकी में प्रकट होती है। प्रज्ञान बहुत
श्रीगदिन महान्तर्गत मित्र और अज्ञान प्रमृत्त एवं द्रव्य ध्वनि है।
श्रीगदिन के साथ साथ यह विमल मन्त्र से मुक्त भी है। हमकी नायिका
। श्रीगदिन प्रसिद्धा वन्या है। श्रीगदिन रम्य अङ्गी है। कवि ने नान्दोपाठ
इसके सुख रम के इन्द्रुल्ल नखरममय भगवान् शकर की स्तुति करके रम-
न में करने काचित्य का सिद्ध किया है। पारवी शृङ्गार, धनुष में वीर,
ने न हार्य ‘वृत्तान्ताना में वीर्य, मयराज में मय नर्तकों के कौटिल्य से
इ, अनन्त या रति में वास्य, नेत्रों में मूयचन्द्र जैसे तेज और अग्नि में प्रदु-
। तथा प्रदने वित्त में शान्त रम को प्रकट करने वाले नवरममय भोगेनाथ ने
वे भक्तों की रक्षा करने की प्राथना करता है।

शृङ्गार हैवत्या प्रथयति धनुषा वीर्यामेन हाम्य
वीर्याम नवरममयमहिपतिनाभूविजृम्भेण रोद्रम् ।

शान्त विरति भूयात् नवरममय. शकर. शमले व ॥

। मन्त्रमय वचनों के उच्चारण के उपरान्त शृङ्गार—सक्ति मुमद्राहरण
एक का प्रारम्भ होता है। काम किम प्रकार प्रसिद्धों के हृदयस्थ भावों को
सारता है हमें मुमद्रा की शृङ्गार में धीन-प्रोत पक्षियाँ व्यक्त करती हैं—

वसन्त नयन निरङ्कुशो मदनः वातरमङ्गनामनः ।

सुभिः समया नव वयः प्रथम प्रेम किमालि साभ्यतम् ॥^१

पर्याप्त—ह मखि । मेर नत्र चञ्चल हैं, मेरा (हृदयस्थ) मदन निरकृश है, मेरा नारी मन कानर है । वसन्त का समय है । मेरी युवावस्था है और प्रेम का यह पहना ही अवसर है । तेरी दशा में सग्न, तू ही बना, मैं क्या करूँ ?

नामन अर्जुन भी सुमद्रा के अलौकिक मोन्दर्य को देख कर डगे में रह जाने हैं—यह निश्चय नहीं कर पा रहे कि उसकी उपमा किसे दी जाय ?

अर्जुन — (पुरोऽवलोक्य महर्षमात्मगतम्) अहह, अदृष्ट—पूर्ण सौन्दर्यातिशय । तयाहि ।

ब्रदीय श्रीरिन्दो कथमिह तदा मत्रविलसे—
 त्रभेष भानोदचेदमृतरमवर्षे न वलयेत् ।
 स्फुरन्ती गेहेऽस्मिन्न च तडिदिव मेघविरहा—
 क्षनो मन्ये दृष्टेमम मुहूर्तत्तलीफलमियम् ॥^१

अर्थात् यदि इमे (सुमद्रा को) अन्त्रकान्ति कह तो दिन में कैसे विद्यमान हैं, यदि भानु की प्रभा मममें तो वह अमृतवर्षिणी कैसे हैं, और यदि विजली मानें तो मेघ के बिना इसका घर में धमकना कैसा ? इन सब बातों को असम्भव मान कर हम अपनी दृष्टि की पुण्य लतिका का मधुर फल समझना ही उचित है ।

तेरी सुन्दरी के प्रति आसक्त अर्जुन की विरहावस्था में बड़ी दुर्दशा हो जानी है । विद्योमी नायक की दयनीय मनोदशा का वर्णन करके कवि ने विप्र-
 खम्भ श्रुतगार को भी अपने काव्य में ध्यान देकर कृति का महत्व बढ़ा दिया है ।

अर्जुन—ह तत्त, तस्या दशनात्प्रभृति—
 मीत्य नैन यदद्य भर्मरदला जायन्त एते दुमा
 शुष्काभ्यामि मगमि मनिविवसात्कि चान्यदप्यद्भुतम् ।
 दीर्घोच्छ्वासापरस्परपरिचयान्मृच्छन्ति वाना यत—
 म्नाथ कीदृशय ममात्मममुना हा धिग्निवेऽविच्छिन्न ?

मर्तुन - सीतना कहां से आ मकनी है ? जबकि आज वृषों की पत्तिदी मृग रही है तानाब मूवे हैं और मेरे आ-आर जो सज्जन नरन वाचों हवाएँ भी गरम गरम बह रही हैं ।

मङ्गी शृङ्गार के अतिरिक्त इसमें हृम्य, करुण जैसे अन्य रस भी पोषक के रूप में विद्यमान हैं ।

नेरम्य से किसी बन्दर के उपात मचाने क सनाबार मुनकर रञ्जयं मर्तुन से प्रापना करने हुए और बङ्गा के मुख से निकले मोबिदुस्त अलाप बारन हास्य की सृष्टि करन में सम्य है^१—

उच्चैः सद्म विलङ्घयन्पहरन्नागमुत्तेकरा
नद्राशिभुवचाननंविबलन्नागत्पुन्र्मोचनम् ।
साडून् अमयन्नुदयशानान्निमिष्य-कोवाहम
कुवन्नुदमदगणितानसरा कीरोन्निमुत्तपंति [न्यामोन्निमुत्तपंति]॥

बलदेव—कद व्यास ?

औरग—नहि नहि स्वामिन् चानवशात्करणानादव मन आदम् ।
हिन्दु कीरोन्निमुत्तपंति ।

बलदेव [महामन्]महोवाचैव भीरवोवाह्यग्रा मदेन्नेत्तेनैव निमित्तेन विम्वति ।
[पुन्र् कोव नादित्वा मदम्बनितेन] तयारि कृ कुव स स पाठि
[नजस्मिन्ममिकनम् ॥]

कि कृष्ट्वा हृषेन हन्मिन्नुवेनाग्निम् मृद्वामि वा
कि वा त चुचुचुणंमि मुनसंभजेन चुराभिनम् ।
कि वीर्जपवगात्रे ससकल सनादेनुद्वृत् ।
कि वा तेननिमीचु पूरय पनामात्र विवामि सारम् ॥

अपारि क्या मैं उनको हत से खींच कर पार डालूं ? अथवा पकड़ कर हाथ से मन दूं ? या मुनचन्द्रार से चूर्ण की तरह चूर-चूर कर दूं ? या बड़ी जंवारों से

जमीन पर पटक दें या किसी पात्र में भर कर पी जाऊँ ? इस प्रकार वनराज द्वारा ब्राह्मणों की भीरुता पर कटाक्ष किया गया है। श्रीहृष की रत्नावली के द्वितीय प्रह्म में उत्तमानी वन्दर का दरान मुषमाहरण के इस विवरण से भिन्नता मिलता है।^१

निरन्तर कायरन रहने के कारण बचान्त जनता समय-समय पर उत्सव मनाकर अपना हृदयावजन किया करती है। इन एव छूटी उलझत में भी कवि न कमन्तोत्सव के मनाए जाने का उन्नेय किया है। बहुत घूले के घर-घर में उसकी तैयारियों जोर जोर से होने लगती हैं। यह प्रसंग कवि की वरुण शक्ति का घोषक है—

वसदेव (इति श्रुत्वा वीथ महरन्तर्वनोऽप्रलोचय । स्वगतम् ।) वय वनन्तो
त्ववारम्भः । वन

अद्भुतान्ते विचित्रा प्रनियदुमवन केतुवद्धा पनाका^२ ...

मनुष्यों के घर घर में रग दिरली पताकाएँ फहरा रही हैं कैला के लम्बों से मुमग्निजत द्वार पर जलपूरा मंगलकलश रखे जा रहे हैं, स्वर्णलिकारों से मण्डिता कन्यकाएँ नए कौतुम्भी वस्त्र धारण किये हैं, माताकार टनवन के बूझों को काट छोड़ कर सँवार रहे हैं। कोई बनिता मुगन्धिन पुष्पों का हार बना रही है, तो कोई धोखण्ड के जल से केसर की पिण्डी घोल रही है और कोई ली वीलादि बाण सजा रही हैं एव कोई महिमा खाट और मंदिर तैयार कर रही है तो दूसरी वस्त्रों को रँगने में व्यस्त है। ऐसे ही वातावरण में अर्जुन मुषमा का हरण कर लेने हैं।

मवात्यन्वाग्रमानाना योषितामिह मूषत ।

हरिणीनामिव अष्टा भानि कुम्भा मूषीव मे ॥

(इत्युपसृत्य ता पाशौ गृहीत्वा रथमारोह्यत् ।)

साध्वस मपदि मुन्दरित्यत्र स्नेह-भावनममु विलोक्य ।

अञ्जनोऽस्मि धारणायिनामह रक्षिता द्विषद्विस्त-मृत्युभू ॥^३

१- रत्नावली, द्वितीय प्रह्म २ (चौवम्भा प्रकाशन) पृ० १५.

२- मुषमाहरण-१८-१९ पृ० १६, २०.

३- मुषमाहरण, २८-२९.

इस समय उसकी प्रेमिका सुमद्रा के मन की विचित्र गति हो रही है। एक ओर अपनी ईप्सित वस्तु के अकस्मात् मिल जाने पर उसे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है तो दूसरी ओर उसके भाई बन्धु इस घटना को सुन कर उसके विषय में क्या कहेंगे ? यह आशङ्का भी उसके मन को जला रही है। ऐसी परिस्थिति में वीर अर्जुन के मुख से उसके लिये निकले आश्वासन के वचन बिल्कुल स्वाभाविक प्रतीत होते हैं।

अर्जुन-प्रिये मा विभेहि । पश्य ।

प्रानीतो दारुकेणाय कृष्णस्यैवाज्ञया रथ ।
तत्प्रीरथा रौहिणेयस्तु रोषं विफलमिष्यति ॥ १

इसमें कवि ने प्रयोगातिशय द्वारा प्रस्तुत आमुष्य में चतुर्थ आश्रम संन्यास की उत्तम बतलाया है और उसकी समानता राज्य के साथ दिखलाई है।

अर्जुन-अहो चतुर्थश्रमं किमपि परमानन्दनिधानम्^१ । येनात्र
गाना कौमुदसौतभिष्युपवने सख्य सुखैर्मार्स्तै-
र्भक्ष्ये भोज्यहविः सद्योपनिषदि प्रीतः प्रियायापरा ।
मौहित्य सरसा जलं मुलभया भूज त्वचाच्छादन-
निद्रा निमंल-संक्रान्ते किमपरं राज्यं स्वतन्त्रं स्थितिः ॥

अर्थात्-अनेक पुष्पो से सुवासित वन-उपवनों में सुख देने वाले पवन से सख्यभाव, भिक्षाग्न में हवि, उपनिषदों में अपार प्रीति, तालाब के जल से तृप्ति, बरवत्तवस्त्र स्वच्छस्निवतामयरथान में निद्रा, और जहाँ स्वतन्त्रता की प्यारी बहार रहती है, वह विस राज्य से कम है, अर्थात् दूसरा राज्य ही है।

गृहे गृहे गृहस्थानां बृहन्तो ब्राह्मणवृद्धम् ।
अपीडया तत इताभ्यां वृत्तिर्मायिकरी मुने^२

अर्थात्-घर घर से बिना गृहस्थों को पीडा दिये प्रतिदिन अन्न प्राप्त करने हुए अमुकरी वृत्ति अपजन्ता मुनिजनो के लिये उत्तम है।

१- सुमद्राहरण ३०, ३२, पृ० २८-३०

२- सुमद्राहरण ३०

३- सुमद्राहरण ८

यन्निवेशपारी नायक धनुंन के लिये तो यह वेष्ट मानो वरदान ही है । छन से बने सन्यासी धनुंन को जब यह धाथम इनना मुखशायक है तो वास्त-
विक यन्त्रियों के आनन्द का क्या कहना ? उनके मुख का सहज ही अनुमान
किया जा सकता है ।^१ कवि की यह मौनिकता है । अपने इस दृश्य को
नाटक में स्थान देकर इस कथा में चार चांद लगा दिये हैं । अपने यन्त्रियों के
प्रति कवि का भी आदरभाव प्रकट होता है । इनकी सुंदर एवं सरस रचना-
रीति को देखने हुए कवि की घरने विषय में कही गई यह उक्ति असत्य नहीं
प्रतीत होती—

ततिरिष फणिल्लया केवलना दसाना
यदपि रुचिनिदान गुम्फना मे न बाधाम् ॥
तदपि रस-शुणानामार्द्र-पूणी-पलाना
मिव मुहुरनुषङ्गाद्रज्जनायसभैव ॥

दान-केलि-कौमुदी

हम श्रीगदित के अतिरिक्त चौदहवीं शती के अन्त में प्रसिद्ध संस्कृत
प्राच्य रूपगोस्वामी ने दानकेलिकौमुदी नामक एक सधु कृति की रचना करके
संस्कृत ग्रन्थों में उल्लिखित भाषिका नामक उपरूपक के क्षेत्र को उर्वर किया ।
इसके अतिरिक्त भाषिक का अर्थ कोई उदाहरण नहीं मिलता । अब यह प्रका-
शित हो चुकी है । हमने राधागोविन्द की दानसीपा का विस्तारपूर्ण वर्णन
किया गया है । इनके शिष्य रघुनाथदास ने इनकी दानकेलिकौमुदी पर टीका
भी लिखी थी । हस्तलिखित पोथियों की तालिका का निरीक्षण करने पर इनकी
दानकेलिकौमुदी का कुछ अंश देखने को मिलता है । यथा—

नमो ब्रजयुवराजाय ।

अन्तस्मेरतयोज्ज्वा जसकलव्याकीर्णं पद्माङ्कुरा
किञ्चित्पाटलिताञ्जला रसिकतोत्सिका पुन कुञ्चनी ।

शृङ्गाया पथि माधवेन मधुरलता भुगपादोत्तरा

राघवीया किलकिञ्चित् स्वरसिनी मृदा शिव व क्रियात्-॥—

सप्तम अध्याय

(बीसवीं शताब्दी के संस्कृत एकांकी)

बीसवीं शताब्दी के एकाङ्की

युग परिवर्तन के प्रवाह में ससार की रुढ़ियाँ विनष्ट होती जाती हैं तथा नई पद्धतियाँ उनका स्थान ग्रहण कर लेती हैं। नाट्य क्षेत्र में एकाङ्कियों के पुनरुज्जीवन का भी वही रहस्य है। हर्ष की मृत्यु के बाद भारत के विदेशी आक्रमणों द्वारा जर्जर हो जाने का प्रभाव उसके साहित्य पर बहुत अधिक पड़ा। अतः प्राचीन नाट्य कृतियों में जहाँ हम समृद्ध-समान का मनोहर रूप देखते हैं वहीं मध्य युग (ईसात्तर १२ वीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक) के साहित्य में हम पतनोन्मुख भारत का चित्रण पाते हैं। इस युग में रसिक कवि समुदाय कामसूत्र के रङ्ग में रक्षित उत्तानशृङ्गारमय काव्य धारा में प्रवाहित देखा जाता है। मध्यकालीन भाषों एवं ग्रन्थों में इसी प्रकार का काव्य दृष्टिगोचर होता है।

सदियों पहले रचे गये भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र के आधार पर भारतीय नाट्यधारा समसामयिक सामाजिक वातावरण से प्रभावित होती हुई प्राग भी प्रवाप गति से चली आ रही है। बीसवीं शताब्दी में भी इस स्रोत में बहते हुए सत्कृत सेवी-ससार को हम पूर्वोक्तित एकाङ्की भेद (भरण, प्रहसनदि) की रचना द्वारा प्राच्य-परम्परा का पालन करता हुआ पाते हैं। शैली की दृष्टि से इन आधुनिक एकाङ्कियों के साधारणतः दो वर्ग किये जा सकते हैं। (१) प्रथम वर्ग के लघु नाटकों में नाटककार ध्रुव भी प्राचीन नाट्य-कला के आदर्शों का यथासम्भव पालन करते देखे जाते हैं। आज भी इस शैली के पोषक नाट्य-

लेखक अपने रूपकों के लिये पुराणेतिहासदि से कथा वस्तु का ग्रहण करते और भावस्यक्तानुसार उसमें हेर फेर कर देते हैं। उदाहरणार्थ श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी द्वारा रचित सावित्रीनाटकम् का नाम लिया जा सकता है। (२) पश्चिम से भारत का सामाजिक एवं धार्मिक सम्बन्ध स्थापित होने के फलस्वरूप द्वितीय वर्ग के नाटकों की आकृति बदली-सी दिखाई देती है। प्राचीन शास्त्रीय पारिभाषिक सज़ाओं के अभाव में इस कोटि के एकाङ्की नाटकों के लिये एकाङ्की नाटिका या सामान्य दृश्यकृति के अर्थ में प्रेक्षणक अथवा नाटक पद का ही व्यवहार होने लगा है।

रेडियो रूपक

संस्कृत नाटक की नवीनविधा रेडियो रूपकों की है जो प्रायः एकाङ्की ही होते हैं। यह विधा धीरे-धीरे विकसित हो रही है। मद्रास से प्रकाशित होने वाले "श्री संस्कृत रङ्ग" (एन्युघत्त) नामक पत्र को देखने से ज्ञात होगा कि "आपाठ्य प्रथम दिवसे" जैसी छोटी एकाङ्किकाएं आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित होती रहती हैं।

संवादमाला

संस्कृत-नाट्य की एक अमिनव विधा "संवादमाला" का विकास भी श्री आनन्दप्रधान रामचन्द्र रत्नपारखी के सहयोग से हो रहा है। इनकी "संवादमाला" शीर्षक रचना १९५७ ई० में रची गई थी, जिसमें निम्नाङ्कित तेरह संवाद हैं—जयदेव पद्मावतीयम्, कौन्तिनाक्षकोपटिकीयम्, सहस्रपत्रकहित-मोचकीयम्, उपस्थितिपुस्तिकाप्रणाल, निष्कूलशुल्कनृत्तकीयम्, आश्रमसन्धि, कपिशलकमंडिकीयम्, कामनिलयवेलावसानम्, नीलकण्ठमञ्जुहासिनीयम्, करहाटककलकिङ्किणीयम्, कपित्थककरमर्दिकीयम्, कर्णिकारपरिव्याधकीयम् तथा मकरन्दकमन्दारमालीयम्। ये संवाद आनन्दप्रद हैं। ऐसे संवाद वन श्रविकाओं में प्रकाशित होने ही रहते हैं।

अनूदित रूपक

धार्मिक, वंगला जैसे साहित्यो के क्लासिक-ग्रन्थ नटकों का सम्मूह में रूपान्तर करने की परम्परा भी अब चल पड़ी है। यहां एक ध्यान देने योग्य बात है कि संस्कृत की नाट्यकला स्वतन्त्र रही है और अनुवाद बाद की वस्तु है जबकि हिन्दी, बंगला आदि अन्य भारतीय भाषाओं में नाट्य का आरम्भ ही अनूदित कृतियों से हुआ है।

वर्तमान युग की बदलती परिस्थितियाँ:

वर्तमान युगीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियाँ प्राचीन युग से सर्वथा भिन्न हैं। जिस प्रकार आज प्राचीन षोडशस्वारी में युग के प्रभाव से पुरानी कठुरता एवं विस्तार के बदले चदारता तथा संक्षेप को स्थान मिल गया है उसी प्रकार साहित्य-जगत् में भी पूर्ववासी शास्त्र-सम्मत कठोर नियमों के पालन में धीरे-धीरे ढीलापन आ गया है और उसकी यह प्रवृत्ति अकारण नहीं है। रस की भूट के लिए क्यावस्तु के विन्यास के प्रसङ्ग में बीच-विन्दुपताकादि के जटिल नियमों की शिथिल करने का निर्देश साहित्य-दर्पण में है।^१ वर्तमान शैली के संस्कृत नाटकों में नाट्यतन्त्र की जो सिध्दिकता दीख पड़ती है उसकी प्रेरणा आधुनिक नाटककारों को यही मिलनी चाहिए। आज की साहित्यिक-कृतियों के आदर्शों में भी इसी कारण अन्तर आ गया है। अब मानव-जीवन पहिले की अपेक्षा अधिक मध्यममय हो गया है। अब मनुष्य के सामने प्रतिदिन उद्य-रूप धारण करने वाली रोगी रोटी की समस्या पिशाचिनी की भाँति भयावह रूप लिये खड़ी रहती है। इससे बचने के लिये वह अपनी शूलठमी को भी धनोपाख्यानार्थ घर से बाहर भेजकर उससे सहाय्य प्राप्त करना चाहता है। घर और बाहर दोनों दोनों के उत्तर दायित्व को संभालने के कारण महिला अपने परिवार की देखभाल ठीक ठीक नहीं कर पाती। कार्य-भार से दबी हुई नारी का स्वभाव अदृग् हो जाता है और इस कारण उसके प्यार के झूठे बच्चे बियड़ जाते हैं। इसका उनके चरित्र गठन पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप शृङ्गार-प्रधान नाटकों में भी माधुर्य एवं मारुत के स्थान पर दरपना और दूरता की छाया मिलती है।

संस्कृत एकाङ्की पर युग का प्रभाव:

आज पहिले की तरह केवल राजदरबार में या देवालयों के प्राङ्गण में सुदूर स्थानों से आए हुए प्रतिधियों के मनोरञ्जनार्थ ही रूपकों की रचना नहीं

१- अदभावे पलायनाऽऽदुःखस्तदभावे तथेतरम् ।

रसप्राप्तिमपेक्षया मङ्गलानां सञ्चिदेकानम् ॥

न तु नेकतया शास्त्रस्थिति-सम्पादनेच्छया ॥

अविच्छेद तु यद्वक्तुं रसादिव्यतिरेकैर्भावः ॥

तस्यैवमर्थेद् धीमन्त्र बदेदोऽपि नदधनः ॥ सा. ६, ९, ११४-२१ पु० १२२-२३

होती है। इनका उद्देश्य अब कुछ भिन्न है। अब लेखक शिक्षण-संस्थाओं के वाणिज्य उत्सवों और विभिन्न महापुरणों की जयन्तियों के अवसर पर अथवा किसी मुख्य प्रतिष्ठि के स्वागतार्थ अथवा रेटियों पर प्रसारणार्थ तथा पत्रिकाओं की ओर से माँग होने पर 'यशसे' और 'अथर्वने' समय निकालकर छोटी छोटी धर्मिण्य रचनाएँ करने लगे हैं। इनके पास नाट्य शास्त्र के पुराने सम्बन्धों के विधान के अनुसार नाट्य सर्जन के लिये समय ही वहाँ है? इस ओर जनता की रुचि भी वही रह गई है।

संस्कृत परम्परा के पुँधली पड़ जाने के कारण इन नाटकों की भाषा भी पुरानी शास्त्रीय-भाषा से भिन्न प्रतीत होती है। जहाँ पहले के नाट्यों में माहित्यसौष्ठव के दशन होते हैं वहाँ अब की रचनाओं में लेखक का उद्देश्य किसी प्रकार संस्कृत की जीवित रचना भाग दिखाई देता है। वे शिष्ट-समाज को दिखला देना चाहते हैं कि अब भी संस्कृत में कुछ लिखा, पढ़ा, सुना और देखा जा सकता है। जिस प्रकार हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओं के नाट्य साहित्य में अंग्रेजी के वाक्यों एवं शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा है उसी प्रकार संस्कृत भाषा की नाट्य कृतियों में संस्कृत को देशी भाषा के लक्षि में ढास दिया गया है। संस्कृत के विभिन्न देशों से भारत का सम्पर्क स्थापित होने के पलस्वरूप इन नवीन कृतियों में हम भाषा एवं भाव के साक्ष्य की भसक दिखाई देती है।—

लोक दिशामन्त्रायै त्रिपुण्ड्रदेशीयह्रस्वत्त्र परिणमयन्ती,
चित्र कुबन्ती साङ्गिभा सिद्धि

... ..
सृष्टि विज्ञाननवाम् अमयुनीम् पश्यन्तु,
मोविष्टदेशे त्वस्या विनियोयो दृश्यते ॥

विच...

विज्ञपरिवर्तिनीय विचित्रा विज्ञापि जागति ।

× × ×
गगनं च वायुवेगं यान निर्माय । गंगानाम्
अभिचार मज्जनयन् विज्ञानं जग्मते पुरतः
'रॉकेट' 'एटम' प्रभृतीन् वाणान् अभिमन्य विज्ञानम्
प्रकरणवरण-समर्थं विधिविज्ञानं विलोपयति ।

× × ×

‘रोदिक टेन्नीब्रिजने’ प्रयुज्य त भारत युद्धम्
राजे कथयति दिव्या दृष्टिं लोको वृषा मनुने ।^१

पाश्चात्य सम्प्रदाय के विवाह ने साथ सिनेमा, रेडियो-सेट, स्टीज, टेलीफोन वगैरे, चीनी मिट्टी की तस्तरों, चाय जैसी नवीन वस्तुओं का दैनिक उपयोग होने लगा है। उनके लिये भी संस्कृत में क्रमशः निम्नांकित शब्द गढ़ लिये गये हैं—

छायाचित्र, ध्वनिप्रतिग्रहयन्त्र, तेलज्वःलायन्त्र, दूरसम्भाषयन्त्र, वर्धमानक,
तदाभा रिका, कामरूपिकाकपाय ।

भाग, सजी, झंगोठी आदि के नाम भी देशी भाषा के अनुकरण पर ग्रहण किये गए हैं—

पद्मावती— शाक दृढ्यता शाकम् । वीरमेनक शाकम् । पुष्पमोजिह्वा शाकम्
ताम्रमण्टाकिफल शाकम् । पातक्य शाकम् । शाक दृढ्यता भी
शाकम् ।^२

आज के एकांकी रस प्रधान न होकर उद्देश्य प्रधान होने जा रहे हैं। भारतीय किशोर विचारियों के चरित्र गठन एवं बौद्धिक विकास के उद्देश्य से ही इनकी रचना हुआ करती है। अतः प्राचीन भाण एवं प्रहसन-साहित्य का परिमार्जित रूप साहित्य प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाने लगा है। एकांकी बड़े नाटक की तरह सम्पूर्ण जीवन को लेकर नहीं चलते। उनमें तो जीवन की एक भाँकी का प्रदर्शन होता है। जीवन की विभिन्नताओं को छोड़कर उसके ही अंग पर प्रकाश डालना एकांकीकार का ध्येय होता है। संक्षेप, सजीवता, कलात्मकता आदि में युक्त होता ही आधुनिक एकांकियों की विशेषता है। इस समय आधे घण्टे में भी कम समय में समाप्त होने वाले एकांक रूपकों की माँग है। इसकी पूर्ति के लिये आज भी मंच की दृष्टि में उपयोगी प्रेक्षक-नाट्यों की रचना जारी है। डा० बी० रामवन् द्वारा संकलित आधुनिक प्रेक्षकों की तालिका में भविष्य कृतियों में से बहुत सी रचनाएँ एकांकी ही हैं।^३

१- सरस्वती १०. १. ८

२- जयदेव पद्मावतीयम् . संस्कृत प्रतिभा - १९५६ १०. ६३

३- देखिये - A Bibliography of Modern Sanskrit Plays by Dr. V. Raghavan & Shri C S Sunderam

प्राचीन आलंकारिकों ने भी यज्ञिक काव्य के विषय की व्यापकता की ओर काव्य-रचयिताओं का ध्यान आकृष्ट किया था तथापि आधुनिक काल में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव में यह बात फिर ताज़ा हो गई है और हमारे वर्तमान नाटककार हमें अपनी ओर आकृष्ट करने वाले प्रकृति के नाना विषयों की भी अपने काव्य का स्वतन्त्रविषय बनाने लगे हैं। पुराने कवियों ने अपनी रचनाओं का विषय उच्च वर्ग के समाज की ही बनाया था। इसके विपरीत आधुनिक कवि बहुजन के प्रति महानुभूति का भाव लेकर रचते हैं। अनाथ राज के नाट्यकार की रीति उपेक्षितों की ओर भी गई है। इस प्रकार सामान्य व्यक्ति भी अब कवियों के प्रेम, श्रद्धा, दया आदि के पात्र होने लगे हैं।

हमारे घर बना और उद्देश्य दोनों के दो घनव भेद स्वीकार कर लिये गये हैं। अब उन्हें रामादिबद्ध वर्तितव्य न रावणादिवन् इत्यादि वाक्यों द्वारा स्पष्ट उद्देश्य नहीं रचता और न पाठकों में इन्हें ग्रहण करने की क्षमता ही रह गई है। लेखक और पाठक का दृष्टिकोण अब बदल चुका है। “न दुष्मान्त नाटकम्” के कठोर नियम को भी आधुनिक कवियों ने छोड़ देने का परामर्श प्रयत्न किया है। दुःख-प्रवण वियोगान्त हस्य काव्यों (Tragedy) में भी उन्हें उतना ही आनन्द प्राप्त होता है, जितना मुन्ताज़ों में। भवभूति ने पहले ही वर्णन रम के मर्म को समझ लिया था, जिस धरम्भू और उनके अनुयायी पाश्चात्य कवि अब आनौचक कुछ ही पङ्क्तियों में जानने और समझने लगे हैं।

उपलब्ध आधुनिक एकांकियों की नाममाला में जो भिन्न होता है कि आज सधु नाटकों के विषयों का धर्माव नहीं है। नवीन रचयिता अपनी कृतियों के लिए आलम्बन का चयन वास्तविक जगत् में करता है। वहीं साम-बहू की लड़ाई का चित्र देखने को मिलेगा तां कही गरीब विद्वानों की दयनीय दशा का। यथा—(प्रभावना तथा सम्भृत टीका के साथ) डॉ० बी० राधकृष्ण द्वारा सम्पादित इनासुर मुन्दरराज कवि ‘सुपावित्रम्’ का नाम लिया जा सकता है। हमें लेखक ने सुष-सुष में चने आ रहे साम-बहू के ऋग्वेदों पर भनोर्वजानिह दृष्टिकोण में वयम्भू मौ तथा नव-बहू के विचारों में अमामभ्रम्य के कारणों पर प्रकाश डाला है तथा नर-नरै धर का कुल कार्य-भार धर की धारियों के माय मुण्ड बहू के हाथ में किम प्रकार आ जाता है, यह भी बतलाया है। श्री खोड स्कन्दनर प्रणीत एकांकी ‘हा हल्ल आरदे’ में साहित्यकों की कटिनाद्यों का (अपनी पत्नियों तथा बच्चों के साथ सधप का) पारिवारिक चित्र देखा जा सकता है। इसके उनकी रचनाओं का कुछ भी

महत्त्व न समझने वाले उनके बन्धुओं का पारस्परिक संधर्ष है। इस दृष्टि में संगीत को भी स्थान दिया गया है। इसी प्रकार ए० आर० हेबरे के दो हस्तों में विभाजित एकाकी "मनोहरम् दिनम्" में द्रष्टा को छुट्टी मंगने के लिए चालाकी भरी युक्तियाँ लढाते हुए नन्दे-नन्दे विद्यार्थी दिखाई देते हैं।

कभी मदेरे से ही आपस में जाने के लिये तैयार बावू साहब के नामों के लिये मेम साहिब साइकल पर जाते हुए टबल रोटी वाले के लिए भाड़ा सगाती मिलेंगी—

नवदेहली (नेपथ्ये)

पुरोडाशा गृह्यता पुरोडाशा । सहैयङ्गवीना पुरोडाशा ।

+ + +
पद्मावती (स्वगतम्)—मस्तु । अथ पुरोडाशविज्ञप्तिको गच्छति ।
तत्र ह्य नेचन पुरोडाशा हैयगवीनच गृह्यन्ते । एतदेवाद्य प्रातराशाय
भद्रतु ।

(शय्यामुज्जिताया प्रकाशम्) अयि ओ पुरोडाशविज्ञप्तिक, इत एहि ।^१

कही अपने उद्धार की कामना करने वाली नारियों के भी दर्शन होंगे ।^२

नवयुवक। में धीरता तथा देश प्रेम की भावना भरने के लिए विदेशियों से होने वाले युद्धों के बल से युक्त ऐतिहासिक एकाकियों की रचना भी होने लगी है। पौरवादिग्विजय रूपक एक ऐतिहासिक एकाकी है ।^३ सिकन्दर द्वारा भारत पर आक्रमण की ऐतिहासिक घटना और यौरस द्वारा अथ भारतीय राजाओं की महायता में यूनानियों को भारत भूमि से बाहर निकाल देने का निश्चय ही इसका वष्य विषय है । इसमें अतिकमुन्दर (सिकन्दर) के आक्रमण का समाचार सुनकर देश को उससे मुक्त करने के लिए परस्पर मन्त्रणा करते हुए गणनायक पुरु और तलशिला के राजा आम्बि का गथात्मक संवाद वर्णित है । अंज-पूरा उचित प्रमुत्तिमों से पुरु तथा अन्य पात्रों के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—

१— जयदेवपद्मावतीयम् — संस्कृत प्रतिष्ठा (प्रथम उन्नेय) प्रथमाविनायः एप्रित १९१६

२— देखिये— नारी (नामादिकम् नाट्यम्) लेखक गोपाल आर्य

३— लेखक— एम के रामचन्द्रराव, संस्कृत प्रतिष्ठा सन् १९६२ एप्रित द्वितीय उन्नेय प्रथम विनाय में प्रकाशित ।

आग्नि- न तावन्मन्ये मुकरमिदं महाराज । अमी यवना अजम्या एव ।
अन्य सन्ध्याया अपि सुमज्जिता । पदातिनोऽप्रविहृतसंरम्भिनः ।
अस्वास्त्या सर्वेऽपि महाशूरा, इतरे तु अनिरथ महारथा । एतेषां
दण्डनायको अतिक्रमुन्दरस्तु देवेन्द्र इव समथः । नैव जानाति परा
जयम् । अतोऽहं मन्ये महाराज । तं सह विग्रहोऽनुचिन इति ।

पीरव - आग्निराज । किमहं शृणोमि त्वन्मुखादेनानि वचनानि ?
जयोवा भवत्प्रपन्नो वा स्वधर्मं निषण्णं श्रेयः किल ।
युद्धराते एव तेषामपि शस्त्राभ्यासः । किं कुर्मः? समुदाय एव वतम् ।
अन्येऽपि यवनपक्षप्रवेशमनिच्छन्तो गणनायिकां द्रष्टुं अस्मान्
समागच्छतु ।^१

पीरव के वाक्या में गीता के अमर उपदेश भी छनित हैं-

“हृत्कोपा प्राप्स्यसि स्वयं जित्वा वा भोज्यसे महोम् ।”

डॉ० हरिहर त्रिवेदी के बीररत्न-प्रधान एकांकी नागराज विजय^२ का विषय भी इतिहास प्रसिद्ध है । पद्मावती नामक किसी देश का नरेश नागराज कुशानों को भारत में छेड़ेंना चाहता है । इसके लिये वह अन्य राज्यों का सहयोग चाहता है । उनसे उसकी मित्रता की बात जानकर कुशान लोग स्वयं भारत से भाग खड़े होते हैं । रणनेत्र ने नागराज की सेना द्वारा युद्धित भयकर रणभेरी को सुनकर शत्रुओं के भाग खड़े होने के कारण तथा बिना रक्त-पात के विजय प्राप्ति से हर्षोन्मत्त यौधेय का हृदय अहिंसा की प्रस्ताव के साथ भीति रहित गणराज्य की स्थापना की शुभ-कामना करता हुआ वा चठता है-

यौधेय- देवि, एतन् सर्वं जित्वा भारततस्मींस्वरुणया तवैव प्रसाद-
यदात्मिन् स्वतन्त्रताश्रयि विनैव रक्तपातमस्माकं विजयनाम् ।...
अयतनरा भरतावनिरस्या
ईनिभीतयो यातु विनाशम्,
निष्ठिरविक्रता यातु रुक्मानम्,
सत्परमं परिपूरितमाया प्रणिपदमेतु विनाशम् ॥
सत्यामोषधमनरुणोभिः सर्वोद्यमबन्धुषा ।
पूर्णां भवतु मनीषा ॥...

१- समृत प्रस्ताव पृ० ८१

२- समृत प्रतिभा पृ० १६६० अष्टादश शतक की इति - द्वितीय उल्लेख

श्रीसम्पन्ना भारत मूमि को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने की भावुर नायक नागराज में धीरोदात्त गुण विद्यमान हैं। उसने हितैषी सहायक भीर सशस्त्री से लोहा लेने को उद्यत हैं। वे निवृत्त कुशानों की भी उपेक्षा नहीं कर सकते क्योंकि भाग की छोटी सी चिनगारी भी बड़े से बड़े जंगल को भी जलाकर भस्म कर सकती है—

स्फुलिङ्ग पाष्ठयोगेन दहत्येव महावनम् ॥

मालव — अरिश्च ।

उन्मूलनमराठीना तुवर व्यसने श्रुनम्

नदीवेगक्षीणमूल सुलमुत्पाद्यते वर ॥

स्वभाव से पातश पानी के प्रति बहे गये उसके वचन धीरता को प्रकट करते हैं।

देवी—विजयता महाराज ।.....

स्त्रीस्वभाव—पातर बेपते में हृदयम् ।

नागराज — आर्ये भगवत्वेलायामल शङ्कया ।

मुढ सलु उसेव क्षत्रियाणा विशेषतश्च सर्वाभ्युदयहेतुकम् ।

अधुना प्रत्यासीदति प्रमाणकान् ।

तदनुजानीहि मा प्रस्थातुम् ।

नवीनतम रचना होने पर भी इसमें भाषा—सौन्दर्य देखने को मिलता है। प्रसंगानुसार कवि अपनी भाषा प्रकाश शैली को बदल देने में दक्ष हैं। इनके गद्यांश में प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं तो शिवजी की स्तुति एवं मुढ का विज प्रस्तुत करने वाले कतिपय दशकों में शोज—युक्त समासबहुला वाक्यावली का प्रयोग हुआ है।

...

...

...

नमामि चन्द्रदीप्तर वृषभ्वजपुरान्तक

ललाटेनेत्रनियताग्निदग्ध—पुष्पसायकम्

अकिञ्चन स्वसेवितामशेषसौख्यदायक

हिमाद्रिराजकन्धकापति नटेश्वर भवे ॥

आधुनिक एकाङ्कियों में प्राकृत का बहिष्कार—

इसकी नायिका प्राकृत का प्रयोग न करके शुद्ध संस्कृत में ही भाषण करती है। संस्कृत रूपको में उत्तररत्नचरितादि की आश्रयी जैसी ब्रह्मादिनी

तथा देशाओं एवं सम्प्रदायों आदि विविध कोटि की नारियों को छोड़कर जो वैदिक्यप्रदसंनयं संस्कृत बोली है, प्रायः स्त्री-भावों द्वारा संस्कृत का प्रयोग निषिद्ध है।^१ प्राचीन स्वरूपकार बहुत समय तक इन नियम का पालन करते रहे हैं, परन्तु नूतन रूप-प्ररोध आज के युग की रवि के अनुकूल अपने गरी-पावों से प्राकृत का प्रयोग न करवाकर शुद्ध संस्कृत में ही मथरा करवाते हैं, क्योंकि अथ प्राकृत की अनेक संस्कृत का उच्चारण करना भ्रम प्रतीत होता है और संस्कृत में रुपाय करवाना भी पढ़ी लिखी स्त्रियों के मुख में उचित लगता है। वसाहरण के लिए प्रस्तुत उक्त नाटककार के नामराज-विषय की नायिका के ये संस्कृत-वर्णन वाक्य प्रस्तुत हैं—

देवी-विनयना महाराज । कुंडैकरमो मवान् कश्चिन्मा
विष्मरहिस्त्वामिद्वगहनेवावाग्ना दव इष्टु प्रोत्साहयिन्नु व ।
अपि च, नाथ, जानामि ते ह्य सकल्पमगरिमि च व च ।
विन्तु, स्त्री — स्वमन्त्रातर देवने मे हृदयम् ।

भारतीय इतिहास के पन्नों को यह सुविदित है कि इस देश में राष्ट्रीय भावना का जन्म ही के समय में ही होने लगा था । २०वीं शताब्दी में देश के स्वतन्त्रता का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो गया । भारतीय युवकों में राष्ट्रीय भावना पुनर्जागरित हुई । देश-सेवा महत्वपूर्ण कार्य समझा जाने लगा । स्वदेश की रक्षा के हेतु माठियों की मार सहने या बन्दी-बूढ़ों की शोभा बढाने में आवासी के दीवाने अपना महोभाष्य मनभने लगे । आधुनिक संस्कृत-नाटक-एवं में भारत का यह चित्र भी प्रतिबिम्बित है । यहाँ भी नारायणमानसी, कङ्कर के 'स्वा-तन्त्र्य-यथावृत्ति' का स्वरण हो आता है । इन एकांकी रूप में मन् १९४२ की अंग्रेजी राज्य की दमन नीति के शिकार स्वतन्त्रता-अभ्यास की बलिबेदी पर अपनी आधुनिक देने वाले देश-भक्त युवकों के त्याग की कथा प्रदर्शित की गई है ।

१- पुराणमनेकाना संस्कृत स्पष्टतत्त्वम् ॥

शोरनेनी प्रत्येकमा तदुक्तं च येषाम् ।

येषां च येषां च येषां च येषां च ।

वैदिक्य प्रदसंनयं संस्कृत चन्द्रवर्णम् ॥

पण्डितशमाराव द्वारा प्रणीत "कटुवविपाक" का विषय भी सत्याग्रह के दिनों की अनेक दुःख घटनाओं में से एक है। जिनमें किसी परिवार के पुत्र या पुत्री सत्याग्रह के आन्दोलन में देश के लिये जीवनोत्सर्ग कर देते हैं। प्राचीन आदर्शों की भूल कर विदेशी सम्प्रदाय में रेंबी हुई आधुनिक महिलाओं के सामने सती, सीता, दमयन्ती, धनसूया, नर्मदा आदि प्राचीन स्त्रियों की कथा को याद दिलाने वाली रचनाओं को यदाकदा प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है। भारतीय साहित्य ग्रन्थ-मात्रा के सप्तम पुष्प "सावित्री नाटक" की रचना करके श्री रामकृष्ण मणि त्रिपाठी ने इस समस्या को हल करने का प्रयास किया है। हमारे मद्र देश के राजा अश्वपति की पुत्री सावित्री की अपने मृत पति के प्राणों को यमराज से वापस माँग लाने की जगत् विख्यात कथा वर्णित है। इस एकाकी में छोटे छोटे सरल वक्त्रों और दलों द्वारा यम एवं सावित्री का सार्वर्गणित संवाद प्रकट है। सत्यशान्, यम, नारद तथा स्त्री पात्र सावित्री, सबके सब अभिनेता संस्कृत का ही प्रयोग करने हैं। अन्य आधुनिक नाटकों की तरह प्राकृत का इसमें भी प्रभाव है। अन्त में पतिव्रता सावित्री अपनी अनोखी विचार-शक्ति, पति-भक्ति एवं वाक्यातुर्य से मृत्यु के देवता यम की भी परास्त करके उससे अपने पति को पुनः प्राप्त कर लेती है और इस भगलमय शास्त्र-वचन के साथ वह लघु नाटक समाप्त हो जाता है।

स्वस्तिप्रजाम्य परिपालयन्तौ
न्यायेन मार्गेण मही महीशा ।
गोब्राह्मणेभ्य धुभमस्तु नित्य
लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु ॥

हमकी अभिनेयता की क्षति पहुँचाने वाले वतिपक्ष बाधक तत्व भी हैं। यथा—

यमराज सावित्र्यै सत्यवत प्राणान् ददाति, सावित्री च हस्ताभ्या
सहर्षं गृहीत्वा ।

इत्युक्त्वा वेगेन तारामण्डले आरमानमनुगच्छती सावित्री इष्ट्वा । •

इन आपत्तिजनक नाटकीय निर्देशों से मुक्त होने पर भी संस्कृत एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति को जीवित रखने की भावना से रचित प्रस्तुत एकाकी का अपना विशेष महत्त्व है।

प्राचीन ग्रंथों के प्रतिरूप संस्कृत व्यङ्ग्य नाटिकाएँ भी लिखी गईं। यद्यपि इस कोटि के व्यङ्ग्य हमें सामाजिक, पौराणिक एवं चरित-विषयक प्रेक्ष्य-काव्यों में भी प्राप्त होते हैं, किन्तु स्वतन्त्र रूप से इसी विषय को लेकर लिखे गये एकांकियों का भी संस्कृत नाट्यकानन में अब अभाव नहीं है। अस्तु—

श्री के० धार० नायर की “अतन्त्रकर्मोपमम्” अथवा ‘आलस्यकर्मोपमम्’ नामक व्यङ्ग्य एकाङ्किका में विविध पात्रों ने लक्षणा से संस्कृत-भाषा, उसके साहित्य और कल्पना-लोक का अभिसूचन किया है। इसमें एक जीविका-रहित संसृजन के दरिद्र विद्वान की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। वह अपने परिवार को निर्धनता से मुक्ति दिलाने के लिये जब सेना में प्रविष्ट होने या वृषि धर्म में जुटने का उपाय सोच ही रहा था तब सहसा उसे एक संस्कृत पाठशाला में वृत्ति मिल जाती है।

श्री वेङ्कटाचार्य द्वारा लिखित ‘अमर्ष-महिमा’ में भी घरेलू तथा आश्रम सम्बन्धी सामान्य अनुभूतियों का नाटकीकरण किया गया है। रामचन्द्र नामक एक अधिकारी अपनी पत्नी भाग्यवती के प्रति भोजन न बनने पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठता है और क्रोध में भोजन रुक्ये दिना ही आश्रम चल देता है। वहाँ वह अपने निरपराध सहायक अधिकारी चन्द्रशेखर को बताड़ता है। परिणामतः चन्द्रशेखर पर पहुँचते ही अपनी पत्नी सरोज में भगड़ने लगता है और ऊपर सरोज अपने सेवक बालिका को सारी खोटी मुनासे लगती है। इस प्रकार ऊपर के उच्च अधिकारी से लेकर नीचे के सामान्य नौकर तक क्रोध की प्रतिक्रिया की शृङ्खला बँध जाती है। इसपर अमरेजी निबन्ध “मान सेङ्ग झोड” की छाया स्पष्ट है।

भारतीय समाज में प्रचलित “दाह-सम्कार” एवं ऐसी ही अन्य प्रथाओं पर भी आधुनिक नाटकों में व्यङ्ग्यात्मक प्रकाश डाला जाता है। श्री रवीन्द्र-नाथ ठाकुर ने “अन्त्येष्टि सम्कार” नामक ग्रंथ में श्री के० कमला से संस्कृत में अनुदिन किया है। इसमें बताया गया है कि एक मरणासन्न वृद्ध के पुत्रों ने अपने पिता की मृत्यु के समाचार को स्वविदित करने के लिये बहुत बड़ी तैयारी कर ली किन्तु चिकित्सक की धारणा के विरुद्ध उस वृद्ध ने पुनः स्वस्थ होकर अपने पुत्रों, मित्रों तथा उसकी अन्त्येष्टि के लिये एकत्रित हुए अन्य सब सम्बन्धियों को आश्चर्यान्वित कर दिया।

पुरप-पुङ्गव भाण

मन्त्र के न्नी पुरयो में पारस्परिक विचारों के स्वच्छतापूर्वक आदान-प्रदान की भावना के उत्पन्न होने पर ही भारतीय रहस्यों का उद्धार हो सकता है।

याधच्च धर्मजटना न परित्यजन्ति
तावन् तु नो भवति भारतन्धमन्यम् ॥^१

परन्तु इन प्रकार की स्वच्छन्दता की अधिकता उपहास का विषय भी बन सकती है। 'पुरप-पुङ्गव' भाण में यही बात बतलाई गई है। नाना नाट्य-कृतियों के प्रणेता श्री श्रीकल्याणतीर्थ का उक्त भाण तान्त्रिक दृष्टि में प्राचीन नाट्य शास्त्र में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार लिखा गया एक-पात्रीय रूपक है, परन्तु इनका विषय आधुनिक है। समृद्ध साहित्य-परिषद् के अन्तर्गत भारत-सोत्सव के अवसर पर अभिनय के हेतु रचित प्रस्तुत भाण में सर्व प्रथम वामन-रूपधारी विष्णु भगवान् की धूर्त नीलाम्बो का वर्णन करते हुए उनकी स्तुति की गई है—

वामनोऽपि मुमनो मनोहरो
मूर्धनिशुरपि धूर्तलीलया ।
अङ्घ्रिमात्रपदस्यही लस
नमः । व पुरपुङ्गवोऽयम् ॥^२

१ - पुरपुङ्गव, समृद्ध साहित्य परिषद्, कलिकाता

२ - पुरपुङ्गव समृद्ध साहित्य परिषद्, बोल्लूम ४०, अप्रैल १९६१, पृ० १७६-१८०

इसका विषय परदारसम है जो श्राद्धगारिक होते हुए भी प्राचीन भाषाओं के वेश-प्रसंग से कुछ भिन्न है। इस रूपक के बाग्वीर नामक नेता (नायक) का हास्योत्पादक धरित्र भी सूत्रधार के वाक्यों में अङ्कित है। उसकी वीरता वनिता-मण्डल में और धीरता बालमण्डली में ही प्रस्फुटित होती है। उसका नीतिवजन परपीडनाय गजन निरीह-आसनाय तथा कूट सज्जन जनवञ्चनाय होता है—

सूत्रधार — अरे । समापवति पुरुषपुंगवो बाग्वीरनामा । य विल नारीसदसि
धीरायते, धीरायते शिशुससदि, कीरायते च विद्वत्परिषदि । तनोति
नीतिवज्जनं परपीडनाय, करोति गजन निरीहआसनाय, कूटसज्जनच
जनवञ्चनाय । तदस्य पुरतो नेच्छामि स्पातुम् ।

इस छोटे से रूपक में बतलाया गया है कि पुरुष पर नारी सब के लिये लाला-मित रहते हैं और स्त्रियाँ भी परपुरुष के साथ कुछ दाय व्यतीत करने को आतुर रहती हैं। उमयहिमो के प्राणी एक दूसरे से मिलने के लिये बहाने ढूँढा करते हैं। कोई अपने कपड़ों के साथ चिपक कर चले गये कुशासन के तिनके को लौटाने के बहाने किसी स्त्री के पास जाता है, तो कोई रमणी अपना गुण्डल हँडती हुई किसी मनुष्य के पास आती है।^१ आधुनिक समाज में विशेष-कर विभिन्न समस्याओं में नाय करने वाले बहुत से स्त्री पुरुषों को ऐसा आचरण करते हम प्रायः देखते हैं जो इसे सम्यक्ता का एक अग्र समझते हैं। ऐसे समाज पर यह गहरा व्यङ्ग्य भी है।

एक पत्नी के रहते हुए दूसरी के प्रेम-पाश में बँध जाने पर जो प्रणयी अपनी पूर्व पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद करके अपने प्रेम-भायों को अपने अनुकूल बनाने को आतुर रहते हैं ऐसे नवयुवकों पर भी कहीं-कहीं आक्षेप किया गया है।

साम्प्रतिकराष्ट्रविधिना धाधित यथेच्छप्रवृत्तिप्रसरो मादृशपुरुष-पुंगव
किं करोतु, केवल विरहदुःखमनुभवतु । भो स्वयंवरायिनि सलने ।
त्वमपि सहस्रव क्रियतु-कालस्य कृते विरहदावानल-ज्वालाम् ।
विधि-परिवर्तनं सम्भवेत्, तदाह स्वयंवरा त्वा परिशील्य सुखीभवेयम् ।
वैदिक-विधिवत्सेनं गुरुजनं निर्वाचनफलेन च परिणीता मदीया पत्नी
कथमपि न विवाहच्छेदमङ्गोकरिष्यति । हा हत मे भाग्यम् ।^२

पुत्र पुत्रियों के विवाह के सम्बन्ध में अनुदार माता-पिताओं पर भी यहाँ व्यङ्ग्य किये गये हैं ।

इस भाण की भाषा सरल एवं प्राञ्जल है । स्वरूप में प्राचीन एक-पात्रीय रूप के समान होने पर भी, इसका विषय बाल्यनिक एवं घाघुनिक है । इसी लेखक की दूसरी कृति विवाह-विडम्बन प्रहसन में विवाह के तिथे भ्रातुर रतिकाम्ना नामक एक वृद्ध के बाधक्य को दूर करने के उपाय बताये गये हैं । वह अपने को युवक के मद्दश पौरुषधारी मानता है और किसी दम्पति की सहायता से विवाह करने के लिए तैयार होता है, किन्तु ग्रन्थ में वही दम्पति उसका भण्डाफोड़ करके उसके इस रा में भग्न दास देता है । विषयानुक्रम भगवान् शंकर के स्तुतिपरव श्लोक द्वारा सलेप में नान्दीपाठश्रिया के उपरान्त कवि अपने परिचय के साथ दो दृश्यों में विभाजित रूप का श्रीगणेश करता है ।^१ यहाँ कवि ने काली स्वाही टायलेंट पाउडर (पटवाम् चूर्ण) आदि के प्रयोग द्वारा इस प्रहसन के नायक को भरना विवृण्व रूप सँवारने की सलाह दी है । पाउडर जीम आदि के प्रयोग द्वारा रूपवान् वनन का निरयक प्रयत्न करने वाले बुरूप एवं वृद्ध सज्जनों पर य व्यंग्यवाण छोड़े गये हैं । वैज्ञानिक चिकित्सा शंकरनाथ का लोप हुए जीवन को पुन प्राप्त करने का मुस्ता चतुर्भाषी में निर्दिष्ट जरावस्था को नीची लेप द्वारा दूर करने की श्रिया बाध दिलाता है ।

शंकरनाथ भ्रमताम्—

केशकल्प कायकल्प कपिपक्षी निवेदनम् ।

कृत्वा धम्मसासमध्ये स्याद् वृद्धोऽपि तरलद्युति ॥ ० ॥

केशकल्पे पञ्चदशतानि, कायकल्प सहस्र पक्षीपजनेऽपि तथा ।

रति धनव्ययार्थं सज्जोऽस्मि धम्ममापक्षा न सम्भवति ।

पक्षकालमध्ये केशकल्प एवं चिन्त्यताम् । तेन किमविध्यति ?

तुलना कीजिए—

१- विवाह-विडम्बन, लेखक जीव न्यायतीर्थ संस्कृत प्रतिभा मरीच १९६१

सूचीप उभय, पृ० ७६

मुष्टुतावदनेन नीलीवम स्नानानुलेपनपरित्यन्देन जराकौपीनप्रच्छा-
दनमनुष्ठितम् ।^१

राग-विरागग्रहसन

पुरुषपुत्र भाए, विवाहविडम्बन ग्रहसन तथा अन्य रूपको के निर्माता जीवन्त्यापत्तीय का ही एक भार हास्यप्रधान रूपक संस्कृत प्रणिमा में ही प्रकाशित हो चुका है जिसका शीर्षक है 'राग विराग ग्रहसन ।' इसमें संगीत के शत्रु एक राजा के दरबार का प्रधान है। प्रजा के लिए यहाँ गीत गाना निषिद्ध था। राजा न समझता कि गन्धर्वालय वनसागर देस से बाहर निकाल देने का विधेयक बना रखा था। उन्व अनुचर एक गायक को पकड़ कर दण्डित करते हैं परन्तु इसी बीच गन्धर्वालय अपना मधुर गीत सुनाकर राजा के विचारों में परिवर्तन ला देता है।—

राज - राजन् । नन्दोय नामननीति परिवर्तनमेव मे महान् पुरा
स्मार । नाह तथा द्रव्यार्थो । वर निजुकोप्य नस्त्रियता सैनिकश्च
सम्मान्यता घनदातन । राजकुमारयोरङ्गभूषण अथवा यतेर्गन्धर्वसन
न विषोऽयितुमिच्छामि । उपहारदानप्रस्ताव एव नो गौरव
यदयमि ।

इस प्रकार उस युगल ने उह को चेतना प्रदान करने में समर्थ मधुर गीतों द्वारा युष्क हृदय राजा की संगीत के प्रति शक्ति को क्षणभर में दूर कर दिया। इन गीतों में काव्य का रमणीय रूप भी देखा जा सकता है। इन गीतियों में जयदेव कवि के गीत गोविन्द का प्रभाव स्पष्ट है।

गोपीजनगणवत्सलमे हे
वाद्य सुमधुरमुरली मुरहर
नलनाभयमपि दुरय सुन्दर
विश्ववरदकर-पत्नव है ।...

इस ग्रहसन की कतिपय पाठिकाओं में भर्तृहरि के किसी श्लोक का भावानुहरण भी उपलब्ध होता है।

वयस्य

एव जना वयस्यन्ति—

सयोनसाहित्य रत्नानभिज्ञ

प्रायः पशु पुच्छविपाराहीनः ।

चरत्यसौ किन्तु तृण न भुङ्क्ते

भन्ये पशूनामपि भाष्यहेतोः ।

तुलना काजिए—

साहित्यमयोतनसाविहीन

साक्षात् पशु पुच्छविपाराहीन

तृण न खादन्नपि जीवमान

तद्वनामपि परम पशूनाम् ॥

शृङ्गारनारदीय

रामायण- उत्तरकाण्ड के १७ वें मंत्र के प्रक्षिप्ता में वर्णित कश्यप-
रजसु की कथा तथा देवी भागवत के पाठ स्कन्ध के २७ वें अध्याय
में वर्णित नारद-विनाह एव नारद-स्त्री रूप वरुण के आश्रय पर श्री महाविषय
शास्त्री ने सन १९३८ में अपने शृङ्गारनारदीयम् नामक प्रद्युम्न प्रहसन में नारद
के स्त्री-रूप में परिणत होने की घटना का मनोहारी चित्रण किया है ।

.....य एषर्जराजो नाम वामि सुग्रीवस्यो पिता ।...उत्सुत्य तस्मात्स
हृदावुत्थित ध्वजः पुनः । तस्मिन्नेव क्षणे राम सुग्रीव प्राण वानरः ।^१

तुलना कीजिए—

नारद उवाच—

वाम क्रोशो तथा लोभो अत्सरो ममता तथा ।

महकारो मद येन जिता सर्वे महाबला ॥

राजपत्नीत्वमापन्ना मायाबल-विमोहिता ।

पुत्रा प्रसूना दहवो गेहे तस्य नृपस्य ह ॥^२

१- रामायण उत्तर काण्ड अष्टाविंश सर्ग पृ १३६

२- देवी भागवत-पाठ स्कन्ध ३६-४८ अध्याय २८

श्री भगवानुवाच

परम नारद सम्भीर सर मारसनादितम् ।

सर्वत्र एकजंशदन्त स्वच्छतीरप्रपूरितम् ॥

अम्भ म्नात्वा समिध्यान् कान्धकुब्ज पुरोत्तमम् ।...

दग्वोर से प्रकाशित अमृतवाणी (मन् १८४४) में भी स्त्रीरूपधारी नारद का चरित्र-चित्रण सरल गद्यमय भाषा में श्री पी० एस० दक्षिणामूर्ति द्वारा किया गया था। तिल्लपरिवनन के समाचार आए दिन पत्र-पत्रिकाओं में छपा करते हैं। ऐसी ही एक घटना का पट कर उससे प्रेरणा ले करि ने उक्त पुराण के एक में भविष्य विंगपरिवनन करने बाग पात्रों को क्षत्री त्रिपु-गुणा से जानबूझ कर इस लघु प्रहसन में प्रस्तुत किया है। परन्तु हयका अति-रक्षित चित्र उपस्थित करने का उन्होंने कहीं भी प्रयत्न नहीं किया है। इस कारण इनकी रक्षा-वस्तु दुर्दी रोचक बन गई है। विषय प्रवेश का टैग प्राचीन पद्धति पर आधारित होने पर भी अनोखा है।^१

मन्त्रमुक्तीन नाटका की प्रभावशाली में दूजे की योग्यता और उनके आश्रयदाताओं की प्रगति का दृष्टा बना कर किया गया बहुत पतला होता है, जिसका सुपरा हुआ मनोहर रूप हम इन तरीकें टुलिया में देखते हैं। इनमें प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्यिक छटा का एक नारदान पते है।

विद्वज् - धर्मिणि मे निद्र श्रीमहाविद्वांसं रवि ...

रि०-बाइम् । तच्च शृंगारनाट्यीय नाम प्रहसनमचिरनिर्निवम्।^२

इनमें मन्त्रमुक्तीन एव शृंगारनाट्यीय नाम का एक मन्त्रु गीतों को पट लवि है मगीत का प्रति अनुसंग का ज्ञान भी होता है।^३ यथा-

यहो विचित्रा मदनमय माया ...

इन्होंने नवन उपजाति नामक गेव छन्द का प्रयोग किया है। इन गीतियों में कवि की अद्भुत वर्णनाशक्ति भी दिखी है। शृंगार का सुन्दर एवं सघन वर्णन

१- शृंगारनाट्यीयम्, पृ० १

२- वही पृ० ४

३- वही १-१०, पृ० १-६

उपलब्ध होता है। नारद का स्त्री रूप में परिणत होने पर दुखी होना, ऋक्ष-
रजा नामक वानर का स्त्री रूपी नारद (रदना) के प्रेम में पड़ जाना, उनका
नारद से प्रत्यक्ष याचना करना एवं नारद का रुड़ होना आदि स्पष्ट नये
सामयिक हैं।^१

पुमान् रूपवती नारी नारी स्याद वाङ्मयीवता ।

मुन्दरी सरनिम्नात्वा यस्या ऋक्षरजा पति ॥

नारद - आ पापिच्छ, मरेंडपान, नारदोऽर शाङ्गाण ।

प्रथम - पुनः । त्रि मुधा चापत व्रजमि । शप्नोऽयि यदि परिम्यन्दम ।

ऋक्षरजा - (गोमशानम्) इम् नारद । कुतोऽनारद ?

नारदो रदना जानो देवर्षिर्विदुत्तमा ।

प्रथमा प्रथम पुनस्तन्मेवातुन्ना स्नुता ॥ ..

ऋक्षरजा के गढ़न वीछे पड़ने पर नारी रूपी नारद का छन में वानर म उन
मायावी सभावर में म मधुर जल खाने का अनुरोध करना हास्यमय आभावरण
की मृष्टि रचना है।^२

ऋक्षरजा - त्रिये ममाज्ञाय मेवाप्रचारम् * *

वानर तो डते महानुग्रह सम्भकर तत्काल मायिकमरोवर में प्रविष्ट होता है
और नारद को उससे स्त्री रूप में आ जाने से प्रसन्नता होती है। नारद को
ऋक्षरजा ने मुक्ति भी मिल जाती है। प्रगल्भनश मूर्ख के लेख का वगन भी
कवि की गेमगी से मुन्दर बन गया है।^३

नारद - (इति परिक्रामति) अये, कठोरयस्यातप प्रभाकर । आरद

किल मी प्रवृष्टमन्तर दिव । इदानीमत्र सन्निवेश महिमा

हिममुनिपरम्परारजतशृङ्खलादामभि-

विलम्बमणिमञ्जरूपचुरदमनीय मर ।

निविश्य निजविषयसमित मनोजवध्मा रवि.

दामातुरवचोक्ताने करविराजिताम्भोच्छ ॥

१- शृङ्गादगारदीय पृ० १०-११

२- वी पृ० १७

३- वही पृ० १० व

नाट्यकार का भाषागत अधिकार प्रशंसनीय है। इसकी कृतियों में स्त्री-पात्र भी प्राकृत के स्थान पर संस्कृत का ही प्रयोग करते हैं। स्त्री-रूपी नारद (रदना) भी संस्कृत में भाषण करते हैं।

उभयरूपकम्

श्रीमहात्मा कवि का 'उभयरूपक' एक सामाजिक एकांकी प्रहसन है। इसमें कुक्कुट स्वामी ने छोटे पुत्र छागल के माध्यम से राज के प्रयोगी-पद्धति से पठ कर आगे बढ़े हुए युवराज पर व्यंग्य का मधुर वार किया गया है। यह प्रहसन गाँव के गुरु ब्रजघोष एवं कुक्कुट स्वामी के वार्तालाप में आरम्भ होता है।^१ अध्यापक को बातों ही बातों में भालूम होता है कि छागल गाँव में शीत-कालीन अवकाश व्यतीत करन आया है। वह मदा मद्रास के पिंजलपुर नगर में ही छुट्टियों में रहा करना था। उसे ग्रामीण जीवन पसन्द नहीं। पठ लिख कर में अच्छी नापरी प्राप्त कर छागल बड़ा आदमी बनगा, मन यह पिता का बड़ा प्यारा पुत्र है। छागल ने भाई छन्दोवृत्ति पिता के इस व्यवहार से असंतुष्ट है। उसे भी आचार्य ब्रजघोष की तरह नागरिकता पसन्द नहीं।

छागल को ज्ञात पिता एक ग्रामीण अध्यापक की बातों में उसके विवाह के पक्के होने की बात भालूम होती है एवं वह इसे अस्वीकार करता है। कारण, वह राज के लोभ में दूसरों द्वारा चुनी गई कन्या से विवाह नहीं करना चाहता। वह तो स्वेच्छा से अपनी सहपाठिनी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। इसी बीच उसे बालेज में होने वाले उत्सव के कार्य में सहायनार्थ अपने किसी आचार्य के साथ मद्रास जाने की लिखित आज्ञा मिलती है। रेल के समय की जानकारी पाकर स्वयं क्षीर करने बैठा है। क्षीर-कर्म के उपरान्त बड़े हुए केशादि एक कागज में लपेट कर लिफाफे में डालकर जल्दी में नौकर के साथ स्टेशन की ओर चला जाता है। जाते समय उसका मिखा अभिनय पाठ (जिसे वह कण्ठस्थ कर रहा था) वहीं छूट गया था। घर वाले उसे आत्महत्या करने जाने से पहले छागल द्वारा लिखा हुआ पत्र समझ लेते हैं। पत्र में पड़े हुए रद्दी लिफाफे में पड़े कागज को देखकर बैद्यराज बतलाते हैं कि छागल ने मगर विपग्रहण करके अपनी हत्या की है। घर में कुहराम

पचता है। परन्तु नीकर के स्टेसन से लौटने पर जब छागन का पत्र रिता को मिलता है तो उसके पुत्र के मर्त्य से ज़ख्मी बाने का कारण मालूम होता है। उस के आधार पर भी अनेक भ्रान्त अनुमान किए जाते हैं। कपल रोचक बातोंवरण हाम्य में आप्लावित हो उठता है। कुक्कुट को माना रिता की छाया का उल्लङ्घन करने वाले पुत्र से निराश होना पड़ता है। उसे अपनी मृत का ज्ञान होता है और इस ग्रहण का अन्त एक रोचक भरतनायक से होता है जिसमें साम-दू के कारण उत्पन्न घरेलू दस्तक की छानि के त्रिमे प्रार्थना की गई है।^१

शाम्यन्त्वागु ननान्दुनि पश्यिता इदमनुपाविष्टा
वतन्ता मुमुक्षा प्रयुतिषु सन वृद्धा दृह्यमानिता ।
मन्नेषो धन्या नवप्रवनयोस्तत्तदनुत्पलम्बत
भाषना प्रवरणु वतन्ति विन विद्वत्किञ्च भारता ॥

इस सर्वांगीन ग्रहण में देश और काल के अनुसार विषय चुना गया है। इसमें प्रधान रस के अनुसृत ही दृष्टि को आरम्भिक परिचय हास्य रस में डूबी हुई है।^२ महाविग शास्त्री के द्वारा ग्रहणनामक हास्य कौण्डिन्य का उल्लेख भी अपनी प्रस्तावना में किया गया है।^३ उल्लेखित ग्रहण की मुद्रा तथा भरत भाषा सुन्दर सूक्तियों के प्रयोग ने सारगर्भित हो गई है।

महो स्नेहोपर कालमहन ज्ञाना ॥ (पृ० ४)

उवाच समारनाम - (पृ० ५)

मनोरपोच्चरनिदि-भावनापक्षानन्देदकपर्याय पुन भाषन् - (पृ० ८)

पादचान्य पत्रिकाविन्दप्रहिणामाधुनिक मुद्रिनाम् - (पृ० ८)

प्रवादावकादविवादानाममूमिनाम नगरमनाम - (पृ० १०)

कुन, कृष्णानन्दनि छादयति - (पृ० २३)

महो प्रमन्तो मे तव - (पृ० ३२)

१- उभयवर्णम्, पृ० ४०

२- वही - पृ० १

३- उभयवर्णम्, ३ पृ० २

मनुष्य, आर्या, उपजाति, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, रथोद्यता, वसन्ततिलका, शार्ङ्ग-लविक्रीडित शालिनी, शिखरिणी, सम्यगा आदि वृत्तों का प्रयोग कर कवि ने छन्द शास्त्र पर अपना अधिकार-प्रदर्शन किया है।

विमुक्ति

संस्कृत प्रतिभा नाम अष्टशर्पिक पत्रिका में प्रकाशित डा० बी० राघवन् का "विमुक्ति" नामक प्रहसन भी अपने रस का निराता है। इसकी प्रहास्यवस्तु इहलोक ही है। पात्र भी सामाजिक हैं। इसमें माया में निपट मनुष्य का सघर्षों से व्यथित पीड़ित होना, इच्छा के प्रतिपाद से खुश होना, इष्ट की मिष्टि होने पर उसका प्रसन्न होना, कृत्स्न वस्तु से घृणा करना, ईप्सिताप के न मिलने पर मानव का करुण-अन्दन आदि रस प्रदर्शित किए गए हैं। दो शकों में विनम्र इस अलीकिक प्रहसन के नायक आत्मनाथ^१ ब्राह्मण को मनीषी कवि ने जीवात्मा का प्रतीक माना है। उनके ६ पुत्रों में ज्येष्ठ नन्द सटकेदार "मन" के और चतुर्थ गुण्डास, दीर्घधवा उलूनास कणूत (कनिष्ठ पुत्र) आदि पाँच इन्द्रियों के चानक पात्र हैं।

ब्रा०—तथापि इदमस्तु भरत वाग्यम् —

ईमास्तव पुरयोऽस्मि गेहमिह मे देह स दृष्टी यम

सा भार्या प्रकृति गुरा भगिनिका, माया च ताता प्रभू ।

पदपुत्रा मन इन्द्रियाणि, नगर लोक, विमुक्तये तन

सत्त्वस्था प्रकृति, तथा प्रहसन दृष्ट्वा जना जाननाम् ॥

ब्राह्मण की त्रिवर्गिनी नामक भार्या को जो धन में प्रसन्ना नाम धारण करती है प्रकृति माना गया है जिसकी माता मायावती (माया) है। उनकी तीन बहनें चन्द्रिका, शोणिता एवं हस्तिनी क्रमशः सत्त्व, रजस् और तमोगुण की ओर संकेत करती हैं। वृद्ध ईश्वर का व्यञ्जक है। ईश्वरी राजा का सर्वाधिकारी साला है। (धर्म, यम) पुरुष राजस्थान के चाकर हैं। बीरगण अपने अपने शास्त्र भाग का अनुसरण करने वाले हैं।

१- विमुक्ति नाम प्रहसन पृ० ११० (इह प्रहसन संस्कृत रत्न द्वारा चतुर्वर्गसिद्धान्त के अन्तर्गत पर लेना गया था)

त्रिविधिनी के चारन द्वारा यह बतलाया गया है कि त्रिविणी प्रज्ञानरत्न माया ज्ञान बिछा कर शृङ्खलह का वारण बनती हैं।

पत्नी त्रिव० — स्वामिन्, अज्ञानात् प्रबलेन मदीयद्वितीय-तृतीयम-
गिनी दुष्प्रवेष्टेन चिराय अंतरि अत्यन्त कृत्वापराधाम्मि । वेवल-
मोष्यता ता पीठयन्ती ग्रामम् (परिवृत्य पश्यन्ती) ग्रहां भगिनि,
विस्मर मे दुर्दर्शितानि एहि, प्राप्तिदय माम् ।^१

मूत्र रजिताएँ दर्पानन दूसरे के गुणों में भी अबगुण के दमन करती हैं। विसृति के निरोध में माया से मुक्त होकर मनुष्य मुग्री रह सकता है। यही इन अतीव्र प्रहसन का सार है। दामिनिता के योग में प्रस्तुत दृष्टि में थोड़ा गाम्भीर्य आ गया है जो इन पुरान निम्नकोटि के प्रहसना में कृपक करता है। इन नशीनधारा में पचे प्रहसनों में उक्त छुट्टि को दूर करने का नवीन साहित्यकारों ने पूरा प्रयत्न किया है। हममें के सपन भी हो रहे हैं। कारण स्पष्ट है। प्राचीन प्रहसन राजदरबारों के अकुल से दूर हो मन्दिरों के धुने मैदानों में मने जाते रहे हैं। यह जन-साधारण की अपनी बन्धु बन गई थी जिसका गिष्ट-साहित्य से निरुद्ध सम्बन्ध न था। हमारे विपरीत प्रात विद्यालयों एवं महाविद्यालयों तथा अन्य सांस्कृतिक विकास में सहयोगार्थ निर्मित मर्यादा में शिक्षा के प्रसारणार्थ प्रहसनों का निर्माण हो रहा है। इसी प्रकार भावराजों के सुन्दर राज ने "सुपाविजय" के० एल० बी० साहनी ने 'लीला-विस्तार' तथा कामुण्डाजी न्यायतीर्थ ने "क्षुल्लेख" और के० नारयण ने बेरोनगारों पर छीटे बमने वाला व्यंग्य रूपक "अन्वयार्थमयम्" जैसे नवीनतम हाम्मारमक एकाकी रूपकों का प्रणयन करके प्रहसनकोश को समृद्ध बनाया है।

त्रिविद्याप्रहसनम्

प्रेम के माग में जाति-पाति का भेद बाधन नहीं होना चाहिये, भारतीय समाज में ऐसे उदारमात्रों के प्रचारार्थ भी कतिपय एकाङ्कियों की रचनाएँ संसृष्ट में हुई हैं, जिनके दृष्टान्तस्वरूप थी पण्डितायमाशय एवं तीसारावदयान द्वारा तैयार किए गए त्रिविद्याप्रहसनम् रूपक का उत्तम किया जा सकता है इस नाट्य दृष्टि की कथा इस प्रकार है।

अमीना एक भुवतमान लड़की है और सरला हिन्दू। दोनों में घनिष्ठ मित्रता है। अमीना का पति शेख सरला से, धुडमवारी के अभ्यास के लिए एक ही स्थान पर नित्य आते जाते रहने से परिचित हो जाता है। परिणामतः अमीना उन दोनों को सदेह की दृष्टि से देखने लगती है। एक बार शेख के साथ दुष्प्रज्ञा हो जाती है—सरला उसकी भरहम पट्टी अपने ही कमरे में करती है। ऐसे में अमीना शेख के साथ एक अन्य महिला का परिचय है, यह जान लेती है। वह महिला और शेख एक ही फ्लैट में रहते हैं। अतः शेख का उसके यहाँ आना जाना अमीना के साथ उसका विवाह होने के पहले ही से था। यह जान जान लेने के बाद सरला के प्रति अमीना का सन्देह निर्मल हो जाता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि एकाङ्कियों के पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण रडियो ने प्रसारणार्थ इस कोटि के रूपकों की माँग भी है। संस्कृतक मद्राम में मुद्रित डॉ. बी. राघवनू के विषयनितम्बा, विजयाङ्का, अवन्ति-सुन्दरी, नामगुप्ति और श्रीमती देवकी मेनन का 'पृथक् मुष्टि' तथा जी. कृष्णमूर्ति द्वारा प्रणीत 'नटीनटी' नामक लघु नाटक इसी उद्देश्य से रचे गये हैं। इनमें धार्मिक अभिनय का आनन्द थवरोन्द्रियों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः इन्हें दूर एकांकी न कह कर रेडियो रूपक कहना ठीक होगा। वस्तुतः ये नाट्य-कृतियाँ अथवा काव्य की कोटि में रखने योग्य हैं, तथापि रंगमंच पर भी खेती जा सकती है। अतः उनमें दृश्य-काव्य की क्षमता भी है। इस विनाय के कारण निस्सन्देह हमारे एकाङ्क-नाट्य भण्डार में वृद्धि हुई है। अतएव प्राङ्ग-निक संस्कृत एकांकियों के साथ इनकी चर्चा करना अस्पष्टाने नहीं कहा जा सकता। प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि मनोरञ्जन एवं शिक्षणार्थ विभिन्न क्षेत्रों में नित्य नये एकांकियों की माँग के होने पर समयभाव के कारण नये चिन्तकों एवं साहित्य-निर्मात्रों की चिन्तन तथा मनन का अधिक अवसर नहीं मिल पाता है। अतः उनके एकांकियों में मौलिकता भी नहीं आ पाती है।

इसी कारण, पुराण तथा आदि महाकाव्यों (रामायण, महाभारत) को अपनी रचनाओं के उपजीव्य बनाने के स्थान पर संस्कृत विश्ववन्द्य महा-कवियों के लक्ष्य-प्रतिष्ठ ग्रन्थों से कुछ अंश लेकर अथवा साहित्य-शास्त्रों में विभी अज्ञात कवि के बिखरे हुए श्लोकों को एकत्र करके उन्हें सम्यक् रूपसे सङ्गठन करने की परिपाटी भी चल पड़ी है। डॉ. राघवन की "एसलीवा"

‘सप्तमी-स्वयंवर’ ‘महाश्वेता’ ‘भाषाढस्य प्रथमदिवसे’ आदि नाटिकाएँ इसी प्रकार की हैं। इनके विषयाधार के मौलिकता के अभाव एवं आकार-साधक को देख कर इन्हें पूर्ण विकसित एकाकी तो नहीं कहा जा सकता तथापि अनु-हरण से उद्भावित अभिनेय बाध्यों द्वारा संस्कृत साहित्य के एकाकीयों के बोध को सम्पन्न करने का श्रेय इन एकाकीकारों को निस्संकोच दिया जा सकता है।

इनके “भाषाढस्य प्रथमदिवसे” में महाकवि कालिदास के सङ्कलन मेघदूत के श्लोकों का गद्य में रूपान्तर करके कालिदास के साम यक्ष का वार्ता-लाप प्रस्तुत किया गया है। ध्वन में कालिदास के मुख से “धूमज्योतिस्सनिध-मरुता मग्निपाति बभूव मेघ” श्लोक को उद्धृत करवाया है। तदुपरान्त इमी में यक्ष के मुख से उसके सन्देश-श्लोकों को यथावसर मेघ बतलाकर इस रूपक को समाप्त करने का निर्देश उपलब्ध है।

संस्कृत के सुप्रसिद्ध गद्यकार बाणभट्ट की कादम्बरी में अवित ‘शिव-सिद्धायतनवर्णना’ में लेकर “नामाकुल-महाश्वेता दशवर्णन” तब के वर्णन विषय का संक्षिप्त ग्राह्य इनकी “महाश्वेता” में अनूद्ध है। इसके आरम्भ और मध्य में कादम्बरी के दो श्लोक उद्धृत हैं, एक श्लोक हर्ष-चरित में आकलित आद्यमगल श्लोकों में से भी लिया गया है।

महाश्वेता—जयन्ति बाणसुर-मौलिलातित्वा

दशस्य—ब्रूवामहि—चक्रधुम्बिनः ।

सुरासुराधीश-शिलान्तर्धनिनः

भद्रच्छिदस्त्र्यम्बकपादपासवः ॥^१

नमस्तुगशिरःधुम्बिचन्द्र-चामर-चारवे ।

त्रैलोक्यनगरारम्भ भूस्तस्माय क्षमवे ॥^२

डॉ. वे. राधव शर्मा ने श्रीमद्भागवत पुराण के श्रीकृष्ण एवं गोपियों की रासलीला का वर्णन करने वाले श्लोकों (रासपञ्चाध्यायी) के आधार पर अपनी रासलीला नामक एकाकी नाटिका की रचना भी की है। उनका सप्तमी-स्वयंवर प्रेक्षणक भी इसी कोटि का है। इसके विषय का आधार है देवताप्रो-

१- कादम्बरी के उद्धृत.

२- हर्ष चरित ॥

और दानवी द्वारा समुद्रमन्थन की लोक प्रचलित पौराणिक कथा । लक्ष्मी का क्षीरमाग्न म मे निरलना और विष्णु को अपने पति के रूप में चुनना—इसमें दयाया गया है । पादचात्य पद्धति में प्ररित होकर लिखी गई इन कृतियों में पुराणा में विरले गये दयाया एक कुट्ट निती पद्यों का समम दृष्टिगोचर होता है । इन मर्गीन नाटिकाओं में भाषागत मोष्टक व दशन नहीं होते । अपनी मौलिकता के अभाव का ग्रन्थ-प्रणेता स्वयं भी स्वीकार करते हैं ।

स्वयाक्ष पत्राण्यायाज्य धुक्कनोक्-कुमुमम्मह ।

जुगुप्सु राघवा रामनीना बन्धामिव स्रजम् ॥

+

+

+

पुराणवि-भावय पुष्पं मद्वाक्यपत्रंश्च गुम्फिता ।

माहि-य-वनमानेय श्रीरिवंतु हरेकर ॥

इनकी राघवीना में स्थित रामनृत्त एक शरीत नृत्य की देखने से अथवा ग्रन्थों में वर्णित नाट्यरामक का ध्यान अवश्य या जाता है । परन्तु कामनव में यह एकाकी सामान्य प्रेक्षणक है ।

कामगुडि

हत्ती प्रकार इनका 'काम गुडि' भी महाकवि कालिदास के विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य कुमारसम्भव पर आधारित सधु प्रेक्षणक है, जिसमें नायिका पावती न होकर कामप्रिया रति है और नायक है मदन ।

कवि - वस्तु धैतन् कवो कालिदासस्य कुमारसम्भवात् महाकाव्या-
दुत्थितम्, तस्य च हृदयभूतम् । अत्र नायिका रति न पावती । नाय-
कश्च मदन न परमेश्वर ।

परन्तु इसमें कवि की प्रतिभा चमक उठी है । मुनिजनो की तपस्या को मंग करने कायाचार में रत कामदेव की क्रुद्धा पत्नी रति घोर तपस्या में लीन होकर उसकी शासिका बनती है -

काम - प्रिये कोप्य सहसा भत्वारूढः कोपररोष ? यद्यसमोहनैव विद्वत्-
मित्र रम्भाया कुम्भदास करिष्यामीति देवेन्द्राय प्रतिज्ञातवानस्मि ।

रति— (नर्णापिपाय) भविहा । भविहा । यत्तमेतैरपदानं ।
अपवा अपवादं । अहो, किमती लज्जा नावहन्त्येतानि ते
मन्मथ, वन्दपं, मदन इति दुष्टानि नामानि ?

+

+

+

परमेश्वर—इय सा, यस्यास्तपो मदीयमपि तपो
दूरमपकृत्य, मामप्यनुकर्षेत् । दुर्नितितस्य भर्तु पापाना
भार्या स्वयं प्रायश्चित्तं कुरते ।

तपस्या—काल में माझात परमेश्वर में उसका मवाद होता है । जब अपने पति के दुष्कर्मों से खिन्नमना रति अपने स्वामी को त्याग देना चाहती है, तब इस प्रसंग में परमेश्वर के मुख से उसने लिये निकले हुए उपदेश-वाक्य बड़े महत्वपूर्ण हैं । उनका कहना है कि भर्तृ-परित्याग और पाप-साधक्य, ये दोनों ही बातें अशोभनीय हैं । जिस प्रकार नोहे एक अन्य धातुओं से मिश्रित त्वण का त्याग न करके अग्नि में तपाकर उसे छुड़ करके काम में लाया जाता है, उसी प्रकार कुशल पत्नी को कुभाग पर भी चलने अपने पति को शान्त्वदादि द्वारा सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करना चाहिए । उसे निराश नहीं होना चाहिए—

परमेश्वर—आयुष्मति । नभर्तृ-परित्याग शोभते, अतएव
शोभते पापसाहचर्यम् । कुशलया भार्यया
उत्कृष्टतया वावन्भर्ता निग्रहीतव्यः । लोहान्तरे धातुभिरपि दूषितमिति
न हेम परित्यक्तव्यं किन्तु पाकेन शोधयितव्यम् ।

असंस्कृत पशु घम 'काम' सारी सृष्टि का कारण होता है । गीता भी प्रच-
रान्तर से इस तथ्य की पुष्टि करती है—

आयुधानामहं बन्धम् । प्रजानां चास्मि वन्द्य
सर्पाणामस्मि वामुक् ॥ १ ।

परन्तु विवेक की अग्नि में तप कर यह बान्धवणा शुद्ध काम का रूप धारण कर लेती है और परिष्कृत होकर मोक्ष का हेतु बन जाती है ।

परमेस्वर-... भगुद एव काम पुमर्थन्तिराणामङ्गम्
शुद्ध पुनरङ्ग । अङ्गी स्वयं परमं पुरुषार्थं ।

+

+

ज्ञानाग्नि-परिपूतो यः सर्वक्षेमैककल्पक
तव प्रकाशता कामं मत्स्वरूपादनन्तरं ॥^१

यही हम लघु नाटक का शुभ सन्देश है । अश्वघोष के सौन्दर्यनन्द काव्य के एक श्लोक में भी यही भाव निहित है ।^२

क्रमेणादग्निं शुद्धं कनकमिह पासुव्यवहितं
यथाग्नौ कर्मारं पचति मृशमावतयति च ।
तथा भोगाकारो निपुणमिह दोषव्यवहितं
विनोध्य वसैशेभ्यः क्षमयति मनः सक्षिपति च ॥

इस उच्चादशं के प्रतिरिक्त कामशुद्धि नाटिका में कवि का कवित्व अन्यत्र भी प्रस्फुटित है । मधु (वसन्त) एव अन्य भाववाचक पात्रों का भी इस एकांकी में समावेश हुआ है, परन्तु उनके सजीव चित्रण के कारण उनकी भाववाचकता प्रकट नहीं हो पाती । भाषा प्राञ्जल है और रति की घोर तपस्या के दृढ़ निश्चय से विमुक्त करने के लिए जिस श्लोक का प्रयोग किया गया है, उसका प्रथमाध कुमारसम्भव के पञ्चमसर्गस्थ कतिपय पदा में मिलता है ।

पद सहेतु भ्रमरस्य पेयस
शिरीष-पुष्पं न पुनः पतत्रिणम् ।
तप-सरीरे कठिनैरुपाश्रितं
तपस्विना दूरमघं करोत्यसौ ॥

तुलना कीजिये—

पद सहेतु भ्रमरस्य पेयस
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणम् ॥

१- कामशुद्धि.

२- सौन्दर्यनन्द सर्ग ११, श्लोक सख्या ६८

हाथ बेचकर अथवा नदी में बहाकर नष्ट करने को उद्यत देख दुःखी हो जाता है। परन्तु आगन्तुक — 'आय । मैव अथ । अथ स्वान्-यत्नाभानन्तर भारतीय संस्कृते मूलभूत विद्या भाषा च पुनर्विकास कमपि प्राप्नोति । एतादृशतालवोशाना सग्रहे पालने प्रकाशने च बद्ध-परिकरा अधिवारिण । नास्त्येव भवतो निर्वेदस्य प्रवकारा । सवथा नाहमेतेषा तालपत्रग्रन्थाना नाशन विदेशीभ्यो विषय वा अनुमन्तुमुत्सहे । पुनरच भवान् साहित्य निर्माण निपुण अभिप्यति, सत्करिष्यते च सोऽकेन अधिवारिभिश्च ।' इन शब्दों के साथ उसमें उस्ताह का संचार करता है ।

द्वितीय हृदय में वही आग तुक बिशी ग्राम निवासी को कुल-परम्परागत समीत-शास्त्र के अभ्यास से विरत देखकर उसे इस कुल-विद्या का परित्याग करने से रोकता है । "आगन्तुक — मध्ये महर्दिव वैराग्यभवताम् उदीर्यम् । किन्तु सर्वथा अदीर्घदक्षिता भवदपि किलेय परम्पराम्बासपरिपाकशालिनी इय कुल-विद्या तपस्विनी पतिव्रतेव परित्यज्यते ।.....

गीतादि कला पोदराण्यमुचिता स्वतन्त्रभारते आरचिताएव—"

इसी प्रकार तृतीय हृदय में वह पुराने देवालय से बहुमूल्य वस्तुओं को धुरा कर विदेशियों के हाथ बेचने वाले चोर से कुवृत्ति का परित्याग करवा कर उसे कोई सद्वृत्ति सुभाता है । मन्दिर के पीछे शास्त्रीय-नृत्यकला सीखने के लिये आग्रह करती हुई बालिका को इस कक्षा का मोह त्याग कर किसी सहर के सिने-मसार की गोमा बढाने की सताह देने वाली बृद्धा को भी वह आगन्तुक मग्नाग दिखलाता है ।

"तद्वस्ते, यच्छ त ज्ञानवृद्ध नाट्याचार्यम् अथवा तमत्रैव ज्ञानय,
नाट्यकलाद्यालामस्मिन्नेव ग्रामे स्थापयिष्यामि ।"

इस रूपक के अन्त में ग्रामस्थ साहित्य-शास्त्रविद् द्वारा प्रणीत निम्नाङ्कित काव्य रचना को संगीतज्ञ ने स्वरदान दिया, और नटी-बालिका ने साथ ही साथ उसे अभिनीत किया ।

देवि भारत जननि जगति पुराण्यपि नूतना
दोष्यसे त्वमुदारमात्मगुणैः कलादि-समृद्धिभिः ।
भाविता हि महर्षिभिः परिपालिता च नृपपिभिः ।
कालिदास-कवीन्द्रशंकर — देशिकेन्द्र-सुषोषिता ।
सरय-ज्ञान्त्वन-शान्त्यर्हासिन दूतिकेज्जम्ब ममोपस्तुते ॥

इस प्रकार इस काव्याद्य में नवि ने प्राचीन एवं अर्वाचीन सभ्यता को मिलाकर देखा है।

छोटे नाटकों में बीजबिन्दुपदानादि के प्रयोग के नियम की आवश्यकता-नुसार सिद्ध करने की आवश्यकता यद्यपि व्याचार्य विद्वत्नाथ ने साहित्यकारों को ध्यान से बहुत पहले ही दे दी थी ^१ और महाकवि भास ने दर्पणकार से भी बहुत दिन पूर्व अपनी कृतियों में कतिपय नाट्य-सिद्धान्तों की प्रवृत्ति का कर के इसको दिखा दिया था तथा ब्रह्म ने भी वसन्तसेना की दुर्लभ मृग्यु का वर्णन करके अपनी स्वच्छन्दता का परिचय दिया था तथापि उसे पूर्ण सन्तुष्ट रूप प्रदान करने का योग्य अभिनव-रूपकारों को ही है। वर्तमान काल के साहित्यकारों का ध्यान शास्त्रीय पद्धतियों से हट कर व्यावहारिक जीवन की ओर खिंच रहा है। ध्यान का मानव-समान अतीत के स्वप्न में ही उलझा रहना नहीं चाहता। आधुनिक मानव की दृष्टि भविष्य पर जमी हुई है और वह नई दिशाओं में जाने भी चाहता है।

भारत के इतिहास में प्रत्यक्ष है कि भारतीयों ने समय-समय पर अपने अपने आरम्भिककारियों से अपनी सभ्यता की रक्षा के हेतु रुढ़ि का सहारा लिया और उनकी रुढ़िवादिता साहित्यकारों की दुनियाँ में भी व्याप्त हो गई। साहित्यिकों ने अपने आपको अनेक शास्त्रीय सीमाओं में बुरी तरह बाँध लिया। परिणामस्वरूप राजाधन्य में मनपने वाले प्राचीन नाट्य-प्रणाली जीवन से काफी दूर हट गये, उनका सम्बन्ध जन-साधारण से छूट कर शासन के कृपापात्र सिद्धवर्ष तक ही सीमित रह गया। मध्ययुगीन एकाङ्की साहित्य में भी यह परम्परा स्पष्ट है।

इसके विपरीत मध्ययुग के रूपकार एकाङ्की-कालन को स्वच्छन्दतावादी के शीतल जल से सींच रहे हैं। अतः इसमें हम नित्य नये फूलों को प्रसूतित होत देख रहे हैं। अमृत होकर भी जो सल्लव बाणी बहुत समय से मृतपत्र की ध्वज इन एकाङ्कियों के रूप में फिर से जीवित हो उठी है। रक्त दूधा प्रवाह मानो आधुनिक युग के आरम्भ और अन्त्य की सांस्कृतिक घेतना से पुनः वतिमान हो उठा है।

यो तो प्राचीन एकाद्वि (विशेषकर भाषा एवं प्रहसन साहित्य में) भी यथार्थवाद के दर्शन होते हैं, जिसका शृङ्गार से ओत-प्रोत समाज के नम्र चित्रों से युक्त होने के कारण आधुनिक दृष्टि में अब विशेष महत्त्व नहीं रहा है, परन्तु इसमें साहित्यकारों का दोष नहीं है। तत्कालीन जनता की अभिरुचि ही इस प्रकार के रूपकों की सर्जना का मूल हेतु है। इसके समर्थन में आधुनिक मिनेमा-संसार की, (जो दृश्य काव्य का ही स्थानापन्न है) थोड़ी बहुत चर्चा कर लेना अनुपयुक्त न होगा। जिस प्रकार फिल्म निर्माता किसी फिल्म की रचना करते समय जन साधारण की रुचि का पूरा ध्यान रखते हैं उसी प्रकार आज के साहित्यकारों की भी एक स्वतन्त्र दृष्टि है, जो शास्त्रीय एवं रुढ़िवादी न होकर यथार्थ के अधिक मनीष हैं। आधुनिक युग के कलाकार शास्त्र की अपेक्षा जीवन से प्रेरण पाते हैं। यह ठीक है कि उनकी कलात्मक कृति में कवि के हृदय की दबी हुई (Suppressed) भावनाओं का प्रकाशन होता है, फिर भी उनका आधार समाज में प्रचलित बातें ही हुआ करती हैं। दिन भर की दौड़-धूप से थक कर लोग चलचित्र भवन या नाट्यशाला में अध्यात्मिक विषय के गम्भीर चित्रों को देखकर अपना पैसा और समय नष्ट नहीं करना चाहते। इसीलिए हम देखते हैं कि धार्मिक और ऐतिहासिक तथा उच्चकोटि के सामाजिक चित्र उतने लोकप्रिय नहीं होते जितने 'विनोद' और 'शृङ्गार' में रचित चित्र। गम्भीर एवं शिक्षाप्रद चित्रों को तो बालोपयोगी समझकर शिक्षण-संस्थाओं तक ही सीमित किया जाने लगा है। सारांश यह है कि हर युग में हर देश में जनता का एक बहुतांश केवल मनोरंजन मिश्रित-शिक्षण की भावना से रहे गये नाटकों का ही सम्मान करता है।

संस्कृत नाट्य की प्रगति में समय-समय पर जो अवरोध होता रहा है उसका मूल कारण भी इन नाट्य कृतियों में अद्विष्ट कवियों का भावदर्शवादिता की ओर झुकाव ही है। इसीनिये संस्कृत के एकाद्वि का प्रचार भारत की अन्य देशज भाषाओं के साहित्य के मध्य तीव्र नहीं है। अब तक इनका स्थान कतिपय संस्कृतानुरागी विद्वानों के समाज तक ही सीमित रहा है। आज संस्कृत जगत् में जो थोड़ी बहुत चेतना दिखाई देती है वह सब सत्रह-पन्द्रह वर्षों की स्वतन्त्रता का परिणाम है। संस्कृत साहित्य के इस नवयुग को हम सन्धि का युग कह सकते हैं, क्योंकि इस क्षेत्र में रुढ़िवादिता अभी पूर्ण रूप से दूर नहीं हो सकी है, फिर भी संस्कृत-साहित्य में एक अपूर्व क्रान्ति उत्पन्न हो गई है, इसमें सन्देह के लिए कोई अवकाश नहीं है। आज देशभक्त विद्याविषासी

भरने देना के छोड़ हुए गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिये सज्ज हैं। वह महत्वपूर्ण प्राचीन रहस्यों के धन्येय में सजे हैं। इस कार्य-क्षेत्र में भागे बटने के लिए संस्कृत का ज्ञान अपेक्षित है, इस तथ्य को भी लोग पहचानने लगे हैं। डॉ० बी० रायचन्द्र को पुनरुन्मेष शोधक रेडियो नाटिका इनका ज्वलन्त सशस्त्र है।

सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से भरने वर्तमान को उन्नत बनाने के लिये अतीत की परम्पराओं को जानकर उनका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक होता है। इसे ध्यान में रख कर पूर्व पृष्ठों में यह विस्तारपूर्वक बताया जा चुका है कि संस्कृत के एकाङ्क स्वकम्प्यार में पञ्जीकृत सम्पत्ति के रूप में क्या कुछ का भौत उस चिर मग्न होन पंथों के छाया पर साज के संस्कृतानुगामी विद्वान इस क्षेत्र में क्या कर रहे हैं? भूत तथा वर्तमान कालीन संस्कृतएकाङ्की लेखन की प्रसन्न परम्परा को देखने हुए श्री साहित्य के प्रकाश मन्त्र भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य के इतिहास में एकाङ्की के आगमन को एक प्रारम्भ घटना समझने लगे हैं। प्रगेजी के प्रसिद्ध मीमान्त की परस्मिन् वास्तव के अनुसार नाटक साहित्य के कुटुम्ब में एकांकी नाट्य ८० या १०० वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है।^१ सम्भवतः सम्भव भारतीय आलोचकों ने इसी प्रकार के पारचात्य विचारों से प्रभावित होकर अपनी ऐसी वादना बता ली है। वास्तव में भारतीय भाषाभाषा का विकास संस्कृत से उद्भूत अनेक भाषाभाषा से हुआ है। उनका साहित्य भारत के प्राचीन साहित्य की मूल धारा की विभिन्न प्रसृति धाराओं का ही स्वरूप है।

- 1- In the ancient and honourable family of the drama the one-act play is a new comer. Whether its first exemplar date from the eighteenth-century, or whether by some stretch of the imagination, works of even remoter origin may bear the designation "one act play" is beside the point compared with the antiquity of its kindred, the one act play is an infant whether thirty, fifty or even a hundred years of age

Preface, The Craftmanship of the One Act Play, Percival Wilde

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र ने भारतीय नाट्यशास्त्र, दशरूपक, भावप्रकाश, साहित्य-दर्पण आदि ग्रन्थ केवल १०० वर्ष पुराने नहीं, अपितु अनेक शती पुराने हैं। इन ग्रन्थों में हमेशा एक अङ्क बाने साक्षात् नाटकों और भाषा प्रहसन तथा व्यायोग जैसे नाटक-भेदों की सजायों के उपलब्ध होने से यह बात बिना सम्भीर चिन्तन के ही कट जानी है कि एकाद्री नई वस्तु है और अभी उसका सौंघव बाल चल रहा है। एकाद्री के उद्भव के सम्बन्ध में भारतीय समीक्षकों ने काफी भ्रम फैलाया है। इसकी पुष्टि में इतना कह देना ही अलम् हागा कि हिन्दी एवं मैथिली में (जिन्हें बहुत समय तक एक ही भाषा के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है) तो एकाद्री के विषय में थोड़ी बहुत लेखन-सामग्री मिल भी जाती है किन्तु बंगला और मराठी के साहित्य में इस विषय पर मनोपपन्न विवरण अब तक अप्राप्य है। मराठी साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले अनेक लोग अनेक भ्रम भी जात हैं, वस्तुतः इनके नाट्य-विषय (टेक्नीक) के विषय में बड़ी भी स्वतन्त्र रूप से विचार करना नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि भारतीय देशी भाषाओं के नाट्य-शास्त्रों का कोई तन्त्र नहीं है। जिस प्रकार ब्रह्मा ने प्राचीन काल में चारों देशों में न नाट्योपयोगी तन्त्रों को ग्रहण करने पश्चिम वेद की सृष्टि की थी, उसी प्रकार आधुनिक भारतीय नाट्यकारों ने कुछ संस्कृत से, कुछ लोक प्रचलित अशास्त्रीय अभिनयों में और अर्द्धाचीन युग के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा लेकर अपने भव्य नाट्य-मंदिर का निर्माण किया है। पश्चिम मैथिली, हिन्दी, बंगला, मराठी आदि भारत की विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के नाटकों की विषय-वस्तु और भाषा तो भारतीय ही हैं परन्तु तन्त्र पश्चिमी होता है। इसके समर्थन में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि भारतीय प्रादेशिक पुरानी साहित्य का प्रारम्भिक रूप प्रायः संस्कृत साहित्य में प्रभावित प्रकटित होता है। प्राप्ति रूपों की देग कर ही संस्कृत के लक्षण ग्रहण करने, यह बात निर्विवाद है। हिन्दी, बंगला, मराठी, मैथिली आदि भारतीय प्रादेशिक भाषा-विद् नाट्यशास्त्री बार-बार यह कहते हैं कि एकाद्री की प्रेरणा प्रादेशिक भाषाओं में पश्चिम से गी।

भारतीय साहित्य के क्षेत्र में उक्त साधन का प्रमुख कारण हमारे देश का समय-समय पर विदेशियों द्वारा आक्रान्त रहना है। भारत की सामाजिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परतन्त्रता ने ही आधुनिक साहित्यकारों को इस भ्रमजाल में बाँधा है। देश के इतिहास में एक ऐसा भी युग आया जब

एकाकी नाटकों की एक विशेषता यह भी है कि उसमें एक ही घटना होती है जो नाटकीय कौशल से दर्शकों के हृदय में कौतूहल उत्पन्न करते हुये 'अति' या "वनायमेवम" पर पहुँचती है। उसमें मुख्य घटना के विपरीत कोई आवश्यक प्रसङ्ग नहीं आने पाता। उसमें वर्णित एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द की अपनी उपयोगिता होती है। वे कदापि व्यर्थ नहीं होते। पात्र चार या पाँच ही होते हैं जो नाटक के अभिनय के लिए नितान्त आवश्यक होते हैं।

एकाकी के लिए बयावस्तु के चुनाव के सम्बन्ध में एकाकी के मर्मज्ञ डॉ. वर्मा का मत है कि बयावस्तु स्पष्ट हो, जटिल न हो, किन्तु उसका विस्तार कौतूहलपूर्ण हो। इसके प्रतिरिक्त उसमें वर्णनात्मक तत्त्व की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्त्व की प्रधानता होनी चाहिये।

बंगला^१ मैसिमी आदि भारतीय, प्रादेशिक भाषाओं के क्षेत्र में भी एकाकियों के सम्बन्ध में आलोचकों के समग्र ऐसे ही विचार हैं।

दक्षिण भारत के नाट्यसाहित्य की भी यही स्थिति रही है। वहाँ के निवासी कलाप्रिय रहे हैं। विशेषकर भारत का यह भाग शास्त्रीय संगीत तथा नृत्यकला का केन्द्र रहा है। प्राचीन मन्दिरों के मन्त्रावशेषों तथा गुफाओं में संगीत नृत्यादि करते हुए ईश्वरोपासना में लीन देवी-देवताओं की मूर्तियों को देखने में भारत की इस कला का आदिस्वरूप साकार हो जाना है। भारतीय साहित्य के इतिहासों में दक्षिण भारतीय रङ्गमंच पर जो चर्चा मिलती है, उसके आधार पर यह निस्मकोच कहा जा सकता है कि केरल, तमिल, कन्नड आदि दक्षिण भारत की भाषाओं में भी हिन्दी, बंगला, मराठी आदि उत्तर भारत की प्रादेशिक भाषाओं की तरह लिखित एवं मौखिक साहित्यिक नाटकों का सूत्रपात बहुत देर से हुआ। इससे पहले जनता का झुकाव तोलुवोम्माट

१- (क) गण-उपनामोंर तुलनाय नाटकं लेखकेरा ठेपन वैचित्त्य अचरा अति देवाइये पारेतनाई। एटा बीगना सहित्येई विग्रफत्त नय, प्राय सब प्रासुनिक साहित्येई देवा विग्रहो। बंगला साहित्येइ इतिहास चतुर्थ छण्ड मे०-श्री सुकुमार सेन, १० ३१०-३१२-

(ख) एकाङ्क नाटक के विवेक थैगीर 'साहित्यिक नाटक' एकाक आवे दे बानेई मुष्टि, बायनाय वा बायो विवेक करे सेधार्ई होयनि। ...

बंगला साहित्येइ भूमिका, लेखक- नन्दयापाल सेन मुष्ट, १० १७४

(कठपुतली के खेल के समान) तथा बीषी भागवतु जैसे लोक नाटकों की ओर हो या। ऐसे नाट्यों में से अधिनाश की क्यावस्तु पौराणिक और ऐतिहासिक (रामायण, महाभारत आदि से ली हुई) हो हुषा करती है।

नाटकीय मनोरञ्जनो का मुख्य उद्देश्य शिक्षण तथा मनोरञ्जन ही होता है। देशकालभेद के कारण इसमें कोई भन्तर नहीं पड़ता, केवल बाह्यप्राकृति परिवर्तित हो सकती है। दक्षिण भारत में केरल ऐसा स्थान है जहाँ प्रमुख रूप से संस्कृत नाटकों का अभिनय हुआ करता है। वहाँ का रसमंच लगभग एक हजार वर्ष तक अनवरत रूप से बना रहा है। संस्कृत एक मलयालम विषयक ज्ञान के विपासुभो के लिए इस क्षेत्र में पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकती है। यहाँ का रसमंच अन्य भाषाओं के रसमंच से भिन्न है। कारण इसमें नृत्य, तथा अभिनय पर विशेष जोर दिया जाता है। इसकी एक विशेषता मुद्रा-भाषा का प्रयोग भी है। बहुत से नाट्यकारों में तो अभिव्यञ्जना का साधन ही तीन प्रकार की मुद्राएँ होती हैं। यथा (१) प्राकृतिक मुद्राएँ, (२) अनुकरण-त्मक मुद्राएँ (३) ऐसी मुद्राएँ जो सनातनी तान्त्रिक और मान्त्रिक सकेदों के आराधना, अभयदान, आह्वान आदि के लिए प्रयुक्त होती हैं। सम्भव संस्कृत रसमंच में इसका प्रयोग संस्कृत के प्रचार के लिए किया गया होगा।

प्रायः सभी दृश्य मनोविनोदों में धार्मिकता का पुट होता है। तदनुसार धार्मिक, अर्द्धधार्मिक और धर्मनिरपेक्ष इन तीन प्रकारों में इन्हें विभक्त किया जा सकता है। धार्मिक में भगवती पट्टु, वरा पट्टु कृष्णपाङ्कजी और मुटि पट्टु हैं। धर्मनिरपेक्ष में एनाममुट्टी, पुरापट्टु, तुल्लत, कोराट्टियाट्टम मोहिनि-याट्टम, कपाकली आदि रखे जा सकते हैं। अर्द्ध धार्मिक में मयकली, कट्टु और कृष्णट्टम हैं। प्रथम दो विद्युद देशी भाषा में और अर्द्ध-धार्मिक मुरयया संस्कृत में निबद्ध होते हैं। विशेषकर कृष्णट्टम पूर्णतः संस्कृत का मनोरञ्जन नाट्य है और वह भी सम्भवतः गीतगोविन्द पर आधारित।

केरल के बाद तेलगु का रङ्गमंच भी प्राचीन और संस्कृत-काल में एक तदुपरान्त भी अत्यन्त मधुर रहा है। तेलगु-साहित्य के इतिहास से प्रत्यक्ष होता है कि वहाँ के गाँव-गाँव में स्थानीय लोकमंच नाट्यनुरागी जनता का चिन्तानुरन्धन कर रहे हैं। अब भी भारत के अनेक स्थलों में इनके चिह्न प्राप्त होने हैं। लोकनाट्य के साथ तेलगुप्रदेश पर संस्कृतनाट्य का प्रभाव रहा है, इसे भी भुलाया नहीं जा सकता, तेलगु क्षेत्र के नवियों और साहित्यकारों ने संस्कृत

में अनेक नाटक लिखे हैं। अनेक राजाओं ने स्वयं भी संस्कृत रूपक लिखे और वे रूपककारों को समुचित प्रशंसा और प्रोत्साहन देते रहे हैं। आधुनिक तेलगु नाट्यसाहित्य को यह परम्परा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई और इससे वह लाभान्वित भी हुआ है।

अंग्रेजी के सम्पर्क में आने से यहाँ भी बहुत बड़े समय से समसामयिक और सामाजिक समस्याओं, आर्थिक प्रश्नों, राजनीतिक उद्देश्यों तथा आदर्शों को सामने रख कर नाटकों की रचना होने लगी है जिनमें से पुरानी पद्यारम्भ रचना शैली का बहिष्कार किया जाने लगा है। भारतीय भाषाओं के इतिहास के अनुशीलन से प्रत्यक्ष हो जाता है कि पुराने नाटककारों को संस्कृत नाटकों का अनुवाद करने अथवा उनके आधार पर अपनी कृति का प्रसंग्यन करने में सकोच नहीं होता था। परन्तु अब के प्रायः सब साहित्यकार ऐसा करने में अपनी भवमानता समझने लगे हैं। इसी मकोच के फलस्वरूप तेलगु में अनूदित कृतियों की संख्या अल्प है। ग्रन्थ में एकाङ्की का प्रचार बहुत है। प्रत्येक पत्रिका में एकाकी प्रकाशित होते हैं। नरल वेंकटेश्वरराव बड़े सफल तेलगु-एकाकीकार हैं। ग्रन्थ में इसके प्रचलन का कारण उनके प्रभुत्विकरण की सुगमता। उन आर्येतर भाषाओं का हिन्दी, बँगला आदि आर्य भाषाओं से सीधा सम्बन्ध न होते हुए भी दक्षिण भारतीय साहित्य में नाट्यकला का प्रेरणा-स्रोत भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ही रहा है। संस्कृत के साधकों में दक्षिणात्यो का प्रमुख स्थान है।

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों के प्रमूल्य भण्डार का प्रमुख रूप से मद्रास के पुस्तकालयों में पाया जाना, संस्कृत के भाषा तथा ग्रहसनादि में से अधिकतर कृतियों के रचयिताओं का निवास स्थान का दक्षिण भारत में होना, हम बात का प्रमाणित करता है कि आर्येतर भाषाओं का नाट्य साहित्य भी संस्कृत के नाट्यमिद्धान्तों की सर्वांश में अपेक्षा नहीं करता। आज भी ललितकला के इस क्षेत्र में मद्रप्रदेश के निवासियों ही प्रगति कर रहे हैं। पूर्व पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि व मल्लिकार्जुन एकाकी कला को जगाने का यत्न भी कर रहे हैं।^१

पश्चिम के एकाकियों के इतिहास पर एक दृष्टि डालने से मालूम होगा कि वहाँ एकाकियों की रूप-रेखा १० वीं शताब्दी के मिरेकिल्स और मारेसि-

टीज नामक नाट्य रूपो में उपलब्ध होती है। कोई प्राकर्षक आभ्यास या ईर्ष्या सन्तो के धार्मिक क्रियाकलापविषयक नैतिक उपदेश ही पाश्चात्य एकाकी के उक्त अविकसित रूपों के विषय हुआ करते थे और जिनका उद्देश्य धर्म-प्रचार हुआ करता था। उदन्तर जनता के मनोरञ्जन के उद्देश्य से लिखे गये विनोद धन्य इन्टरल्यूड्स में इसका विकसित रूप दिखाई देता है, जिनमें अधिक से अधिक तीन पात्रों द्वारा किसी एक भावना में प्रदर्शन की प्रवृत्ति रहती है। किन्तु १९वीं, २०वीं शताब्दी में पेरिस (ई० १८८७, १८९३, १९१४) बर्लिन (१८८९) सदन (१८९१) डबलिन (१९०४) घिबार्गो (१९०६) आदि पश्चिम के नगरों में लिटिल थियेटर में प्रेजेंट के परिणामस्वरूप प्रीतिभोज में भोजन से पूर्व पधारु हुए तथा अन्य प्रतिधियों के आगमन की प्रतीक्षा में बैठ मेहमानों की प्रतीक्षा में सखी के बोझ को हल्का करने के लिये रचे गये प्रहसनों का प्रयोग होता था। प्रेक्षा-गृहों में भी बड़े नाटकों के प्रारम्भ में पूर दर्शकों का मनबहाने के लिये प्रथवा उनके धीरे में आश्चर्य को थोड़ी देर के लिये दूर करने के निमित्त द्विपात्रीय हास्यपरक समादात्मक वर्ततरेखर के प्रचलन में एकानियों के प्रणयन की अपूर्व प्रेरणा प्रदान की। जे एन बेरी, जे बी शा, हाष्टमेन, मोलियर, हम्नन, चेखव, गोर्की आदि पश्चिमी नाटककारों की प्रतिभा से एकाकी कला को आधुनिक साहित्य रूप मिला है।

संस्कृत के 'अङ्क' और व्यायोग की पाश्चात्य एकाङ्की से तुलना

इन सब बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि मनोविज्ञान, अन्तर्द्वन्द्व तथा कर्षण रस का आविर्भाव ही एकाकी के आधुनिक रूप की विशेषता है। पात्रों की अस्थिरता सम्पत्ति तथा इस नाट्य रूप के एकाकत्व की दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन एकाकियों में कोई भेद नहीं दिखाई देता। यह बात ठीक है कि संस्कृत के एकाकी नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व एवं मनोविज्ञान के लिये विशेष स्थान नहीं है, परन्तु यह कहना भी बहुत ठीक नहीं, कि संस्कृत के नाटक सघन और अन्तर्द्वन्द्व से सर्वथा शून्य हैं। कतिपय नाट्य-स्तुतिकारों ने नाट्य-वस्तु के विकासक्रम की वक्रता को देखकर नाटक को काव्य का सर्वश्रेष्ठ रूप माना है।

प्रत्यङ्कमङ्कुरित सर्वरसावतार नव्योत्सवतनुसुमराणि विराजिबन्धम्।

धर्मतराशुखि वक्तृगतानिरम्य नाट्यप्रबन्धमति मञ्जुलसविधानम् ॥

नाट्य प्रबन्ध का यह मञ्जुल सविधान बिना नीटिल्य प्रदर्शन के तैयार नहीं किया जा सकता। संस्कृत के मुद्राराक्षस, मृच्छकटिक, रत्नावली जैसे कुछ

सम्पूर्ण विकसित रूपको मे अन्तर्द्वन्द्व और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण देखा जा सकता है। यद्यपि एकांकियों में इसके लिये कम अवकाश रहता है तथापि 'अक' में इसकी भलक दिखाई देती है, वही कल्याण के दर्शन भी होते हैं। संस्कृत के नाट्यमीमांसको ने 'अष्ट' के जो लक्षण प्रस्तुत किये हैं, उनके अनुसार इस एकांकी के भेद में कथावस्तु के लिए प्रत्यातवृत्त अथवा कात्पनिक इतिवृत्त को स्थान देने का आदेश है। यह प्रत्यातवृत्त अतीत का भी हो सकता है और वर्तमान का भी। पात्रों के सम्बन्ध में नायक पात्र के लिए धीरोदात्त, धीरोदत्त धीरललित अथवा धीरप्रधान पात्र के स्थान पर, "नेतार प्राज्ञता नराः" कह कर सामान्य वर्ग के पात्रों का निर्देश किया है। 'परिदेवितम्' से हार्दिक दुःखा-नुभूति का बोध होता है तथा "युद्ध च वाचा कर्तव्यम्"—इस पद से इसके पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन को विभिन्न पूर्ण उपात्तम्भ के रूप में समझना चाहिए। 'जयपराजयौ' को आधुनिक नाटको में दिखाये जाने वाले सघर्ष अथवा किसी भ्रम में अन्तर्द्वन्द्व के प्रतीक के रूप में लिया जा सकता है।

सारांश यह है कि उत्कृष्टिकाङ्क की आधुनिक एकांकियों से निस्संकोच तुलना की जा सकती है। अक का वर्णन करते समय इस कोटि के रूपकों के अन्य उदाहरणों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है जो प्राचीन युग में इसके प्रचलन को प्रमाणित करते हैं। इसके अतिरिक्त बीररसप्रधान और युद्ध के दृश्यों से युक्त व्यायोगों में भी मानसिक सघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के आधिक रूप से दर्शन किये जा सकते हैं। इसके प्रति संस्कृत के एकांकीकारों के भौदासीन्य को प्राचीन युग का प्रभाव ही समझना चाहिए। पहिले मनुष्य समाज में आज जैसे सघर्ष नहीं हुआ करते थे भूत उसकी छाया भी संस्कृत की अभिनेय कृतियों में कम ही देखने में आती है।

अब प्रश्न उठता है परम्परागत भारतीय नाट्य साहित्य में नाटको की संख्या एवं विधा की दृष्टि से बहुलता होते हुए भी एकांकीसदृश लघु नाटक रचना की ओर साहित्यिकों को आकर्षण क्यों हुआ और उसका प्रचार द्रुत गति से क्यों हो रहा है? बात ठीक है। साहित्यिक दृष्टि से पूर्ण नाटको का महत्व आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। हाँ, विश्व के अन्य देशों के समरूप साहित्य प्रस्तुत करने की उसकी प्रवृत्ति के कारण उसके प्राचीन रचना-विधा में परिवर्तन आवश्यक हुआ है। वर्तमान काल के भारतीय नाटको में नाट्य, मङ्गल-चरण तथा प्रस्तावना का प्रायः बहिष्कार हो गया है।

जब तक भारत की नाट्य कला अपने देश में अभिनय के लिये उपर्युक्त रङ्गमंच पर प्रदर्शित की जा सकी (जो प्रायः राजनीय या धार्मिक उत्सवों के समय ही हुआ था) तब तक उस समय की धार्मिक स्थिति के अनुसार मङ्गला-चरण, नान्दी आदि विषय उसमें समाविष्ट रहे। किन्ती नाट्य के अभिनय की कृपणा प्रायोजित उन्मत्त के मगारोह में पूर्ण विजापनों द्वारा देने का प्रचार उस समय नहीं था। अतः नाट्य धार्मिक विधान के अनुष्णर नूनयार तथा नटी-सदृश पात्रों द्वारा अभिनय के लिये प्रस्तुत नाट्य के प्रणीता एवं विषय आदि का ज्ञान ह्रास के ध्यानाश्रय के लिए चराना अनुचित नहीं प्रतीत होता था, किन्तु वर्तमान काल के रङ्गमंच की स्थिति उस समय से भिन्न है। आजकल द्रष्टव्य नाट्य कौन सा होगा? उनका विषय क्या होगा? इत्यादि बाह्यो का ज्ञान प्रेक्षकों की पहिले से ही होना है। इसके धार्मिक देवता माहिर्लियम नाट्यों के लिय भी मङ्गलाचरण या नान्दी (जिसे आस्तिकतावश या विघ्न विधात के लिये धर्मिष्ठ लेखन आश्रयक समझते थे) मूकधार और नटी तथा पारिपात्रिक जैस पात्रों की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

अतः रचना में रस निष्पत्ति (रस का प्रसार) का भी ध्यान नहीं रहता जाता। इसका स्थान पात्रों के चरित्र चित्रण, उनके वशोपकरण एवं वस्तु कथा में प्रस्तुत किसी घटना के चरमोत्कर्ष ने ले लिया है। परिणाम की दृष्टि में भी मुत्तान्त की अपेक्षा दुःखान्त रचनाओं का विरोध आदर होने लगा। इन सब परिवर्तनों के कारण भारतीय साहित्य का विश्व के अन्य देशों के साथ साहित्यिक महत्ति की दृष्टि से सम्पर्क हो गया है, किन्तु मनोरञ्जन के व्यावहारिक क्षेत्र में अभिनयात्मक कला के प्रति इस युग की व्यावसायिक मनोवृत्ति ने नाटकों की साहित्यिक महत्ता को बहुत क्षति पहुँचाई है। परन्तु पूर्ण-नाटक साहित्यिक प्रगति का समस्त माध्यम नहीं बन सका। चित्रपट एवं रेडियो-रूपकों के भक्ति प्रसार के कारण वही नाटक प्रायः नुप्त से हो गए हैं। उनके स्थान पर एकाकी की उपयोगिता और लोकप्रियता बढ़ रही है। वर्तमान एकाकी नाट्य-साहित्य में प्राचीन एकाकियों के भास, प्रहसन, व्यायोग, धनुष और वीथी आदि पृथक्-पृथक् रूपों की प्रति-एकिकता का तथा-अर्थ नहीं-जाता-या-जाता, किन्तु निम्न-वस्तु के आधार पर उनका वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक या सामाजिक आदि रूपों में किया जाता है।

नाट्य-साहित्य के निर्माण में समय की अनुकूलता और अश्रितेय प्रदर्शन के माधनों की सुविधा दृष्टि से इधर जो परिवर्तन हुए हैं उसे पारिचात्य अनुकरण माना जा रहा है परन्तु वास्तव में यह अनुकरण का परिणाम नहीं है। साहित्य पर युग की छाप पड़ती है फिर भी साहित्य की धारा वही रहती है। यह एक गड़बड़े में एकत्र जन की भाँति प्रवाहहीन नहीं हो सकती। स्वयं पश्चिम ने भी युग के साथ नाट्य-सौखी में परिवर्तन करना उचित समझा है। किसी देश का साहित्य अपने युग की प्रवृत्तियों के प्रभाव से अछूता नहीं बन सकता। पारिचात्य आलोचक डाइजेन के इस कथन का भी यही भावार्थ है। "To judge rightly of an author, we must transport ourselves to his time and examine what were the means of his contemporaries and what were his means to supply them." अतः आधुनिक एकाङ्कियों को पारिचात्य कला का अनुकरण नहीं अपितु प्राच्यसदृश-नाट्य का नवीनीकरण कहना ही उपयुक्त होगा।

वस्तुतः नवीनता वस्तु में (Matter) नहीं रहती। वह तो ध्रुव पदार्थ है, जिसकी स्थिरता नष्ट नहीं होती। हाँ, उसके बाह्य रूप में परिवर्तन हो सकता है। जिस प्रकार मिट्टी, मोहा, सोना इत्यादि पदार्थ सर्वत्र एकत्र रहते हैं और कुम्भकार, लोहकार, स्वर्णकार क्रमशः उनसे भाँति-भाँति की वस्तुएँ तैयार कर उपभोगार्थों का मन मोह लेते हैं। उसी प्रकार विद्वत्समाज में भी कवि वाग्देवता सरस्वती की कृपा से प्रकृत वस्तु को मनोहर रूप प्रदान करते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के छठे अध्याय में "सर्वं उत्विद तज्जलानोति" की व्याख्या के प्रसङ्ग में इस तथ्य की ओर सङ्केत दृष्टिगत होता है।^१ साहित्यशास्त्रियों ने भी "ग्रयन-कौशल" को ही अभिनवता का कारण बतलाया है। "त एव पद विन्यासास्ता एवार्थ-विभूतयः। तथापि नम्य भवति काव्य ग्रयनकौशलात्॥" "नवावाणी भुक्ते भुक्ते" "To present old wine in new bottle" जैसी क्रमशः प्राच्य तथा पारिचात्य लोक में प्रचलित सोपान्तियाँ भी वाणी के विकास को ही प्राकृत में परिवर्तन का कारण बतलाती हैं। तदनुसार पुराने आदर्शों को ही नया जामा पहिना कर हम उन्हें नया रूप दे देते हैं।

साम्प्रतिक संस्कृत नाट्य-साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि प्राचीन नाट्योद्योग में आधुनिक दृष्टि से जो विषय की विभिन्नता का प्रभाव बुरी तरह खटकता था, उसे नवीन रूपकारों ने दूर करने का प्रयास किया है। इसका कारण स्पष्ट है। नवयुग के आने पर नवीनता की अभिलाषा कवि या लेखक में भी बढ़ती है और पाठक में भी। पुरानी वस्तु से मनुष्य का मन ऊब उठता है। आधुनिक विज्ञान प्रसार के साथ-साथ विभिन्न देशों से भारतीयों का आदान-प्रदान द्रुतवृत्ति से बढ़ता जा रहा है। इस कारण भाज अंग्रेजी, बंगला आदि की श्रेष्ठ कृतियों के अनुवादों से संस्कृत के एकाङ्कियों में न केवल भाषा परिवर्द्धन हुआ बल्कि भाषा में भी नवीनता तथा विदेशी शब्दों की वृद्धि हुई। हम देख चुके हैं कि नव-विचारप्रवाह के फलस्वरूप हिन्दी, बंगला, मराठी आदि भारतीय भाषाओं की भाँति संस्कृत पर भी अंग्रेजी के शब्द समूह का प्रभाव बढ़ने लगा है। उसे सुवोच बनाने का यत्न भी किया जा रहा है। संस्कृत नाट्यतन्त्र में परिवर्तन और भाषा में मिश्रण अभिनव विकास का ही परिणाम है। सभ्यता के विकास मार्ग में मौलिक वस्तु के साथ साथ दूसरों की सहायता से प्रगति करने की भावना मनुष्यों में रहती है। मानव समाज की यह मनोवृत्ति स्वात्मप्रद तो होती है किन्तु यह अभी उपयोगी सिद्ध हो सकती है जब तक इसका उपयोग पीष्टिक आधार के रूप में किया जाता है। इसके विपरीत आचार भाव से मूल्याङ्कन करने पर अच्छी से अच्छी वस्तु का मोल बढ़ने के स्थान पर घटने लगता है। यही बात साहित्य के क्षेत्र में भी लागू होती है।

अपनी वाङ्मय-कृति को रमणीयता प्रदान करने की भावना से बाहर से भी अच्छी वस्तु ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है परन्तु पाश्चात्य प्रणाली की कट्टरता के कारण संस्कृत के एकाङ्की आत्मा से शून्य प्रतीत हो सकते हैं। जहाँ आधुनिक एकाङ्कियों का प्राचुर्य संस्कृत के एकाङ्की संसार के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है, वहाँ कीड़े अनुकरण के कारण अपने क्षेत्र के अपकर्ष का कारण भी हो सकता है। प्रतिभा कोरा अनुकरण नहीं करती, इसे ध्यान में रखते हुए साम्प्रतिक नाट्य निर्माताओं को शुद्ध अनुकरण के स्थान पर विभिन्न क्षेत्रों में अच्छी वस्तुओं का चयन करके भारतीय नाट्य की आत्मा की रक्षा करते हुए उन्हें अपना सेना चाहिये। श्री पॉल स्टाम नामक दक्ष नाट्यविद ने भी किन्नी समा में जो उद्गार प्रगट किये वे उसका सारांश है कि भारतीय नाट्य की श्री-वृद्धि पश्चिम के अनुकरण से नहीं हो सकती। उनका पथन है कि

हमें भारतीय नाटका में आधुनिक नाट्य-तन्त्रा को यथाचित स्थान देकर पुरातन प्रयोग प्रधान बला का ही पुनरुद्धार करना चाहिये। सस्कृत के नतिपम सिद्धान्तों एवं शैलियों को भी स्वीकार किया जा सकता है। नाट्य में गीत, संगीत तथा नृत्य के अन्तर्वास (insertion) के स्थान पर इन्हें समग्र-रूपेण म्कान (integration) दिया जाना चाहिये। श्री पॉलस्टॉम के अनुसार भारतीय नाटकों की आकृति की सादरी अभिनय में लाञ्छित नेपथ्य रचना में विचित्रता का बाहुल्य तथा मञ्चीय प्रकाश सज्जा के प्रमदू में कल्पना। प्राच्य म्कान रूप से अपेक्षित है।^१

प्राच्य तथा पाश्चात्य नाट्य-रचना सविधान

प्राच्य नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक के तीन मूल तत्व माने गये हैं वस्तु, नायक और रस। इन्हीं तीन तत्वों को आधार बनाकर नाट्य-रत्ना विवेचन किया गया है। जबकि पाश्चात्य नाटकों में ६ तत्व माने गये हैं—य पान, यक्षोपकषण, देस, काल, शैली और उद्देश्य।

- १ वस्तु—नाटक रचना किसी प्रसिद्ध घटना या वृत्तान्त को ध्यान में रखी होनी चाहती है। इनमें जब जनसाधारण के जीवन में और व्यक्ति की के जीवन में कुछ विशेषता दिखाई पड़ती है और वह योज्य या द-
- - - - - होनी है, तब कोई कवि उस अपनी रचना प्रयत्न कल्पना का आधार बना लेता है।

-१ Mr Paul storm, Dutch expert on Drama who is conducting a Drama course in the Kala Kshetra, said in a press interview recently that he did not believe that Indian stage could enrich itself by imitating Europe "Be your own" he said 'that best would be to revive old Indian drama using modern techniques That would be a good beginning The styles and some of the principles of Sanskrit stage could be adopted Song, music and dance should be light without boring didactics' He further added that acting should be more stylised and Indian Plays should have less or no scenery but more and more colourful costumes and more imaginative stage lighting'

२. पात्र—घटनाओं घटववा विशिष्ट पात्रों (व्यापारों) का सीधा सम्बन्ध अनुभूतियों से होता है जो सभी परिस्थितियों में अपनी निश्चित कार्य शृङ्खला बनाये रखते हैं यथात् काय सम्पादन में कति अवरोध नहीं माने देते । नाटक में घटना में सम्बन्ध काय शृङ्खला के सम्पादन पात्र कहे जाते हैं ।
३. वार्तालाप का कथोपकथन—पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला नाटक में वर्णित व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध होता है और उसके इस सन्ध में प्रत्येक को ही कथोपकथन कहा जाता है ।
४. देश काल—लेखक का अपनी रचना में काल और देश का ध्यान रखना पड़ता है । रङ्गमञ्च के विभिन्न सन्धुसार देश भूषण का ध्यान ध्वनिता का रखना पड़ता है यथात् अभिनय की घटना का सम्बन्ध जैसा काल में है उस समय देश की देश भूषण क्या की ?
५. उद्देश्य—नाटक में निम्न अपन जीवन सम्बन्धी अनुभूतियों को परोक्ष रूप में व्यक्त करना है इसके लिए वह अपने विचारों के अनुसार घटनाओं का क्रम स्थापन पात्र के रूप, नायक आदि का प्रयोग तथा वस्तु निर्देश इस ढंग में करना है जो उसके अपने सामाजिक भाव और जीवन के सन्ध को प्रकट करने में समर्थ है । यही उसकी रचना का उद्देश्य होता है ।

भारतीय शास्त्रकारों के तीन तत्त्वों में से वस्तु तत्त्व की पश्चिम के वस्तु-तत्त्व में पूर्ण समानता है । द्वितीय तत्त्व के अन्तर्गत पश्चिम का कथोपकथन एक देश का ही था जाता है । तृतीय तत्त्व, रत्न के काव्य (नाटक) की सामान्य माना गया है अतः इसका विशेष रूप में ध्यान रखा जाता है । किन्तु प्रतीति-भाव चाह आवश्यकता हो या उसका पूर्व रूप हो उसका प्राग्रह पश्चात्त्य साहित्य में नहीं होता । भारतीय नाट्य रचना सविधान में उपलब्ध नाट्य तत्त्वों के अनिश्चित तीन और चारों पर भी विचार किया गया है । (१) अथ प्रवृत्ति (२) अवस्था (३) सन्धि । नाट्य-लक्षण ग्रन्थों में उपलब्ध इनकी पृथक् व्याख्या को ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञान होगा कि इन तीनों के अन्तर्गत पाँच पाँच भेद होते हैं । अवस्थाएँ काय शृङ्खला की विभिन्न स्थितियों की छोटिका अथप्रवृत्ति काय-वस्तु के लक्षण की सूचिका तथा सन्धियों नाटक रचना के विभागों की निदर्शिका होती हैं । यद्यपि यह एक ही अर्थ की सिद्धि करती है परन्तु भारतीय नाट्य शास्त्र में इनका नामकरण एवं विवेचन भिन्न-भिन्न दृष्टियों से

किया गया है जिसके अनुसार एक में कार्य का, दूसरी में तथ्य का तथा तीसरी में नाट्य रचना का ध्यान रखा जाता है। ये तीनों तत्त्व अपने पाँच-पाँच भेदों सहित एक दूसरे के सहायक होकर नाटक में आते हैं। इनका पारस्परिक सम्बन्ध निम्नाङ्कित सारिणी से स्पष्ट हो जायेगा।

वस्तु तत्त्व (प्रथम प्रकृति)	कार्य व्यापार की अवस्था	सन्धि
१ शीघ्र	आरम्भ	मुख्य
२ चिन्दु	प्रयत्न	प्रतिमुख्य
३ पताका	प्राप्त्याशा	सम
४ प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
५ कार्य	फलानुगत	निवहण

यूरोप के नाट्य शास्त्र विवेचकों ने प्रथम प्रकृति एवं सन्धियों के विषय में कोई विवेचन नहीं किया, यद्यपि कार्य व्यापार की अवस्थाओं को उन्होंने माना है। आधुनिक नाटक कथामो का मूल तत्त्व किसी न किसी प्रकार का विरोध दिखाना होता है। तदनुसार नाट्य में दो विरोधी भाव पक्ष, सिद्धान्त या दल दिखलाये जाते हैं। इन विरोधों के चढ़ाव-उतार और उतार-चढ़ाव के साथ कथा-वस्तु विकसित होती जाती है। नाटकों में जहाँ विरोध और सघर्ष आरम्भ होता है मानो वही से कथा-वस्तु आरम्भ होती है। विरोध या सघर्ष का परिणाम प्रकट होते ही कथा-वस्तु का विस्तार समाप्त हो जाता है। घटनाओं की प्रगति के इस क्रम को इस प्रकार अङ्कित किया जा सकता है—आरम्भ-विरोध-चरमसीमा-निर्गत-समाप्ति। आरम्भ नायक की ओर से और विरोध प्रतिनायक की ओर से होता है। अतः विषय जिसकी होखी यह बतलाना कठिन हो जाता है। इस प्रकार हमारे भारतीय नाटकों की पाँच कार्यावस्थाओं को पाश्चात्य नाट्य शास्त्री आरम्भ (प्रोतासिस), परिणाम की ओर जाने वाला मुख्य कार्य (एपितासिस) चरमोत्कर्ष तक पहुँचा देने वाला व्यापार (क्लाइमैक्स) और सघर्ष का ह्रास (डिक्लाइमैक्स) और उपसंहार (क्लाइमैक्स) आदि के रूप में स्वीकार करते हैं। उद्देश्य की दृष्टि से पूर्व और पश्चिम में अन्तर है।

भारत में नाटकों की रचना का उद्देश्य था, धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि द्वारा मानन्द प्राप्त करना। तदनुसार कार्य व्यापार की पाँच अवस्थाओं के विभागों में भी भिन्नता पाई जाती है। प्रथम अवस्था आरम्भ कहलाती है,

जो किसी उत्पण्डित फल के लिये उत्पन्न होती है। द्वितीय अवस्था यत्न वा उत्पण्डित फल को पाने के लिये किया जाता है। तीसरी अवस्था प्राप्त्याशा है, जिसके अनुसार फल के मिलने की आशा हो जाती है। चतुर्थावस्था नियतापि नहसाती है, इस अवस्था से फल प्राप्ति का माय निष्कण्टक हो जाता है। फल की प्राप्ति हो जाने को फलागम कहते हैं, यही पाँचवी अवस्था है।

इन पाँच अवस्थाओं के अनुसार भारतीय नाटकों में विरोधों का ही प्राधान्य नहीं होता। हाँ उद्देश्य सिद्धि के लिये वे गौण रूप में मार्ग में विघ्न उपस्थित होते हैं। हाँ, यत्न और सफलता का महत्त्व अवश्य है।

संस्कृत के एकाङ्की आकार में छोटे होते हुए भी वर्तमान नाटक के स्थानापन्न रूपक के विभिन्न भेदों के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। इसके लिए नाट्यशास्त्र-सम्मत सामान्य विद्वान् ही स्थिर किये गये हैं, परन्तु लघु रूपकों के लिए आवश्यकतानुसार यह नियम बन्धन खोला किया जा सकता है। इसके विपरीत पाश्चात्य माहिर से प्रभावित विद्वान् एकाङ्की को एक स्वतन्त्र नाट्यप्रकार मानते हैं। पूर्व और पश्चिम की इस कला के अन्तर को प्रस्तुत कोष्ठक चित्र द्वारा समझना सुकर होगा।

संस्कृत में रूपक	आधुनिक नाटक	आधुनिक एकाङ्की
१-नायक विशिष्ट गुणों से सम्पन्न होना चाहिए— (उदात्त, उद्धत, प्रशान्त या ललित)	१-नायक में किसी विशिष्ट गुणों की आवश्यकता नहीं समझी जाती। सामान्य व्यक्ति भी नायक बनाये जा सकते हैं।	१-एकाकी में जीवन की एकरूपता की भाँकी।
२-रस का प्राधान्य चाहिए।	२-रस की अपेक्षा मनोविज्ञान की प्रधानता आवश्यक होती है।	२-अन्तर्द्वन्द्व मनीषेज्ञानिक विवेचन।

संस्कृत के रूप	आधुनिक नाटक	आधुनिक एकाकी
३-कथा में सघर्ष केवल मध्य तक ही होना चाहिए उसके बाद नायक की विजय नष्ट दिखतानी चाहिए अर्थात् इसमें क्लाय मैक्स के नियम स्थान अपेक्षित नहीं है।	३-कथा में सघर्ष अन्त तक अपेक्षित है।	३-कथा के आवश्यक भाग की उपेक्षा वस्तु के अनुसार ही कथा की आवश्यक मृष्टि।
४-चरित्र की अपेक्षा सत्य और व्याप सिद्धान्त की प्रधानता होनी चाहिये।	४-विविध चरित्र चित्रण और चरित्र का विस्तार एवं प्रमुख रूप से होना चाहिए।	४-पात्रों की परिचितता और चरित्र की तीव्र एवं सक्षिप्त रूप रेखा।
५-अन्तिम निष्पत्ति आदर्शवाद ही है।	५-यहाँ अंधाधुनिकवाद ही अन्त का परिणाम है।	५-अंधाधुनिकवाद.
६-नाटक में दुःखद दृश्यों का प्रदर्शन वर्जित।	६-आधुनिक नाटकों की विशेषता ही दुःखान्त नाटक है।	६-मुस्मान्त दुःखान्त के प्रतिबन्ध से मुक्त.
७-अनेकों की ओर एकाकी दोनों हो सकते हैं।	७-अनेकक (द्वयविभाजन सहित)	७-एक ही अक
८-रङ्गमञ्च की व्यवस्था सार्वनात्मक.	८-वैज्ञानिक कलात्मक	८-वैज्ञानिक, कलात्मक किन्तु सक्षिप्त.
९-रूप का साङ्गोपाङ्ग विस्तृत विकास	९-वर्णन की घटना विस्तार से मन्द गति.	९-कथानक की घटना स्पष्टता से क्षिप्त गति.
१०-व्यङ्गनात्मकता का आधिक्य	१०-व्यङ्गनात्मकता का प्राचुर्य	१०-व्यङ्गनात्मकता और प्रभावोत्पादकता का आधिक्य.

संस्कृत के एकाङ्कियों की अभिनेयता

भारत के नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में विकृष्ट (नम्बा आपटाकार) चतुरस्र (वर्गाकार) और त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) इन तीन प्रकार के मंचों के

विशद वस्तुओं को देखने से संस्कृत नाटकों पर अभिनेयता का आरोप निर्मूलत प्रतीत होता है। अभिनव भारती से यह सूचना भी मिलती है कि संस्कृत के भाण, प्रहसन, व्यायोग, भट्ट, आदि सामाजिक एकाकी (जिनमें प्राकृत दोनों का चरित्र चित्रित होता है) न्यस नामक प्रेक्षागृह में ही खेले जाते थे।^१ इन विवरणों से स्पष्ट है कि भारत में नाट्य वेद की रचना के साथ साथ रङ्ग मंच की भी प्रतिष्ठा बहुत पहले हो गई थी और दोनों का विकास साथ ही साथ हुआ था।

भारत में नाट्य का महत्व बतलाते हुए 'न सयोगो न उत्कर्म...' इत्यादि में प्रयुक्त कर्म शब्द द्वारा इसकी मञ्चीय उपयोगिता की ओर संकेत कर दिया है। यहाँ कर्म शब्द से उनका तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई व्यापार नहीं है जिसे मञ्च पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता।^२ इस प्रकार प्रेक्षागृह विषयक शास्त्रीय चर्चा तथा प्राप्त छोटे और बड़े दोनों प्रकार के रूपकों की प्रस्तावना में शताब्दियों पहिले उनके अभिनीत होने की सूचना को देख कर संस्कृत के रूपको पर अभिनेयता का आरोपण न्यायसंगत मही प्रतीत होता। साथ प्राचीन भाणों और प्रहसनों की उपेक्षा का कारण शास्त्रीय दृष्टि से नहीं परन्तु सामाजिक दृष्टि से उनकी अनभिनेयता को ही समझना चाहिये। अभिनव के मार्ग की इन कठिनाई को ध्यान में रख कर यत्किंचित् सशोषणों के साथ आज भी इस कोटि की रचनाएँ हो रही हैं। व्यायोग एवं भट्ट तो अपने प्राचीन रूप में भी प्रदर्शित किये जा सकते हैं।

१- हेमचन्द्र प्रह्लादो नाचप्रह्लादो यश्च वस्वति

विनिवाचयोहि भागो (ना० भा० १८)

तथा 'नचवत्तापस-विप्रैर्त्नैरपि' (ना० भा० १८)

इत्यादि। एवं भुवमृद्विषयावे प्रयोगे कनीय-व्रमणो मन्थन इति।

एषां वक्ष्यमाना (२) मञ्चे की विनिर्णय एवं सर्व सामारम्भ

मञ्चे मञ्चे नाटक-भाण-भयोपाद् अभिनव गुप्त ना० भा० द्वितीय अध्याय भाग १

पृ २०-२१ ना० भा० की०

२- न उज्जाय न हस्तिन्य न सा विद्या न सा कला।

न च बीरी न ,उत्कर्म नाट्येऽस्मिन् धन्य दृश्यते ॥

पुराने नाट्य भवनों के ध्वसावशेषों के प्राप्त न होने के कारण ही साहित्यिक जगत् में कई आपत्तियाँ उठाई जाती हैं। उनके प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि भारतीय जीवन का धर्म से अभिन्न सम्बन्ध अद्यावधि रहा है। बड़े और छोटे नाटकों का अभिनय प्रायः धार्मिक उत्सवों के उपलक्ष्य में ही होता आया है। देवी देवताओं की पूजा के बाद अथवा सादी विवाह आदि के उपरान्त स्थापित मूर्ति, देवी एवं अस्थायी मण्डपों का विसर्जन करने की प्रथा की भाँति रूपका का खेर समाप्त हो जाने पर रङ्ग-सज्जा के साधनों को प्रयोग स्थल से हटा देने की रीति भी प्रचलित रही होगी। आज भी भाषण अथवा धार्मिकोत्सव के प्रसंग में आदर्शित सांस्कृतिक कार्यक्रम की समाप्ति के उपरान्त लोगो को हम ऐसा ही आचरण करना पाते हैं। नाट्य नाट्य के इतिहास में जब नाटकों को ठेलने और उनके माध्यम प्रयोगों को देखकर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि आज की तरह समग्रानुसार प्रस्थाई मन्त्र की व्यवस्था पहिले भी की जाती रही होगी।

प्राधुनिक रङ्ग-सज्जा को न तो कोई नाम दिया जा सकता है न उसके रङ्ग विज्ञान एवं रङ्ग-दीपन के कौशल के अनुसार उनकी व्याख्या की जा सकती है। आज लोगों की मनोवृत्ति स्वाभाविकतावाद की ओर प्रेरित करने की है। इनके लिये नाटकों में चमत्कार, ध्वनि यन्त्र (शामोफोन) आदि की सहायता भी ली जाने लगी है।

आज अभिनय के लिये नाटकों का निर्वाचन करते समय के ही नाट्य चुने जाते हैं जो इस युग की माँग की पूर्ति करने के साथ साथ मन्त्र पर सुगमता से प्रदर्शित किये जा सकते हों, फिर चाहे वे पुराने हों या नये। इसी दृष्टि से प्रायः एकांकी की रचना को और उसमें भी एक हृदयशील वाले एकांकी को विशेष महत्व दिया जाने लगा है। जबसे इनका प्रयोग चल पड़ा है तब से रङ्ग-पीठ की जटिलता भी कम हो गई गई है। इनके लिये छोटे रङ्ग-मन्त्र की ही आवश्यकता है। एतदर्थ एक पेटिका रणपीठ (बाल्कन स्टेज) को तीन ओर से बन्द रहना है और इन्हीं तीन पक्षों में रणपीठ पर आने-जाने के केवल द्वार भर जाते हैं ही अन्तर्गत समझा जाता है। ऐसे रङ्ग-मन्त्र ही सामाजिक नाटकों के लिये अधिक अनुकूल होते हैं जिनमें बैठक के दृश्य में दिखाए जाने वाले घरेलू सामाजिक या समस्या नाटक खेले जाते हैं और इसके अतिरिक्त मोनो स्टैज स्टेज की ओर भी लोगो का झुकाव है। पात्रों के प्रमाणों में नए आविष्कार के साथ वस्त्राभूषण आदि के नाम भी बदल चुके हैं।

प्राचीन एवं अर्वाचीन एकाकी रसा की तुलनात्मक भीमासा के आधार पर यही सिद्ध होता है कि देश काय के भेद के कारण अपनी रीति की कुछेक विशेषताएँ बना रहने लगी थी प्राच्य तथा पश्चात्य एकाकी के मूलभूत सिद्धान्तों में विशेष अंतर नहीं होता। हम देख चुके हैं कि प्रायः मनोवैज्ञानिक विनियोग ही प्राच्य और पश्चात्य एकाकियों का भेदक गुण बतलाया जाता है। प्रस्तुत प्रश्न में प्रमाणानुसार यह सिद्ध करने का प्रयास किया जा चुका है कि प्राचीन व हृदयस्थ भावों से सम्बन्धित होने के कारण सस्कृत एकाकियों में मुख्यतः रस का सम्बन्ध भी मनोविज्ञान से ही होता है। अतः ही अनेक भी प्रह्लाद और व्यायोग में दिगमार्द जा चुकी है।

इस प्रकार दोनों ही दिशाओं में एकाकी साहित्य का प्रत्यक्ष या मुख्य उत्पत्ति मनोरंजन का साथ साथ तोर निक्षेप ही रहा है। इसकी पूर्ति के लिए युग युगान्तर से विश्व साहित्य में प्रयत्न होता आया है। ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार पूर्व में सस्कृत एकाकियों के विभिन्न भेदों के रूप में इसका सूत्रपात समाप्त से बहुत पहले हो चुका था। मृष्टि के विकासक्रम में उत्थान पतन की प्रक्रिया निरन्तर होती रहती है जिससे मानव जीवन की सजीव व्याख्या करने वाला नाट्य साहित्य भी प्रभावित होता रहा है। पश्चिम के देशों में भी नाट्य साहित्य की उत्थान परम्परा में नीति नाट्य साहित्य का प्रधान नाटक न ईसा पूर्व अठारहवीं शताब्दी में ही प्रारम्भ किया। हाइन्ड्रिक क नाटक साहित्य का विस्तारित रूप अथवा संसार ३०० वर्ष अन्तर्गत प्राप्त होता है, जिसकी तुलना हम भारत के विश्व विख्यात महाकवि कालिदास से कर सकते हैं।

नार्थेजियन नाटककार अन्तरिक दम्भन की कालिदास प्रतिभा में प्रारम्भ के नाट्य शास्त्र का प्राचीन दृष्टि का परित्याग कर नाटक साहित्य के लिए कृत्रिमताग्रहित आनागरण तैयार किया। एक मनुष्य के आविर्भाव की भाँति उन रूपों के अभिनय का यथावत जीवन से सामञ्जस्य बतलाया तथा दैनिक जीवन की सामाजिक घटनाओं को अपनी रचना का विषय बनाकर वास्तविकता का स्वरूप प्रतिबिम्बित चित्र प्रस्तुत किया। उनकी रस नवीन प्रवृत्ति ने समस्त योगों के साहित्यिक रचनाओं और विचारों का अनुसरण करत हुए अपना नाट्य साहित्य समकाल के लिए प्रस्तुत किया। यह साहित्य धातु छोटे नाटकों के रूप में था। विषय भी युग की गति विधि का प्रतिबिम्बित करते थे। अतः विद्वानों की मञ्जली में इनकी रचनाओं और रचना का पूरा आदर हुआ। पश्चिम का साहित्य जहाँ जहाँ प्रयोजी का प्रचार का पहुँचा।

भारत भी ऐसे ही देशों में था। आयरलैण्ड और भारत की स्वतन्त्रता संग्राम की भूमिका प्रायः एक-सी ही थी। अतः दोनों देशों के समसामयिक साहित्यिकों के बीच भावनात्मक एकता के फलस्वरूप उत्पन्न समान विचार-धारा का प्रभाव नाट्य-साहित्य के रूप पर पड़ा हो तो उसमें आश्चर्य की बात नहीं। रचना इसी में परिचरन तो प्रत्येक युग में होते आये हैं और होंते रहेंगे।

साहित्य जगत् में एकाङ्की-विषयक भ्रम फैलाने के कारण जो भी रहे हों, ऊपर प्रस्तुत किये गये प्रमाणां के आधार पर यह निर्विवाद है कि ऐतिहासिक दृष्टि में एक थक्के में निपट होने वाले नाटक साहित्य में नवागन्तुक नहीं है। प्राचीन संस्कृत और प्राकृत साहित्य के अध्ययन-अभ्यास की परम्परा छूट जाने के कारण भारतीयों का अपने इतिहास और संस्कृति को भूल कर प्रत्येक वस्तु के लिये पश्चिम में ही प्रेरणा करना कोई विस्मय की बात नहीं। योरोप को भी संस्कृत भाषा और उसके साहित्य का ज्ञान पहले-पहल ईसा की १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। वहाँ लोग गणपति शम्भू द्वारा सम्पादित मास के नाटकों ने तो और भी पीछे मर्यादा १६१२-१६१६ में परिचित हुए। भारत के नाट्य शास्त्र का अध्ययन भी योरोप में १६ वीं शदी के अन्त में हुआ। अतः जहाँ एक ओर भारतीयनाटक यह मानना मुक्तिसङ्गत न होगा कि पश्चिम में एकाङ्की नाटकों का प्रचार भारत से प्रेरणा पाकर हुआ वहाँ दूसरी ओर यह विचार भी साम्यास्पद ही प्रतीत होगा कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रचलित एकाङ्की नाटक योरोप की देन हैं। वास्तविकता तो यह है कि संस्कृत साहित्य में मिलने लगे एकाङ्कियों पर किसी की सहानुभूति पूर्ण दृष्टि ही अभी तक नहीं पड़ी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

अग्निपुराण	नन्दि-केदार
अभिनव-दर्पण	कालिदास
अभिज्ञान-शाकुन्तल	अभिनवगुप्त
अभिनव-भारती	प. सीताराम चतुर्वेदी
अभिनव नाट्यशास्त्र	प. नन्ददुलारे वाजपेयी
आधुनिक साहित्य	कालिदास
ऋतुसंहार	
ऋग्वेद संहिता	डॉ. रामकुमार वर्मा
एकाकी कला	सोमदेव
कथासरित्-सागर	
कठोपनिषद्	राजशेखर
कर्पूरमञ्जरी	वात्स्यायन (चौखम्बा प्रकाशन)
कामसूत्र	बाणभट्ट
कादम्बरी	वामन
काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति	भामह
काव्यालंकार	वाग्भट्ट
काव्यलंकार	डॉ. भागीरथ मिश्र
काव्यशास्त्र	राजशेखर
काव्यमीमांसा	भम्मट
काव्यप्रकाश	हेमचन्द्र (काव्य माला सेरीज)
काव्यानुशासन	डॉ. सत्यदेव चौधरी
काव्यशास्त्रीय निबन्ध	भारवि
किरातार्जुनीय	कालिदास
कुमारसम्भव	दामोदर गुप्त
कृतभीम	कीटिल
कीटिलीय अर्धशास्त्र	

छान्दोग्योपनिषद्

दशकुमारचरित

देवीपुराण

ध्वन्यालोक (भानन्दवर्धन)

नाट्यदर्पण भाग १

नाटक की परख

नाट्यालोचन

नाटक तथा भारतेन्दुधन्यावली

नाटकशास्त्र रत्नबोस

नाट्यकला मीमांसा

नाट्यशास्त्र

नीति शतक

रसगङ्गाधर

रस-सिद्धान्त

रसाखंभ सुधाकर

रघुवच

रङ्गमञ्च और नाटक की भूमिका श्री सधमीनारायण माल

रूपव-रहस्य दीपक गति दाश्यामसुन्दरदास

रूपकदातक दीपक गति दाश्यामसुन्दरदास

वर्णन-रत्नाकर दीपक गति दाश्यामसुन्दरदास

वास्मीकीय रामायण ज्योतिरीश्वर (स) गुनीतिशुमार)

विक्रमोर्वशीय पुस्तकालय कालिदास

वेणीसहार पुस्तकालय कालिदास

शिशुपान धव कालिदास

संस्कृत साहित्य का इतिहास माध

संस्कृत साहित्य का इतिहास श्री वरदाचार्य

संस्कृत साहित्य का इतिहास प. बलदेव उपाध्याय

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा वाचस्पतिगौरी

संस्कृत नाट्य साहित्य श्री नानूराम व्यास

डॉ जयकिशनप्रसाद सडेनवाल

दण्डी

स डॉ नगेन्द्र

रामचन्द्र

डॉ एस पी. त्रिपाठी

त्रिलोचनादित्य उपाध्याय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

सागरनन्दी

सेठ गोविन्ददास

प हजारीप्रसाद द्विवेदी

भट्टहरि

जगन्नाथ

डॉ नगेन्द्र

शिङ्गभूपाल

कासिदास

श्री सधमीनारायण माल

दीपक गति दाश्यामसुन्दरदास

दीपक गति दाश्यामसुन्दरदास

दीपक गति दाश्यामसुन्दरदास

ज्योतिरीश्वर (स) गुनीतिशुमार)

पुस्तकालय कालिदास

पुस्तकालय कालिदास

पुस्तकालय कालिदास

माध

श्री वरदाचार्य

प. बलदेव उपाध्याय

वाचस्पतिगौरी

श्री नानूराम व्यास

डॉ जयकिशनप्रसाद सडेनवाल

साहित्यालोचन

सिद्धान्त कौमुदी

हर्षचरित

हमारे नाट्यकार

हमारी नाट्य साधना

हिन्दी नाटकों का इतिहास

हिन्दी नाट्य साहित्य और रङ्गमञ्च की मौमामा

हिन्दी नाटकों का विनासात्मक अध्ययन

हिन्दी नाटका पर पाश्चात्य प्रभाव

हिन्दी साहित्य में हास्यरस

हिन्दी नाटकों का इतिहास

हिन्दी एनाजी-उद्भव और विकास

हिन्दी साहित्य के भ्रमरी वर्ष

नैपथीयचरित

पातञ्जलयोगसूत्र

प्रियदर्शिका

प्रबोध-चन्द्रोदय

प्रबोध-कोश

वर्गीय नाट्य-शास्त्र इतिहास

बांग्ला नाटकेर बारा

बांग्ला साहित्येर इतिहास खण्ड ४

विहारीदासिनी

भरतकोश

भरत नाट्यशास्त्र नाट्यशास्त्रों के रूप

भारतीय नाट्य-शास्त्र

भारतीय तथा पाश्चात्य रङ्गमञ्च

भारतीय लोक साहित्य

भारतीय नाट्य-परम्परा

भारतीय साहित्य की विशेषताएं

भारतीय गुपीन नाट्यसाहित्य

श्यामभुन्दरदास

बट्टोजि दोस्त

बाणभट्ट

राजेन्द्रसिंह गोड

राजेन्द्रसिंह गोड

मोमनाथ गुप्त

शुंभर चन्द प्रकाशसिंह

शान्तिगोपालसिंह

श्रीपति शर्मा

डॉ. बरसानेसास चतुर्वेदी

मोमनाथ गुप्त

डॉ. रामचरण महेन्द्र

शिवदानसिंह चौहान

श्री हर्ष

श्री हर्ष

श्री हर्ष

श्री हर्ष

राजेन्द्र मूरि

ब्रजेन्द्रनाथ बखोपाध्याय

वैद्यनाथ शील

श्री सुकुमार सेन

श्री सुकुमार सेन

च. रामकृष्ण कवि

(एस. बी. ओ. सी.)

डॉ. रामगोविन्दचन्द्र

गा ओ. बी. प्रकाश

प. सीताराम चतुर्वेदी

श्याम परमार

डॉ. नरेन्द्र

डॉ. प्रेम नारायण टण्डन

डॉ. मानुदेव शुक्ल

भाबप्रकाश

भागवत पुराण

भासनाटकचक्र

महाभारत

मराठी नाटक आणि रंगभूमि

मराठी बाइबलियन टीका धारिण टिप्पणी

मालविकाग्निमित्र

मृच्छकटिक

मेघदूत

मैथिली साहित्य का इतिहास

A Bibliography of Modern

Sanskrit Plays

A History of Sanskrit Literature

An Apology of Poetics

Aspects of Sanskrit Literature

Bibliography of the Sanskrit Drama

Bhoja's Sragara Prakasa

History of British Drama

History of Sanskrit Literature Vol I

History of Poetics

Humour and Humanity

Indian Theatre

Indian Theatre

Origin of Drama

Origin of Drama

Sanskrit Drama

Survey of Sanskrit Literature

The craftsmanship of one Act Play

The Laws & Practice of Sanskrit Drama

Theory of Drama

Types of Drama

Types of Drama

शारदातनय

गीताप्रेत मोरसपुर

स पण्यपति शास्त्री

स } विद्यासागर पि पि
सुब्रह्मण्य शास्त्री

वा त कुतकर्णी

वा त कुतकर्णी

वालिदास

मूद्रक

वालिदास

डॉ जयकांत मिश्र

Dr V Raghyvan

Kunhan Raja

Philip Sidney

S K. De

Montgomery Schuyler

Dr V Raghvan

Ardice Nicall

De and Das Gupta

P V Kane

Stephen Leacock

C. B Gupta

Yangnik

H H Wilson

Sten Konow

Dr Keith

Chaitanya

Percival Wilde

Prof S N Shastri

Ardice Nicall

Dr Mankad

R V Jagirdar

MAGAZINES

1. A Descriptive Catalogue of the Sanskrit Manuscripts
(In the Government Oriental
Manuscripts Library, Madras).
2. Catalogue of Sanskrit & Prakrit Manuscripts. Dr. Keith
3. Centenary Supplement of J R. A. S. 1924.
4. Sanskrit Pratibha 1949—1965.
5. Sanskrit Sahitya Parishat Volume 40, April, 1961.
6. The Journal of the Bihar Research Society 1950, Vol. 34.
7. The Sanskrit Ranga Annual I)
8. The Sanskrit Ranga Annual II) Madras.
9. The Sanskrit Ranga Annual III)
10. The Poona Orientalist Vol XVI, 1951.